भारत की विभिन्न भाषाओं की अनूदित कहानियाँ

नौकरी की आवश्यकता	लक्ष्मीनंदन बोरा
वंशबेल	इंदिरा गोस्वामी
गर्म कोट	राजेन्द्र सिंह बेदी
ढाई अक्खर	हरचरण चावला
धुआँ	गुलज़ार
जंगल	सच्चिदानंद राउतराय
प्रतियोगी	बिपिनबिहारी मिश्र
सुरभित संपर्क	इंदुलता महान्ति
अढ़ाई घंटे	हरिकृष्ण कौल
कामरूपी	यू आर अनंतमूर्ति
ओ रे चुरुंगन मेरे	मीना काकोडकर
आखिरी झूठ	गुलाबदास ब्रोकर
कंपन ज़रा ज़रा	रजनी कुमार पंड्या
कल कहां जाओगी	पदमा सचदेव
फुटबॉल	पदमा सचदेव
छुई मुई	आण्डाल प्रियदर्शिनी
टूटा हुआ स्वर	लक्ष्मी रमणन
गोर्की का पात्र	वी चंद्रशेखर
चांदी का जूता	बालशौरि रेड्डी
आज सोमवार है	परशुप्रधान
यादों की अनुभूतियां	कमला सरूप
खेल	गीता केशरी
एक जीवी एक रत्ती ..	अमृता प्रीतम
खुले आकाश में	जसवंत सिंह विरदी
मणिया	अमृता प्रीतम
सहपाठी	सत्यजित राय
जीवित और मृत	रवींद्रनाथ ठाकुर
सारांश	शुभांगी भड़भड
वधू चाहिये	अरविन्द गोखले
लौटते हुए	सी वी श्रीरमण
सांझ के एकांत तट पर	तारा तोमस
सांवली मालकिन	ई हरिकुमार
शिशिर की शारिका	बी मुरली
गाड़ी पर नाव	गोविंद झा
विक्रमोर्वशी	कालिदास
प्रतिफल	बंसी खूबचंदानी
लालटेन ट्यूबलाइट और शैंडेलियर	मोतीलाल जोतवाणी

नौकरी की आवश्यकता

लक्ष्मीनंदन बोरा

किताब का नाम मेघनाद साहा है। अंग्रेज़ी किताब है, प्रसिद्ध पदार्थवैज्ञानिक की। जीवनी का असमिया अनुवाद कर इस महीने में दिल्ली भेजना है, नई दिल्ली के नेशनल बुक ट्रस्ट को। इसके निदेशक दो बार तकाज़ा भी कर चुके हैं पर इसी महीने में काम समाप्त कर पाऊंगा या नहीं बता नहीं सकता। पांडुलिपि जमा करने की तारीख बीते भी दो महीने हो चुके हैं।

मैने काम नहीं लेने का ही सोचा था। लेकिन इस वैज्ञानिक के प्रति मेरा अपार लगाव है। किताब का अनुवाद करने की ज़िम्मेवारी लेकर अच्छा कार्य ही किया है ऐसा लगता है। इनको मैने कलकत्ते में दो बार देखा। तब वह आणविक आयोग के अध्यक्ष थे। एक बार उनके कुछ प्रिय छात्रों ने उनसे इस तरह पूछा सर आप एक बड़े वैज्ञानिक हैं लेकिन कुछ वर्षों से राजनीति क्यों कर रहे हैं। सवाल सुनकर वह बहुत गंभीर हो गये। छात्रों को लगा वह सवाल का जवाब नहीं देंगे।

उन लोगों ने सोचा कि वे सवाल से असंतुष्ट हुए हैं। पर वह कुछ देर तक चुपचाप रहने के बाद धीरे धीरे कहने लगे — देश के सभी नागरिकों को समान सुविधाएं मिलनी चाहिये। यह ही राजनीति का उद्देश्य होना चाहिये। देखो मैं किसी कारणवश इस तरह का व्यक्ति बन गया। सुविधा के अभाव में मुझसे अधिक गुणी लड़का खतम हो जायगा या हो गया है उसकी खबर क्या हम रखते है? मेरे जीवन के पहले भाग में जो अवर्णनीय दुख हुआ वह इस वक्त सोचने पर डर लगता है।

ये विचार जानने के बाद इस वैज्ञानिक के प्रति मेरा विशेष लगाव हुआ। गांव के एक साधारण दुकानदार के पुत्र मेघनाद को पिता हाईस्कूल में पढ़ाना नहीं चाहते थे। शिक्षकों के अनुरोध पर लड़के की पढ़ाई जारी रखी। उस दौरान मेघनाद के कष्टों की कथा का वर्णन पुस्तक में सुंदरता से किया गया है।

पुस्तक के उस अंश का अनुवाद कर मुझे बेहद अच्छा लगा। लेकिन एक हिस्से का अनुवाद करने के बाद नयी तरह की समस्याएं आ गयीं । मैने एक दूसरी जीविका ग्रहण कर ली। स्थान का परिवर्तन हुआ। मैं बड़ी असुविधा में पड़ गया। खाने पीने की बड़ी तकलीफ हुई। बीच बीच में होटल में खाना पड़ा। भाड़े के घर को खुद साफ सुथरा कर रखना पड़ा। इसी ने मेरे कार्य की प्रगति में बाधा पहुंचाई। मेघनाद साहा की असमिया पाण्डुलिपि समय पर न दे सकने के कारण दिल्ली से मेरे पास प्रायः तकाज़ा आने लगा।

इसी बीच मुझे दुख को कम करने की एक तरकीब सूझ गयी। मेरे कार्यालय में एक चपरासी की नौकरी निकली। यह खबर मिलने के साथ ही कई युवा लड़के मुझसे मिलने आए। उनका साक्षात्कार लिया। बहुत सोच समझ कर एक सहज सरल लड़के का चुनाव कर लिया। वह मेरे साथ रहने को राज़ी हुआ। मेरे घर रहना मतलब मेरी रसोई आदि करना। निःसंदेह अधिक काम नहीं है। घर में सिर्फ मैं ही हूं । परिवार पैतृकस्थान पर ही है।

लड़के का नाम गौतम है। बातें कम करता है। करता भी है तो अनिच्छा से करता है। अक्सर आधा वाक्य उच्चारण कर ही काम चला देता है। अक्सर लोगों की आदत होती है ज़रूरत से ज़ादा बातें करना, आयं आयं करना।

उसकी वजह से मुझे सुविधा हो गयी है। गौतम के चरित्र का एक गुण या अवगुण है। इस युवा लड़के का कोई साथी नहीं है। उसे साथ के चपरासी–चौकीदारों के साथ बचा समय बात कर व्यतीत करते हुए मैने नहीं देखा। मेरे घर पर भी

कोई चपरासी चौकीदार उससे मिलने नहीं आता है। वह किस तरह इतना चुपचाप बिना संग के रहता है देखकर मुझे ही बीच-बीच में अचरज होता है।

हां, एक बार अवश्य ही उसने मुझे क्षति पहुंचाई। वेतन मिलने के बाद उसे उसके घर भेजा। जाते वक्त यह कह कर सावधान कर दिया— "अब तुम बड़े हो गये हो तुम्हें अपने लिये रूपये जमा करने चाहिये। इसलिये सारे रूपये रिश्तेदारों को देकर मत आना। यहां तुम्हारा खर्च नहीं है । आने वाले महीने से रूपये बैंक में जमा करना।" इतना बढ़िया उपदेश दे उदारता दिखाने के बावजूद उसके मुख से कृतज्ञता नहीं झलकी और न ही किसी तरह की प्रतिक्रिया व्यक्त हुई।

उसका चेहरा सदैव चिंतित नज़र आता है। वह जैसे एक रोबोट, काम करने वाली एक यंत्रचालित काया है। वह अपने घर जाकर दो दिन बाद लौट नहीं आया। सात दिन बाद वापस लौटा। इन सात दिनों में मैं मेघनाद साहा की जीवनी का एक परिच्छेद भी अनुवाद नहीं कर सका । खुद घर साफ करना पड़ा, चाय बनाकर पीनी पड़ी, भात खाने के लिये आधा मील दूर होटल जाना पड़ा।

सात दिन बाद गौतम के वापस आने पर मुझे गुस्सा चढ़ गया। मैं गरज उठा,"तुम्हारे जैसे लोगों को प्यार करने से कोई फायदा नहीं है। मैं तुझे घर नहीं भी भेज सकता था। लेकिन तुम इसको न समझ सके। तुम्हें इतनी देर क्यों लगी? मैने तुम्हें तुम्हारी सुविधा के लिये नहीं रखा है। रखा है मेरी सुविधा के लिये, कार्यालय की सुविधा के लिये। इसी तरह होता रहा तो कितने दिनों तक नौकरी करोगे?"

मेरी कटु बातें सुनकर उसके चेहरे पर असंतोष की लकीरें उभरनी चाहिये थीं। परंतु उस चेहरे पर किसी तरह की अनुभूति नहीं हुई। वह कोई चेहरा नहीं जैसे लड़के, लड़कियों का बनाया हुआ मुखौटा है। हांलांकि मैं जब गाली गलौज कर रहा था तब वह सिर नीचे झुकाए था।

उसकी प्रतिक्रिया विहीन स्थिति ने मेरे गुस्से को और बढ़ाया। उसके पास जाकर मैने चिल्लाकर कहा, "बड़ा जब कुछ पूछता है तो उसका जवाब देना चाहिये। क्यों देरी हुई बताते क्यों नहीं हो।"
आखिरकार वह बोला,"बहन को बुखार है।"
फिर एक वाक्य।बहन को कितना बुखार है? क्या स्थिति खतरे में है? यह तो वह कह सकता था लेकिन उसने मुझे संतुष्ट कर सकने वाला जवाब देने की कोशिश नहीं की। इसलिये मैने सवाल कर असली कारण जानने का प्रयास किया।
"कितना बुखार है?"
"बहुत।"
"डाक्टर ने क्या कहा?"
"डाक्टर नहीं है।"
डाक्टर नहीं है इसका अर्थ यही हो सकता है कि बाईहाटा से बीस मील दूर इसके गांव में डाक्टर नहीं जाता है या वहां डाक्टर उपलब्ध नहीं है।
"क्या दवा खिलाई?"
"कविराज की।"
"अब उठ बैठ सकती है?"
"नहीं।"
"बहन की उम्र क्या है?"
"चौदह।"
"घर में उसे बोझ समझ कर ही इलाज नहीं करवाया है क्या?"
"इलाज अब होगा।"

गौतम के मुंह से अबकी पहली बार एक पूरा वाक्य सुनने को मिला।
"....कारण तू पैसा दे आया है?"
"हां "
सूखे बांस की लकड़ी से रस निकालना और हमारे गौतम भट्टाचार्य से बात निकालना एक ही बात है। मैने उससे और कुछ नहीं पूछा। मेरा गुस्सा उतर गया। वह काम में जुट गया।

मैं उसके काम से संतुष्ट हूं। उसकी तरह सहज सरल लड़के के बदले अन्य कोई दूसरा होता तो मुझे बहुत कष्ट होता। भाड़े के घर में अकेले रहने वाले व्यक्ति को बिना कष्ट रखने के लिये इतने सारे कार्य करने पड़ते हैं यह गौतम का कार्य देखकर ही समझ सका। वह सुबह उठ कर चाय बनाता है। बाद में घर साफ करता है। कुएं से पानी निकालकर नहाने के लिये घर की टंकी भरनी पड़ती है। उसके बाद दूध वाले से दूध लेकर गरम करना पड़ता है। चक्की के आटे से रोटियां और साग सब्जी से तरकारी बनानी पड़ती है। वह नाश्ते के बाद खाना पकाने के काम में लग जाता है। साढ़े नौ बजे खुद खा कर कार्यालय जाने के पहले मेरे लिये खाना हॉटकेस में रख जाता है। वह मुझे घर का कोई भी काम करने का मौका नहीं देता है। सुबह मेरा बिछौना वह ही झाड़ झपट कर ठीक कर देता है। मच्छरदानी भी सजाकर रखता है।

सूर्यास्त होने के पहले ही वह कार्यालय से लौटकर मेरे जूठे छोड़े गये बर्तनों को धोता है। उसके बाद आधा मील दूर बाज़ार से सामान लाकर रसोई के काम में लग जाता है।रात नौ बजे मैं भात खाता हूं। मैं जब भात खा रहा होता हूं तब वह बीच में पूछता है,"क्या कुछ चाहिये?" मुझे कुछ नहीं चाहिये कह देने पर वह भात खाना शुरू करता है। उसके बाद बर्तन वर्तन धोकर कुछदेर बरामदे में बैठा रहता है। उसके बाद आकर मेरे बिछौने का बेडकवर अलग कर सजाने के बाद बांस की कुर्सी पर रखता है। मच्छरदानी तानकर सोने जाता है।

मेरे भाड़े के घर से कुछ दूर एक सिनेमा हाल है। वहां काफी दिनों से बांगला फिल्म 'बेदेर मेये ज्योत्सना' चल रही है। यह फिल्म नहीं देखने वाले युवक युवती न के बराबर हैं। लेकिन हमारे गौतम ने सिनेमा देखने की इच्छा व्यक्त कर कभी मुझसे अनुमति नहीं ली है।

काम में उसे थोड़ी बहुत फुर्सत मिलती अवश्य है पर उस दौरान मैं उसे बिछौने में पड़ा पाता हूं। सुबह हॉकर जो अखबार दे जाता है उसे वह सतही नज़रों से पढ़ता है या नहीं, कह नहीं सकता। मेरे न रहने पर वह टी वी देखता है या नहीं मेरे द्वारा पता लगाना असंभव है। परंतु मैं जब टीवी देख रहा होता हूं तब वह मेरे कमरे में नहीं आता है। इसलिये मुझे कभी कभी लगता है कि आजकल इतना सीधा लड़का भाग्य से ही मिलता है।

सांप को पहचाना जासकता है पर मनुष्य को पहचानना दुष्कर है। बूढ़े लोगों द्वारा पहले इस तरह की बात अक्सर कहते सुनता था। इसका हाथों हाथ प्रमाण मिला युवा गौतम भट्टाचार्य में ।

उस दिन रविवार था। मैं सारे दिन घर पर नहीं था। पलाशबाड़ी की ओर गया था। शाम को जब घर लौटा तो पाया रविवार होने पर भी हमारा युवा लड़का घर में ही है। आंगन में घास काट रहा है। मैने उसे देख कर पूछा तुम्हें आज कहीं जाना है तो जा सकते हो। मेरे लिये भात नहीं बनाना पड़ेगा।

वह कुछ नहीं बोला। मैं समझ गया वह घर पर ही रहेगा। मैं जब निकल कर जा रहा था तब उससे कहा मेरे आने में देर हो सकती है। एक दरवाज़ा खोल इस दरवाज़े में ताला लगा तुम सो जाना। मेरे पास चाबी है।

सिर्फ रात के नौ बज कर पचीस मिनट हुए हैं। मैं दोस्त के घर भात खा कर जायेरिगोग से नयनपुर से होते हुए गणेशगुड़ी चरिआली की ओर आ रहा हूं। सड़क पर लोग बाग न के बराबर हैं। कुछ घरों से दूर दर्शन की आवाज़ आ रही है। ऐसी आवाज़ स्तब्धता को और अधिक बढ़ाती है।

मैं अकस्मात चौंक उठा। एक साथ तीन गोलियों की आवाज़। कितनी विपदा है। मैं जब एक घर में अतिथि बनकर बैठा था उसी दौरान क्या कहीं संघर्ष होने के कारण शहर में कर्फ्यू लगाया गया है? मुझे भी क्या कानून तोड़ने वाला समझ गोली मारेंगे? मैने सड़क के किनारे बल्ब की कम रोशनी से देखा कि एक व्यक्ति मेरी तरफ दौड़ कर आ रहा है। उसके पीछे पीछे बंदूकधारी पुलिस है। वह मेरे सामने आकर उल्टे गिर गया। उसका शरीर खून से लथपथ है। वह दर्द से कराह रहा है। मैं दौड़ूंगा या पहले की तरह चलूंगा सोचने का वक्त भी नहीं मिला। मैं पसीने से तरबतर हो खून से सने शरीर की ओर देख रहा हूं उसकी मौत की यातना देखने के लिये कितनी देर रूका रहूंगा। मैं असमंजस में पड़ गया। मेरी चेतना काम नहीं कर रही थी।

इस बीच एक पिस्तौल धारी पुलिस अधिकारी ने पड़े शरीर पर टार्च मारी। क्या वीभत्स दृश्य था। पूरा शरीर खून से लथपथ। उसके मुंह से खून निकल रहा है। कोमल चेहरा— एक युवक लड़के का।

पुलिस अधिकारी ने मेरी ओर टेढ़ी नज़र से देखते हुए कहा, "इसमें रूचि मत लीजिये। समझे? खुद को असुविधा होगी। ... यह कह उसने लड़के के हाथ की नाड़ी देख कहा, "साला शेष।"

युवा लड़का अभी मेरे सामने मरा। मैं पूछने को विवश हुआ असली बात क्या है? उन्होंने वितृष्णा से कहा यह ही देश है समझे? इनकी उद्दंडता के चलते मनुष्य रह नहीं सकते। डकैत थे। कई अन्य भाग गये।

मैं और वहां नहीं ठहरा, घर पहुंचा। गौतम सो चुका था। उसको उठाने की ज़रूरत महसूस नहीं हुई। मैं सो गया। परंतु नींद नहीं आई। मध्य रात्रि तक भी। बार बार मुझे गोली से आहत उस युवक का चेहरा याद आने लगा।

मेरे जीवन की भयावह अनुभूति थी वह घटना, जो देखी। यातना से कराहती गोलियों से छलनी एक देह, उसकी मौत के असहनीय दर्द की पुकार, यह दृष्य देखने के पहले ही मेरी मौत का आजाना अच्छा था ।

अब मैं क्या करूं? रात मेरे लिये लंबी हो रही है। कहीं मन को लगाना ही अच्छा होगा।

तभी मुझे मेघनाद साहा की अंग्रेज़ी जीवनी की याद आयी। अब भी इकसठ पेज का अनुवाद बाकी है। उधर नेशनल बुक ट्रस्ट से लगातार तकाज़ा आरहा है इस लिये मैने मध्य रात्रि को किताब के कुछ पेजों का अनुवाद करने की सोची। लेकिन आश्चर्य की बात है कि मैं किताब खोजकर न निकाल सका। दो कमरे देख डाले। किताब नहीं थी। अच्छा किताब को कौन ले सकता है। सुबह किताब टेबल पर ही थी।

मैने लाइट बुझा दी बिछौने में ही इधर–उधर करवट लेता रहा। मैं पुलिस अधिकारी की तरह निर्दयी नहीं हो सकता। मेरी आंखों में अभी भी था— वह दर्दनाक मौत का दृष्य।

आकाश का अंधेरा छंटने लगा, परंतु चिड़ियां अभी भी जगी नहीं हैं। मैने सोचा एक कप चाय ही पी ली जाय। रसोई घर में कहां चाय चीनी है मैं नहीं जानता। इसलिये गौतम को जगाने मैं उसके कमरे में गया। लाइट जला दी। आंखे मच्छरदानी के पास लेजाकर देखा। वह पूरी नींद में था। उसे जगाना बुरा लगा। लेकिन एक चीज़ को देख मेरी आंखें भी सहसा विश्वास न कर सकीं। टेढ़े होकर सो रहे गौतम के नज़दीक किताब अधखुली पड़ी थी। परंतु स्थिति को समझने में मुझे कठिनाई हुई।

मैं चाय पीने की बात भूल गया। अब गौतम के बारे में मेरा कौतूहल अधिक हो गया।मैने धीरज धर प्रतीक्षा की। निर्धारित समय पर गौतम उठा। वह हाथ मुंह धो गैस जला कर चाय बनाने में लग गया। उसने मेरे सामने एक कप चाय रख दी।

मैने पूछा, "वह किताब तुम्हारे बिछौने में है। गौतम, तुम अंग्रेज़ी पढ़ सकते हो?"
वह कुछ न कह मेरे सामने से हट कर जाना चाहने लगा। मैने फिर कहा, "कहा है न, मत जाओ, मेरी बात का जवाब दो।"

मैने उसकी ओर देखा। वह पूरी तरह तैयार न था। काफी समय बीता। वह निश्चल खड़ा रहा। अखिरकार उसने कहा, "मुझे मारिये सर, मुझे नौकरी से निकाल दीजिये सर। मैने आप जैसे पिता समान व्यक्ति से झूठ बोला सर।

"तुम क्या कह रहे हो मैं कुछ नहीं समझा। मुझे संदेह हो रहा है तुम काफी पढ़े लिखे लड़के हो। तुमने तस्वीर देखने के लिये यह किताब मच्छरदानी के अंदर नहीं ली थी। इसमें न तस्वीर है और न यह सहज है। बताओ तुम कितने तक पढ़े हो।"
"सर, थोड़ी सी पढ़ाई की है। हमारे जैसे गरीब को शिक्षा अर्जित कर क्या फायदा है?"

एक एक लम्बे शब्द। भाषा पर गौतम का इतना अधिकार है मैं सोच भी नहीं सका था।

मैने देखा उसकी आंखें गीली हो गयी हैं। उसने टूट चुकी आवाज़ में कहा— मुझे क्षमा कीजिये सर नौकरी पाने के लिये मैने आपसे छिपाया। चुपचाप रह मैने अपनी शिक्षा को छिपाने का प्रयास किया। कुछ फायदा नहीं हुआ सर पकड़ा गया। अब से मैं गौतम को अलग नज़रों से देखने लगा। मुझे फिर सवाल नहीं करना पड़ा। वह मन में दुख के चलते अपने आप कहता गया, " मैं जानता हूं सर पदार्थ विज्ञान में प्रथम श्रेणी से बी एस सी पास का कहता तो आप निश्चय ही मुझे नौकरी पर नहीं रखते। परंतु इस बार की सौ रूपये की नौकरी ही कुछ महीनों से मेरा घर चला रही है।" मैं गौतम के चेहरे की ओर और देख न सका। मैं व्यथा में डूब गया। मैने आंखें मूंद लीं। गौतम द्वारा नाक सुड़कने की आवाज़ सुनी।

मैने धीरे से कहा, "मुझे तुम्हें क्षमा करने का कोई अधिकार नहीं है गौतम। हमारे समाज का भी कोई अधिकार नहीं है।"

अचानक मेरे मुंह से तुम्हारा शब्द निकल आया। गौतम ने पूछा, "सर, आपने उत्तम महाचार्य का नाम सुना है न? अखबार में निश्चय ही उसके बारे में पढ़ा होगा। वह मेरा बड़ा भाई था। सर, काफी महनत के बाद इंजीनियर हुआ था। उसके लिये हमारी ज़मीन बिक गयी थी लेकिन सर पांच साल तक नौकरी न मिलने पर उसने फांसी लगा ली।

मैं उसे और कुछ न कह सका। उसके पास खड़े रहना ही असहनीय हो गया, मैं रास्ते पर निकल आया।

वंशबेल इंदिरा गोस्वामी

गांव का महाजन पीतांबर अपने घर के सामने पेड़ के ठूंठ पर बैठा था। वह पचास को पार कर चुका था। कभी वह काफी हट्टा-कट्टा था, लेकिन अब उसे चिंता ने दुबला दिया था। उसकी ठुड्डी के नीचे की खाल ढीली पड़कर लटकने लगी थी। वह दूर निगाहें टिकाये एक बच्चे को देखे जा रहा था, जो अपनी बंसी की फंसी डोरी को छुड़ाने की कोशिश में था।

एकाएक उसका ध्यान टूटा। गांव का पुजारी अपनी खड़खड़ाती आवाज़ में उससे कह रहा था, "तुम्हारा अपना तो कोई बच्चा है नहीं। तब तुम उस बच्चे को भूखी निगाहों से क्यों देखे जा रहे हो?" फिर रूककर पूछा, "अब तुम्हारी पत्नी कैसी है?"

"कई बार उसे शहर के अस्पताल में ले जा चुका हूं, लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। उसके सारे शरीर पर सूजन आ गयी है।"

"तब तो उससे बच्चा होने की कोई उम्मीद नहीं। लगता है पीतांबर, तुम्हारा वंश चलाने वाला कोई नहीं रहेगा।"

थोड़ी देर तक चुप खड़े रहने के बाद अपनी छोटी-छोटी आंखों में धूर्तता की चमक लिये पुजारी ने उसके कान में फुसफुसाते हुए कहा, "दूसरी शादी के बारे में क्या सोचा है तुमने?"

पीतांबर अभी उत्तर देने ही वाला था कि वहां से गुजरती दमयंती पर उसकी निगाहें जा टिकीं। वह मठ के एक पुजारी की युवा विधवा थी। वर्षा के कारण भीगे कपड़े उसके शरीर से चिपक गये थे। उसकी जवान देह का रंग वैसा ही था, जैसा कि खौलते हुए गन्ने के रस के घने झाग का होता है। कद-काठ तो उसका अधिक नहीं था, पर थी वह बेहद आकर्षक। लोग उसके बारे में तरह-तरह की बातें करते थे। कुछ लोग तो उसे वेश्या कहते थे, ब्राह्मण वेश्या।

"अरी दमयंती, कहां से आ रही है?" पुजारी ने आवाज लगाते हुए पूछा।

"देख नहीं रहे हो तुम ये रेशम के कौवे?"

"तो तुमने अब उन मारवाड़ी व्यापारियों से भी मेलजोल बढ़ाना शुरू कर दिया?"

दमयंती चुप रही। उसने अपनी साड़ी की तहों को निचोड़कर पानी निकाला। वे दोनों उसे ललचायी नज़रों से देखते रहे। जब यह चली गयी, तो पीतांबर ने कहा, "सुना है कि वह गोश्त, मच्छी, सब कुछ खाती है?"

"हां, उसने तो ब्राह्मणों की नाक कटवा दी है। विधवाओं के लिए जो विधान बना है, उसकी इसने रेड़ मारकर रख दी है। छीः छीः! कलियुग! घोर कलियुग।"

"खैर छोड़ो इसे, ये बताओ आपके यजमानों का क्या हाल है?" पीतांबर ने पूछा।

"सब कुछ तो तुम जानते हो, और फिर भी पूछ रहे हो? मेरे बड़े भाई का मुझसे झगड़ा हो गया। ज्यादा काम तो उसी ने हथिया लिया। मैं तो बरबाद हो गया।"

"पुजारीजी, आपको मंत्र पढ़ना तो ठीक से आते नहीं, संस्कृत आप जानते नहीं, इसलिए तुम्हारे यजमान तुम से बिदक गये।"

"ये बात नहीं हैं। आज जमाना ही बदल गया है। पहले तो हर यजमान के घर से हर महीने एक जनेऊ, दो धोतियां और पांच रूपये मिल जाते थे, पर अब तो कोई इन बातों को मानता ही नहीं। अपना खर्चा बचाने के लिए मेरा पुराना यजमान मणिकांत अपने दोनों बेटों को कामाख्या ले गया और वहीं उनका यज्ञोपवीत करवा आया। माइतानपुर के यजमानों ने अब अपने माता-पिता का श्राद्ध एक साथ ही करना शुरू कर दिया है।"

पुजारी अपना रोना रोये जा रहा था और पीतांबर था कि दमयंती के ख्याल में खोया हुआ था। उसके दिमाग में तो, बस दमयंती का आकर्षक रूप चक्कर काट रहा था। ऐसा नहीं था कि उसने नारी देह की चमचमाहट पहले कभी न देखी हो। उसने दो-दो शादियां की थीं। जब पहली से बच्चा नहीं हुआ, तो उसने दूसरी खरीद ली, जो अब वह गठिया रोग से ग्रस्त हो बिस्तर से लगी पड़ी है। उसका समूचा शरीर सूखकर ठठरी हो गया है।

पीतांबर को हर समय यही डर खाये जाता था कि वह निस्संतान ही मर जाएगा। उसकी वंशबेल खत्म हो जाएगी। उसका यह डर तब और बढ़ जाता, जब पुजारी या दूसरे लोग उसके सामने यही बात छेड़ देते। इस बात से उसकी दिमागी हालत भी कुछ गड़बड़ा गयी थी।

"पीतांबर, गांव वाले तुम्हारे बारे में बेपर की उड़ा रहे हैं। कहते हैं कि तुम्हारा दिमाग चला गया है। तुम चिंता मत किया करो, इस दुनिया में ऐसे बेशुमार लोग हैं, जिनके तुम्हारी तरह बच्चा नहीं है। ये बच्चे-कच्चे, दुनियादारी सब माया है, प्रपंच है। छोड़ो इसे।"

पुजारी ने देखा पीतांबर की बीमार पत्नी बिस्तर पर लेटी है। उसकी आंखें ऐसे जल रही हैं, जैसे अंधियारे जंगल में किसी हिंसक जानवर की जलती हैं। लगता था जैसे वह यह जानने की कोशिश कर रही हो कि उसके पति और पुजारी में क्या बातचीत हो रही है। उसकी जलती आंखों की चमक इतनी तेज थी कि दूर से भी उसकी वेदना का एहसास दे रही थी।

पुजारी ने इधर-उधर देखकर पीतांबर के कान में फुसफुसाया, "मैं तुम्हें इस चिंता से छुटकारा दिला सकता हूं।"

"कैसे?"

"इस बार गर्भपात का सवाल ही नहीं उठता। वह चार बार गर्भपात करा चुकी है और हर बार घर के पिछवाड़े बांस के झुरमुट में उसे दफना चुकी हैं।"

"तुम क्या दमयंती की बात कर रहे हो?" पीतांबर में जैसे किसी आवेश की लहर उठी हो, बोला, "कहना क्या चाहते हो?"

"यही कि अगर तुम चाहो तो दमयंती को अपना बना सकते हो?"

पीतांबर उठ खड़ा हुआ। उसकी हालत ऐसी हो रही थी जैसे डूबते को तिनके का सहारा मिल गया हो। पुजारी ने उसकी बीमार पत्नी की ओर एक बार फिर देखा। उसकी आँखें पूरी तरह बंद थीं। शायद उसे दर्द का दौरा पड़ता था।

"मुझे दमयंती दिला दीजिए। मैं उसे हर तरफ का सुख दूंगा।"

पुजारी के पोपले मुंह पर एक क्षण के लिए मक्कारीभरी मुस्कान तैर गयी। "अच्छा, ठीक है। देखूंगा। उसकी दो छोटी बेटियां भी हैं। तुम्हें उनके बारे में भी सोचना होगा।"

पीतांबर ने अंदर जाकर रूपये निकाले और पुजारी के हाथ पर रख दिये। पुजारी गुनगुनाता हुआ आगे बढ़ गया।

इंतजार करते हुए एक सप्ताह गुजर गया। पीतांबर का समूचा अस्तित्व जैसे पुजारी पर टिक गया था। इस बीच उसने कई बार दमयंती को आते-जाते देखा। देखते ही उसके भीतर और खलबली मच जाती। वह उसके खयाल में इतना डूब जाता था कि दमयंती उसे तरह-तरह की मुद्राओं में दिखायी देने लगती। वह हर वक्त घर के बाहर ही बैठा रहता। ये दिन भी ऐसे थे कि दमयंती सड़क के दोनों ओर बहने वाले नालों के किनारे उग आयी कलमी और दूसरी वनस्पतियों को बटोरने आती थी। दमयंती के लंबे, भूरे बाल पीतांबर की आंखों में अटक जाते।

एक दिन पीतांबर ने हिम्मत जुटा ही ली। दमयंती जब हरे पत्ते तोड़ रही थीं, तो वह उसके निकट गया और बोला, "अगर तुम हर रोज इसी तरह कीचभरे पानी में खड़ी रहोगी, तो तुम्हें ठंड लग जाएगी।"

दमयंती ने केवल एक बार उसकी ओर देखा। फिर काम में लग गयी। बोली कुछ भी नहीं।

'मैं नोकर को भेज दूंगा। तुम उसे बता देना, जितनी वनस्पति चाहिए, वह इकट्ठी कर देगा। और... " पीतांबर ने किर कहा।

लेकिन उसका वाक्य अधूरा ही रहा। दमयंती ने हिकारतभरी तीखी नज़रों से जैसे ही उसकी ओर देखा, वह तुरंत वहां से हट गया। उसने देखा कि उसकी पत्नी टूटे पंखों वाले पक्षी की तरह फिर बिस्तर पर लुढ़क गयी है।

इंतजार करते-करते पीतांबर का धैर्य जवाब दे ही रहा था कि तभी पुजारी आ पहुंचे। उन्हें देखकर ही वह पूछने लगा, "क्या खबर लाये हो मेरे लिए? फटाफट बताओ।"

पुजारी ने चारों तरफ अपनी नज़र घुमायी। उसकी बीमार पत्नी लाश की तरह बिस्तर पर पड़ी थी। पुजारी ने पीतांबर के कानों में फुसफुसाया, "ध्यान से सुनो। मुझे एक खबर मिली है। इस समय उसका पेट बिलकुल खाली है। अभी मुश्किल से एक महीना हुआ है, जब उसने अपनी पिछली करतूत का फल जमीन में दबाया हैं। मैंने उससे तुम्हारे बारे में बात की थी। वह एकदम लाल-पीली हो गयी। बल्कि उसने जमीन पर थूक दिया, कहने लगी, "वह कुत्ता! कैसे हिम्मत की उसने ऐसी बात मुझ तक पहुंचाने की? वह जानता नहीं कि मैं यजमानी ब्राह्मण कुल से हूं और वह कीड़ा नीच जाति का महाजन? मैंने उससे कहा कि जब तू पाप की कीचड़ में लोट लगा ही रही है, तब ऊंची जाति क्या और नीची जाति क्या? कोई ब्राह्मण लड़का तो तुझसे शादी करने से रहा। एक तो विधवा उस पर से दो-दो बेटियां। कम-से-कम वह तुमसे शादी करने को तैयार तो है। मैंने उसे साफ-साफ कह दिया कि तुम पंचायत की रजामंदी ले लोगे, और हवन करके विधिवत शादी कर लोगे। उसने तुम्हारी पत्नी के बारे में पूछताछ की। मैंने उसे बताया कि तुम्हारी पत्नी तो उस तिनके की तरह है जो हवा के झोंके से कभी भी उड़ सकता है। एकाएक उसने रोना शुरू कर दिया, बोली, "मेरी तबियत ठीक नहीं रहती। मैं चाहती हूं कि मुझे ऐसा सहारा मिले, जो ठोस हो और बना रहने वाला हो। मैंने उससे कहा, "तुम्हारी तबियत ठीक कैसे रह सकती है? मैंने सुना है कि तुमने अपने पेट से चार बार कचरा निकलवाया है। अगर पंचायत ने इस बात को पकड़ लिया, तो समझ लो, तुम्हारा जीना दुश्वार हो जाएगा। तुम अब तक इसलिए बची हुई हो कि तुम ब्राह्मण हो।

लेकिन कब तक चलेगा यह?" उसका कहना था, "मैं कर भी क्या सकती हूं?" मुझे जिंदा भी तो रहना है। अब मेरे पास न कोई काम है न धंधा। सभी मुझे भ्रष्ट और पतित समझते हैं। और मेरे असामी? वे सब चोट्टे हो गये। धान का मेरा हिस्सा भी नहीं देते। मेरी मजबूरी का फायदा उठाते हैं। ऐसी हालत में मै इन दो नन्हीं बच्चियों को लेकर कहां जाऊं? मैंने लगान भी नहीं चुकाया। एक दिन मेरी जमीन की भी नीलामी हो जाएगी। बताओ मैं क्या करूं?

"खैर मेरे प्रस्ताव का क्या हुआ?"

"हां, हां, मैं उसी पर आ रहा हूं। वह तुमसे मिलना चाहती है। पूर्णमासीवाली रात को, अपने ठिकाने पर, पिछवाड़े वाले कोठे में।"

यह सुनते ही पीतांबर गदगद हो गया। पुजारी ने इस मौके को हाथ से न जाने दिया, उसके कान में फुसफुसाया, "चलो, मेरे लिए चालीस रूपये निकालो। मच्छरों ने नाक में दम कर रखा है। मैंने एक मच्छरदानी लानी है।"

पीतांबर अब अपने घर के भीतर गया। उसने देखा कि उसकी पत्नी पूरी तरह जागी हुई है। उसने उसकी चिंता किये बिना संदूकची से पैसे निकाले। वापस मुड़ा तो देखा कि वह टकटकी लगाये देखे जा रही है। एकाएक भड़क उठा, मुझे इस तरह घूर रही है? मैं तेरी आंखें नोंच लूंगा।"

पुजारी ने सुना तो सब कुछ समझ गया और पीतांबर से पैसे लेते हुए , "देखो, अगर यह ज्यादा घूरती हो, तो इसे थोड़ी

अफीम दे दो।" कहकर वह अपने दो दांतों को दिखाते हुए पोपले मुंह से हंस दिया। फिर संजीदा होकर कहना शुरू किया, "लेकिन उस कुतिया को पैसे की बहुत हूक है। अब सब तय हो गया है। तुम अब उसे उसके उसी ठिकाने पर दबोच सकते हो।"

पीतांबर ने अपनी पत्नी की ओर एक नज़र डाली। उतनी दूरी से भी वह देख सकता था कि उसके माथे पर पसीने की छोटी-छोटी बूंदे चूं आयी हैं।

अगस्त का महीना था। पूर्णमासी की रात। पीतांबर ने अपने सबसे बढ़िया कपड़े पहने। फिर आइना उठा अपना चेहरा निहारने लगा। चेहरे पर उसे वे झुर्रियां दिखायी दीं, जो एक-दूसरे को काट रहीं थीं। वह दमयंती के घर की ओर चल पड़ा। रास्ते में साल का घना जंगल पड़ता था। उसका घर जंगल के पार, गांव के बाहरी हिस्से में था। एक तरह से यह जगह बहुत ही उपयुक्त थी, क्योंकि दमयंती यहां निश्चिंत होकर जो मन में आये, कर सकती थी।

साल के जंगल को पार करते उसे रास्ता काटता गीदड़ों का एक झुंड दिखायी दिया। वह दमयंती के घर के फाटक के पास पहुंचा और चुपके से उसके भीतर हो लिया। एक कमरे में मद्धिम-सी मिट्टी के तेल की ढिबरी जल रही थी। उसने भीतर झांका। दमयंती इंतजार करती पिछवाड़े के कोठे से पीतांबर की हर गतिविधि देख रही थी। उसने वहीं से पुकारा, "अरे इधर। यहां!"

दमयंती कोठे की टूटी हुई दीवार से लगी खड़ी थी। पीतांबर उसकी आंखों में आंखें डालकर देखने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहा था। तभी उसने सुना, वह कह रही थी, "पैसे लाये हो?"

वह स्तब्ध रह गया। उसे उम्मीद नहीं थी कि उसका पहला सवाल पैसा ही होगा।

"यह रहे। पकड़ो। मेरा जो कुछ है, सब तुम्हारा है।"

पैसे रखते हुए उसने अपनी कमर में खोंसा हुआ बटुआ अपने ब्लाउज में रख लिया। अब उसने दीया उठाया और उसे एक कमरे में ले गयी। वहां एक खटिया पड़ी थी। यह खटिया उसके पति को गोसाई की अंत्येष्टि के समय मिली थी। फूंक मारकर उसने दीया बुझा दिया।

•••

दो माह बीत चुके थे इसी तरह पीतांबर को दमयंती के पास आते-जाते। पीतांबर उसके घर से निकला ही था कि दमयंती अलसाती-सी कुएं की ओर बढ़ी और वहां नहाने लगी। ठीक उसी समय पुजारी आ पहुंचा और बड़े व्यंग्य से बोला, "उस ब्राह्मण लड़के का संग पाने के बाद तो तुम नहाती नहीं थीं? अब क्या हो गया है?"

दमयंती ने कोई उत्तर नहीं दिया। "जानता हूं पीतांबर निचली जाति का है। यही बात है न?"

एकाएक दमयंती उठ दौड़ी। वह सहन के दूसरे कोने में पहुंची और वहां दुहरी होकर उल्टी करने लगी।

पुजारी लपककर उसके पास पहुंचा और धीरे-से पूछा, "यह पीतांबर का ही होगा।"

उसने फिर भी कोई उत्तर नहीं दिया।

वाह! कितनी बढ़िया खबर है। पीतांबर तो बच्चे के लिए तरस रहा है।

दमयंती ने इस पर भी कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की।

अब मैं चलता हूं और और उसे यह खबर देता हूं। अब वह तुमसे खुल्लमखुल्ला शादी कर सकता है।"

फिर दमयंती के निकट आया और फुसफुसाता हुआ बोला, "तुम्हारे यहां जो कुछ चलता रहता है, लोग उससे परेशान हैं। बीच-बीच में बात भी होती रहती है, कि पंचायत बुलायी जाएं। और सुनो.... !"

दमयंती ने कुछ नहीं सुना, वह उल्टियां करती रही।

पुजारी कहता गया, "इस सबके बावजूद पीतांबर तुमसे शादी करने को तैयार है। देखो, मै इस जनेऊ पर हाथ रखकर कसम खाता हूं कि अगर इस बार भी तुमने इस बच्चे को गिराया। तो तुम नरक की आग में जलोगी।"

पीतांबर को सारी खबर सुनाकर पुजारी बोला, "अब लगता है तुम्हारा स्वप्न पूरा होने को है। अगर उसने इस बच्चे को न गिराया तो विश्वास रखो, वह तुमसे शादी कर लेगी।"

पीतांबर का समूचा शरीर खुशी से थरथराने लगा, क्या यह वाकई सच है? दमयंती के पेट में बच्चा मेरा ही है? होगा। पुजारी झूठ क्यों बोलेगा? मेरा ही बच्चा होगा। "देखना कहीं मेरी उम्मीद पर पानी न फिर जाए। तुम जानते ही हो, यदि यह बच्चा गिर गया, तो मेरी वंशबेल को आगे बढ़ाने वाला कोई नहीं रहेगा। अब तो दमयंती की मुट्ठी में ही मेरी जान है।"

"तुम चिन्ता मत करो। जैसे एक गिद्ध लाश की चौकसी करता है, मैं भी उसी तरह दमयंती की चौकसी करूंगा। साथ ही उस बुढ़िया दाई को भी चेतावनी दे दूंगा कि बच्चा गिराने के लिए वह इसे कोई उल्टी-सीधी जड़ी-बूटी न दे। लेकिन खेल सारा पैसे का है। इसके लिए मुझे ढेर सारी रकम चाहिए।"

रकम लेने के लिए पीतांबर घर में दाखिल हुआ। उसे फिर बीमारी पत्नी की छेदती पत्थर हुई आंखों का सामना करना पड़ा। उन आंखों में लांछना का भाव था, चाहे उसके लिए हो या पुजारी के लिए। वह जोर से गुर्राते हुए बोला, "अरी, बांझ कुतिया। इस तरह मेरी तरफ क्यों देख रही है?"

•••

पीतांबर अब हर समय अपने घर के बाहर बैठ दमयंती के पेट में पल रहे अपने बच्चे के बारे में सपने लेता रहता। कल्पना करता कि अब उसका बेटा अपनी पूरी जवानी में हैं, और उसे नदी के किनारे घुमाने ले गया है। फिर उसे ऐसे लगता कि उसकी वंश बेल उसे चमचमाते भविष्य की ओर खींचे ले जा रही है।

पांच महीने बीत गये। पीतांबर ने सुन रखा था कि पांच महीने का गर्भ नष्ट नहीं किया जा सकता। वह चाह रहा था कि किसी तरह दिन जल्दी-जल्दी बढ़ जाएं।

एक दिन दोपहर को तेज अंधड़ आया। चारों ओर घुप्प अंधेरा छा गया। भारी वर्षा हुई। बादलों से बिजली गिरी और सहन वाले पेड़ को दो-फाड़ कर गयी।

ऐसी घनघोर बरसाती रात में एकाएक पीतांबर के कानों में कोई स्वर सुनायी पड़ा। कोई उसे बुला रहा था। हाथ में लालटेन लेकर वह बाहर की ओर लपका। एक आकृति उसकी आँखों के सामने उभरी। पुजारी की थी। उसके मुंह से

निकल पड़ा, "अरे, पुजारीजी तुम!"

पुजारी घबराया हुआ–सा बोला, "पीतांबर, तुम्हारी पहली पत्नी अशुभ घड़ी में मरी थी न! उसी की वजह से ये सब हो रहा है?"
"क्या हो रहा है? क्या हुआ?"
"शास्त्रों में कहा गया है कि जब किसी व्यक्ति की ऐसी अशुभ घड़ी में मृत्यु होती है, जैसी कि तुम्हारी पत्नी की हुई थी, तो घास का तिनका भी नहीं उपजता। बल्कि, जो होता भी तो वह भी जलकर राख हो जाता है। तुम्हारे लिए अब सब कुछ जलकर राख हो गया।"

पीतांबर लगभग चीख पड़ा, "हुआ क्या है? ईश्वर के लिए मुझे जल्दी बताओ।"
"क्या कहूं। उसने बच्चे को नष्ट कर दिया। कहती थी कि वह किसी छोटी जाति वाले का बीज अपने भीतर नहीं पनपने दे सकती।"

पीतांबर के साथ सपने में नदी किनारे टहलने वाले युवक का पांव एकाएक फिसल गया और वह नदी में जा गिरा.... ।

•••

एक रोज आधी रात को दमयंती एकाएक चौंककर उठी। उसके पिछवाड़े जमीन खोदने की आवाज आ रही थी। जमीन वही थी, जहां कुछ रोज पहले दमयंती ने अपने भ्रूण को दबाया था। दमयंती ने देखा, पीतांबर पागलों की तरह जमीन खोदे जा रहा है। दमयंती ने देखा, पीतांबर पागलों की तरह जमीन खोदे जा रहा है। दमयंती का शरीर सर से पांव तक कांप गया। हिम्मत कर उसने आवाज दी, "ए महाजन! अरे महाजन! क्यों खोदे जा रहे हो जमीन?"

पीतांबर ने कोई जवाब नहीं दिया। बस खोदता रहा।

दमयंती पागलों की तरह चिल्लायी, "क्या मिलेगा तुझे वहां? हां मैंने उसे दबा दिया है। वह नर ही था, पर वह मांस का एक लोथड़ा भर ही था।"

पीतांबर का चेहरा तमतमाया हुआ था और उसकी आंखें जल रहीं थीं, वह चीखकर बोला, "मैं उस लोथड़े को अपने इन हाथों से छूना चाहता हूं। वह मेरी वंशबेल की कड़ी थी, मेरे ही खून से बना था वह। मै उसे एक बार जरूर छूकर देखूंगा।"

गर्म कोट राजेन्द्र सिंह बेदी

मैंने देखा है, मैराजुद्दीन टेलर मास्टर की दूकान पर बहुत से उम्दा–उम्दा सूट लटके होते हैं। उन्हें देखकर अक्सर मेरे दिल में ख़याल पैदा होता है कि मेरा अपना गरम कोट बिल्कुल फट गया है और इस साल हाथ तंग होने के बावजूद मुझे एक नया गरम कोट ज़रूर सिलवा लेना चाहिए। टेलर मास्टर की दूकान के सामने से गुज़रने या अपने महकमे के तफ़रीह के क्लब में जाने से गुरेज़ करूं तो मुमकिन है मुझे गरम कोट का ख़याल भी न आए, क्योंकि क्लब में जब संता सिंह और यजदानी के कोटों के नफ़ीस वर्सटेड मेरे भावनाओं के घोड़े पर कोड़े लगाते हैं तो मैं अपने कोट की बोसीदगी को शदीद तौर पर महसूस करने लगता हूं। यानी वह पहले से कहीं ज़्यादा फट गया है।

बीवी–बच्चों को पेट भर रोटी खिलाने के लिए मुझ–से मामूली क्लर्क को अपनी बहुत–सी ज़रूरियात तर्क करना पड़ती हैं और उन्हें जिगर तक पहुंचती हुई सर्दी से बचाने के लिए खुद मोटा–झोटा पहनना पड़ता है... यह गरम कोट मैंने पारसाल देहली दरवाज़े से बाहर पुराने कोटों की एक दूकान से मोल लिया था। कोटों के सौदागर ने पुराने कोटों की सैकड़ों गांठें किसी मरानजा, मरानजा एंड कंपनी कराची से मंगवाई थीं। मेरे कोट में नकली सिल्क के अस्तर से बनी हुई अंदरूनी जेब के नीचे मरानजा, मरानजा एंड को. का लेबिल लगा हुआ था। मगर कोट मुझे मिला बहुत सस्ता। महंगा रोए एक बार सस्ता रोए बार–बार... और मेरा कोट हमेशा ही फटा रहता था।

इसी दिसंबर की एक शाम को तफ़रीह–क्लब से वापस आते हुए मैं इरादतन अनारकली में से गुज़रा। उस वक़्त मेरी जेब में दस रुपए का नोट था। आटा, दाल, इंधन, बिजली बीमा कंपनी के बिल चुका देने पर मेरे पास वही दस का नोट बच रहा था... जेब में दाम हों तो अनारकली में से गुज़रना बुरा नहीं। उस वक़्त अपने आप पर गुस्सा भी नहीं आता। बल्कि अपनी जात कुछ भली मालूम होती है। उस वक़्त अनारकली में चारो तरफ़ सूट ही सूट नज़र आ रहे थे और साड़ियां.. .चंद साल से हर नत्थु ख़ैरा सूट पहनने लगा है। मैंने सुना है गुज़िश्ता चंद साल में कई टन सोना हमारे मुल्क से बाहर चला गया है। शायद इसीलिए लोग जिस्मानी श्रृंगार का ख़याल भी बहुत ज़्यादा रखते हैं। नये–नये सूट पहनना और खूब शान से रहना हमारी निर्धनता का स्पष्ट सुबूत है। वर्ना जो लोग सचमुच अमीर हैं, ऐसी शानो–शौकत और ज़ाहिरी औपचारिकताओं की तनिक परवाह नहीं करते।

कपड़े की दूकान में वर्सटेड के थानों के थान खुले पड़े थे। उन्हें देखते हुए मैंने सोचा, 'क्या मैं इस महीने के बचे हुए दस रुपयों में से कोट का कपड़ा ख़रीदकर बीवी–बच्चों को भूखा मारूं?' लेकिन कुछ अर्से के बाद मेरे दिल में नये कोट के नापाक ख़याल का रद्दे अमल शुरू हुआ। मैं अपने पुराने गरम कोट का बटन पकड़कर उसे बल देने लगा। चूंकि तेज़–तेज़ चलने से मेरे जिस्म में हरारत आ गई थी, इसलिए मौसम की सर्दी और इस किस्म के बाह्य प्रभाव मेरे कोट ख़रीदने के इरादे को पूर्णता तक पहुंचाने में असमर्थ रहे। मुझे तो उस वक्त अपना वह कोट भी सरासर तकल्लुफ़ नज़र आने लगा।

ऐसा क्यों हुआ? मैंने कहा है कि जो शख़्स हकीकतन अमीर हों, वह ज़ाहिरी शान की ज़रा भी फ़िक्र नहीं करते। जो लोग सचमुच अमीर हों उन्हें तो फटा हुआ कोट, बल्कि क़मीस भी तकल्लुफ़ में दाख़िल समझनी चाहिए। तो क्या मैं सचमुच अमीर था कि... ?
मैंने घबराकर वैयक्तिक विश्लेषण छोड़ दिया और बमुश्किल दस का नोट सही–सलामत लिए घर पहुंचा।
शमी, मेरी बीवी, मेरी मुंतज़िर थी।
आटा, गूंधते हुए उसने आग फूंकनी शुरू कर दी... कमबख़्त मंगल सिंह ने उस दफा लकड़ियां गीली भेजी थीं। आग जलने का नाम ही नहीं लेती थी। ज़्यादा फूंकें मारने से गीली लकड़ियों में से ज़्यादा धुआं उठता। शमी की आंखें लाल अंगारा हो गईं। उनसे पानी बहने लगा।
"कमबख़्त कहीं का... मंगल सिंह," मैंने कहा, "इन पुरनम आंखों के लिए मंगल सिंह तो क्या मैं तमाम दुनिया से जंग करने पर आमादा हो जाऊं..."

बहुत तगो–दो के बाद लकड़ियां आहिस्ता–आहिस्ता चटख़ने लगीं। आख़िर इन पुरनम आंखों के पानी ने मेरे गुस्से की आग बुझा दी... शमी ने मेरे शाने पर सिर रखा और मेरे फटे हुए गरम कोट में पतली–पतली उंगलियां दाख़िल करती हुई बोली,
"अब तो यह बिल्कुल काम का नहीं रहा।"
मैंने धीमी आवाज़ से कहा, "हां!"
"सी दूं?... यहां से..."
"सी दो। अगर कोई एक–आध तार निकालकर रफ़ू कर दो तो क्या कहने हैं।"
कोट को उलटाते हुए शमी बोली, "अस्तर को तो मुई टिड्डियां चाट रही हैं... नकली रेशम का है ना... ये देखिए।"

मैंने शमी से अपना कोट छीन लिया और कहा, "मशीन के पास बैठने की बजाय तुम मेरे पास बैठो शमी... देखती नहीं हो दफ़्तर से आ रहा हूं। यह काम तुम उस वक्त कर लेना जब मैं सो जाऊं!"
शमी मुस्कराने लगी।
शमी की वह मुस्कराहट और मेरा फटा हुआ कोट!
शमी ने कोट को खुद ही एक तरफ़ रख दिया। बोली, "मैं खुद भी उस कोट की मरम्मत करते-करते थक गई हूं..." उसे मरम्मत करने में इस गीले ईंधन को जलाने की तरह जान मारनी पड़ती है। आंखें दुखने लगती हैं,
"आख़िर आप अपने कोट के लिए कपड़ा क्यों नहीं ख़रीदते?"

मैं कुछ देर सोचता रहा।
यों तो मैं अपने कोट के लिए कपड़ा ख़रीदना गुनाह ख़याल करता था, मगर शमी की आंखें... उन आंखों को तकलीफ़ से बचाने के लिए मैं मंगल सिंह तो क्या तमाम दुनिया से जंग करने पर आमादा हो जाऊं। वर्सटेड के थानों के थान ख़रीद लूं। नये गरम कोट के लिए कपड़ा ख़रीदने का ख़याल दिल में पैदा हुआ ही था कि पुष्पामणि भागती हुई कहीं से आ गई, आते ही बरामदे में नाचने और गाने लगी। उसकी हरकत कथकली मुद्रा से ज़्यादा आह्लादकारी थी।
मुझे देखते हुए पुष्पामणि ने अपना नाच और गाना ख़त्म कर दिया। बोली, "बाबू जी, आप आ गए? आज बड़ी बहन जी ने कहा था – मेज़पोशी के लिए दुसूती लाना और गरम कपड़े पर काट सिखाई जाएगी। गुनिया माप के लिए और गरम कपड़ा..."
चूंकि इस वक़्त मेरे गरम कोट ख़रीदने की बात हो रही थी, शमी ने ज़ोर से एक चपत उसके मुंह पर लगाई और बोली, "इस जनमजली को हर वक़्त कुछ न कुछ ख़रीदना ही होता है... मुश्किल से उन्हें कोट सिलवाने पर राज़ी कर रही हूं..."
वह पुष्पामणि का रोना और मेरा नया कोट!
मैंने ख़िलाफ़े-आदत ऊंची आवाज़ से कहा, "शमी!"
शमी कांप गई। मैंने गुस्से से आंखें लाल करते हुए कहा, "मेरे इस कोट की मरम्मत कर दो... अभी... किसी तरह करो... ऐसे जैसे रो-पीटकर मंगल सिंह की गीली लकड़ियां जला लेती हो... तुम्हारी आंखें! हां, याद आया... देखो तो पुष्पामणि कैसे रो रही है। पोपी बेटा, इधर आओ ना, इधर आओ मेरी बच्ची! क्या कहा था तुमने? बोलो तो... दुसूती? गुनिया माप के लिए और काट सीखने को गरम कपड़ा?... बच्चू नन्हा भी तो ट्राइसिकल का राग आलापता और गुब्बारे के लिए मचलता सो गया होगा। उसे गुब्बारा न ले दोगी तो मेरा कोट सिल जाएगा ना? कितना रोया होगा बेचारा... शमी! कहां है बच्चू?" बच्चू आ गए – आंधी और बारिश की तरह शोर मचाते हुए।

मैंने शमी को खुश करने के लिए नहीं बल्कि यों ही काफ़ूरी रंग के मीनाकार कांटे सबसे पहले लिखे। अचानक रसोई की तरफ़ मेरी नज़र उठी – चूल्हे में लकड़ियां धड़-धड़ जल रही थीं और इधर शमी की आंखें भी दो चमकते हुए सितारों की तरह रौशन थीं। मालूम हुआ कि मंगल सिंह गीली लकड़ियां वापस ले गया है।
"वह शहतूत के डंडे जल रहे हैं और खोखा..." शमी ने कहा।
"और उपले?"
"जी हां, उपले भी..."
"मंगल सिंह देवता है... शायद मैं भी जल्दी ही गरम कोट के लिए अच्छा-सा वर्सटेड ख़रीद लूं ताकि तुम्हारी आंखें यों ही चमकती रहें। इन्हें तकलीफ़ न हो... इस माह की तनख़्वाह में तो गुंजाइश नहीं, अगले महीने ज़रूर... ज़रूर..."
"जी हां, जब सर्दी गुज़र जाएगी..."

पुष्पामणि ने कई चीज़ें लिखाईं। दुसूती, गुनिया माप के लिए, गरम ब्लेज़र सब्ज़ का रंग का एक गज, मुरब्बा, डी. एम. सी. के गोले, गोटे की मग़ज़ी.. और इमरतियां और बहुत से गुलाबजामुन... । मुई ने सबकुछ ही तो लिखवा दिया। मुझे दाइमी क़ब्ज़ था। मैं चाहता था कि यूनानी दवाखाने से इत्रीफल ज़मानी का एक डिब्बा भी ला रखूं। दूध के साथ थोड़ा-सा खाकर सो जाया करूंगा। मगर मुई पुष्पा ने उसके लिए गुंजाइश ही कहां रखी थी! और जब पुष्पामणि ने कहा, 'गुलाबजामुन', तो उसके मुंह में पानी भर आया। मैंने कहा, सबसे ज़रूरी चीज़ तो यही है... शहर से वापस आने पर गुलाबजामुन वहां छुपा दूंगा, जहां सीढ़ियों में बाहर जमादार अपना दूध का कलसा रख दिया करता है और पुष्पा से कहूंगा

कि मैं तो लाना ही भूल गया तुम्हारे लिए गुलाबजामुन... ओहो! उस वक्त उसके मुंह में पानी भर आएगा और गुलाबजामुन न पाकर उसकी अजीब कैफ़ियत होगी।

फिर मैंने सोचा, बच्चू भी तो सुबह से गुब्बारे और ट्राइसिकल के लिए ज़िद कर रहा था। मैंने एक मर्तबा अपने आपसे सवाल किया, "इत्रीफल ज़मानी?" शमी बच्चू को पुचकारते हुए कह रही थी, "बच्चू बेटी को ट्राइसिकल ले दूंगी अगले महीने... बच्चू बेटी सारा दिन चलाया करेगी ट्राइसिकल... पोपी मुन्ना नहीं लेगा..."
"बच्चू चलाया करेगी और पोपी मुन्ना नहीं लेगा!" और मैंने शमी की आंखों की कसम खाई कि जब तक ट्राइसिकल के लिए छे-सात रुपये जेब में न हों, मैं नीले गुंबद के बाज़ार से नहीं गुज़रूंगा। इसलिए कि दाम न होने की सूरत में नीले गुंबद के बाज़ार से गुज़रना बहुत बुरा है। ख़्वामख़्वाह अपने आप पर गुस्सा आएगा, अपनी ज़ात से नफ़रत पैदा होगी।

इस वक़्त शमी बैलजियमी आईने की बैज़वी टुकड़ी के सामने अपने काफ़ूरी सफ़ेद सूट में खड़ी थी। मैं चुपके से उसके पीछे जा खड़ा हुआ और कहने लगा, 'मैं बताऊं तुम इस वक्त क्या सोच रही हो!"
"बताओ तो जानूं!"
"तुम सोच रही हो, काफ़ूरी सफ़ेद सूट के साथ वह काफ़ूरी रंग के मीनाकार कांटे पहनकर ज़िलेदार की बीवी के यहां जाऊं तो दंग रह जाए।"
"नहीं तो," शमी ने हंसते हुए कहा, "आप मेरी आंखों से प्यार करते तो कभी का ग़र्म..."

मैंने शमी के मुंह पर हाथ रख दिया। मेरी तमाम ख़ुशी बेबसी में बदल गई। मैंने आहिस्ता से कहा, "बस... इधर देखो.. .अगले महीने ज़रूर ख़रीद लूंगा..."
"जी हां, सब सर्दी..."
"फिर मैं अपनी उस हसीन दुनिया को, जिसकी तख़लीक़ पर, महज़ दस रुपए सर्फ़ होते थे, तसव्वुर में बसाए बाज़ार चला गया।

मेरे सिवा अनारकली से गुज़रनेवाले हर इज़्ज़तदार आदमी ने गरम सूट पहन रखा था। लाहौर के एक लहीम-शहीम जैंटिलमैन की गर्दन नेकटाई और मुकल्लफ़ कालर के सबब मेरे छोटे भाई के पालतू कुत्ते 'टाइगर' की गर्दन की तरह अकड़ी हुई थी। मैंने उन सूटों की तरफ़ देखते हुए कहा, "लोग सचमुच मुफ़लिस हो गए हैं! इस महीने न मालूम कितना सोना-चांदी हमारे मुल्क से बाहर चला गया है।" कांटों की दूकान पर मैंने कई जोड़ियां कांटे देखे। अपनी तख़य्युल की पुख़्ताकारी से मैं शमी की काफ़ूरी सफ़ेद सूट में मलबूस जेहनी तस्वीर को कांटे पहनाकर पसंद या नापसंद कर लेता! काफ़ूरी सफ़ेद सूट... काफ़ूरी मीनाकार कांटे... व्हेराइटीज़ के कारण मैं एक भी चयन न कर सका।

उस वक़्त बाज़ार में मुझे यज़दानी मिल गया। वह तफ़रीह-क्लब से जो दरअसल परेल क्लब थी, पंद्रह रुपए जीतकर आया था। आज उसके चेहरे पर अगर सुर्ख़ी बशाशत की लहरें दिखाई देती थीं तो कुछ ताज्जुब की बात न थी। मैं एक हाथ से अपनी जेब की सलवटों को छुपाने लगा। निचली बाई जेब पर एक रुपए के बराबर कोट से मिलते हुए रंग का पेबंद बहुत ही नामौजूं दिखाई दे रहा था... मैं उसे भी एक हाथ से छुपाता रहा। फिर मैंने दिल में कहा- क्या अजब, यज़दानी ने मेरे शाने पर हाथ रखने से पहले मेरी जेब की सलवटें और वह रुपए बराबर कोट के रंग का पेबंद देख लिया हो... उसका भी रद्दे-अमल शुरू हुआ और मैंने दिलेरी से कहा,
"मुझे क्या परवाह है... यज़दानी मुझे कौन-सी थैली बख़्शा देगा... और इसमें बात ही क्या है? यज़दानी और संतासिंह ने बारहा मुझसे कहा है कि वह उच्च विचार की ज़्यादा परवा करते हैं और वर्सटेड की कम। मुझसे कोई पूछे। मैं वर्सटेड की ज़्यादा परवा करता हूं और रिफ़अते-ज़ेहनी की कम!'

यज़दानी रुख़्सत हुआ और जब तक वह नज़र से ओझल न हो गया, मैं ग़ौर से उसके कोट के नफ़ीस वर्सटेड को पुश्त की जानिब से देखता रहा।
फिर मैंने सोचा कि सबसे पहले मुझे पुष्पामणि के गुलाबजामुन और इमरतियां ख़रीदनी चाहिए। कहीं वापसी पर सचमुच

भूल ही न जाऊं। घर पहुंचकर उन्हें छुपाने से ख़ूब तमाशा रहेगा। मिठाई की दूकान पर खौलते तेल में कचौरियां ख़ूब फूल रही थीं। मेरे मुंह में पानी भर आया। इस तरह, जैसे गुलाबजामुन के तख़य्युल से पुष्पामणि के मुंह में पानी भर आया था। कब्ज़ और इत्रीफल ज़मानी के ख़याल के बावजूद मैं सफ़ेद पत्थर की मेज़ पर कोहनियां टिकाकर बहुत रुचि से कचौरियां खाने लगा।

हाथ धोने के बाद जब पैसों के लिए जेब टटोली तो उसमें कुछ भी न था। दस का नोट कहीं गिर गया था।
कोट की अंदरूनी जेब में एक बड़ा सूराख़ हो रहा था। नक़ली रेशम को टिड्डियां चाट गई थीं। जेब में हाथ डालने पर उस जगह जहां मरानजा, मरानजा एंड कंपनी का लेबिल लगा हुआ था, मेरा हाथ बाहर निकल आया। नोट वहीं से बाहर गिर गया होगा।

एक लम्हे में यों दिखाई देने लगा, जैसे कोई भोली-सी भेड़ अपनी ख़ूबसूरत, मुलायम-सी ऊन उतर जाने पर दिखाई देने लगती है।
हलवाई भांप गया। ख़ुद ही बोला, "कोई बात नहीं बाबू जी, पैसे कल आ जाएंगे।"
मैं कुछ न बोला...कुछ बोल ही न सका।
सिर्फ़ कृतज्ञता-ज्ञापन के लिए मैंने हलवाई की तरफ़ देखा। हलवाई के पास ही गुलाबजामुन चाशनी में डूबे पड़े थे। रोगन में फूलती हुई कचौरियों के धुएं में से आतशी सुर्ख़ इमरतियां जिगर पर दाग़ लगा रही थीं। और जेहन में पुष्पामणि की धुंधली-सी तस्वीर फिर गई।

मैं वहां से बादामी बाग़ की तरफ़ चल दिया और आध-पौन घंटे के क़रीब बादामी बाग़ के रेलवे लाइन के साथ-साथ चलता रहा। इस अर्से में जंक्शन की तरफ़ से एक मालगाड़ी आई। उसके पांच मिनट बाद एक शंट करता हुआ इंजन, जिसमें से दहकते हुए सुर्ख़ कोयले लाइन पर गिर रहे थे...मगर उस वक़्त क़रीब ही की साल्ट रिफ़ाइनरी में से बहुत से मज़दूर ओवर टाइम लगाकर लौट रहे थे...मैं लाइन के साथ-साथ दरिया के पुल की तरफ़ चल दिया। चांदनी रात में सर्दी के बावजूद कॉलेज के चंद मनचले नौजवान किश्ती चला रहे थे।

"कुदरत ने अजीब सज़ा दी है मुझे," मैंने कहा, "पुष्पामणि के लिए गोटे की मग़ज़ी, दुसूती, गुलाबजामुन और शमी के लिए काफ़ूरी मीनाकार कांटे ख़रीदने से बढ़कर कोई गुनाह सरज़द हो सकता है? किस बेरहमी और बेदर्दी से मेरी एक हसीन मगर बहुत सस्ती दुनिया बरबाद कर दी गई है। जी तो चाहता है कि मैं भी कुदरत का एक शाहकार तोड़-फोड़कर रख हूं..." मगर पानी में किश्तीरां लड़का कह रहा था, "इस मौसम में तो रावी का पानी घुटने-घुटने से ज़्यादा कहीं नहीं होता।"
"सारा पानी तो ऊपर से अपर बारी दोआब ले लेती है। और यों भी आजकल पहाड़ों पर बर्फ़ नहीं पिघलती।" दूसरे ने कहा।
मैं लाचार घर की तरफ़ लौटा और निहायत बेदिली से ज़ंजीर हिलाई।
मेरी ख़्वाहिश और अंदाज़े के मुताबिक पुष्पामणि और बच्चू नन्हा बहुत देर हुई दहलीज़ से उठकर बिस्तरों में जा सोए थे। शमी चूल्हे के पास शहतूत के नीम-जान कोयलों को तापती हुई कई मर्तबा ऊंघी और कई मर्तबा चौंकी थी। वह मुझे ख़ाली हाथ देखकर ठिठक गई। उसके सामने मैंने चोर जेब के अंदर हाथ डाला और लेबिल के नीचे से निकाल लिया। शमी सबकुछ समझ गई। वह कुछ न बोली...कुछ बोल ही न सकी।

मैंने कोट खूंटी पर लटका दिया। मेरे पास ही दीवार का सहारा लेकर शमी बैठ गई और हम दोनों सोए हुए बच्चों और खूंटी पर लटके हुए ग़र्म कोट को देखने लगे।
अगर शमी ने मेरा इंतज़ार किए बग़ैर वह काफ़ूरी सूट बदल दिया होता तो शायद मेरी हालत इतनी बदली हुई न होती।

यज़दानी और संतासिंह तफ़रीह-क्लब में परेल खेल रहे थे। उन्होंने दो-दो घूंट पी भी रखी थी। मुझसे भी पीने के लिए इसरार करने लगे। मगर मैंने इनकार कर दिया। इसलिए कि मेरी जेब में दाम न थे। संतासिंह ने अपनी तरफ़ से एक-

आध घूंट ज़बर्दस्ती मुझे भी पिला दिया। शायद इसलिए कि वह जान गए थे कि इसके पास पैसे नहीं हैं। या शायद इसलिए कि वह उच्चविचार की वर्सटेड से ज़्यादा परवा करते थे।

अगर मैं घर में उस दिन शमी को वही काफ़ूरी सफ़ेद सूट पहने हुए देखकर न आता तो शायद परेल में क़िस्मत आज़माई करने को मेरा जी भी न चाहता। मैंने सोचा, काश! मेरी जेब में भी एक-दो रुपए होते...क्या अजब था कि मैं बहुत-से रुपए बना लेता...मगर मेरी जेब में तो कुल पौने चार आने थे।

यज़दानी और संतासिंह निहायत उम्दा वर्सटेड के सूट पहने क्लब के सेक्रेटरी से झगड़ रहे थे। नेक आलम कह रहा था कि वह तफ़रीह-क्लब को परेल क्लब और 'बार' बनते हुए कभी नहीं देख सकता। उस वक़्त मैंने एक मायूस आदमी के मख़सूस अंदाज़ में जेब में हाथ डाला और कहा, "बीवी-बच्चों के लिए कुछ ख़रीदना कुदरत के नज़दीक गुनाह है। इस हिसाब से परेल खेलने के लिए तो उसे अपनी गिरह से दाम देने चाहिए! ही ही...गी...गी..."

अंदरूनी खीसा...बाई निचली जेब...कोट में पुश्त की तरफ़ मुझे काग़ज़ सरकता हुआ मालूम हुआ। उसे सरकाते हुए मैंने दाईं जेब के सूराख़ के नज़दीक जा निकला।
...वह दस रुपए का नोट था जो उस दिन अंदरूनी जेब की तह के सूराख़ में से गुज़रकर कोट के अंदर-ही-अंदर गुम हो गया था।
उस दिन मैंने कुदरत से इंतकाम लिया। मैं इसकी ख़्वाहिश के मुताबिक परेल-वरेल न खेला। नोट को मुट्ठी में दबाए घर की तरफ़ भागा। अगर उस दिन मेरा इंतज़ार किए बग़ैर शमी ने वह काफ़ूरी सूट बदल दिया होता तो मैं ख़ुशी से यों दीवाना कभी न होता।

हां, फिर चलने लगा वही तख़य्युल का दौर। गोया एक हसीन से हसीन दुनिया की तख़लीक में दस रुपए से ऊपर एक दमड़ी भी खर्च नहीं आती। जब मैं बहुत-सी चीज़ों की फ़ेहरिस्त बना रहा था, शमी ने मेरे हाथ से काग़ज़ छीनकर पुर्ज़े-पुर्ज़े कर दिया और बोली, "इतने किले मत बनाइए..फिर नोट को नज़र लग जाएगी।"
"शमी ठीक कहती है।" मैंने सोचते हुए कहा, "न तख़य्युल इतना रंगीन हो और न महरूमी से इतना दुख पहुंचे।"
फिर मैंने कहा, "एक बात है शमी! मुझे डर है कि नोट फिर कहीं मुझसे गुम न हो जाए...तुम्हारी खेमो पड़ोसन बाज़ार जा रही है, उसके साथ जाकर तुम यह सब चीज़ें खुद ही ख़रीद लाओ...काफ़ूरी मीनाकारी कांटे...डी.एम.सी. के गोले, मग़ज़ी ...और देखो, पोपी-मुन्ना के लिए गुलाबजामुन ज़रूर लाना...ज़रूर..."

शमी ने खेमों के साथ जाना मंजूर कर लिया और उस शाम शमी ने कश्मीरे का एक वह सूट पहना जो उसे दहेज़ में मां-बाप ने दिया था।
बच्चों के शोर-गुल से मेरी तबीयत बहुत घबराती है, मगर उस दिन मैं देर तक बच्चू नन्हें को उसकी मां की ग़ैरहाज़िरी में बहलाता रहा। रसोई में इंधन की कोलकी, गुसलख़ाने, नीम छत पर...सब जगह उसे ढूंढ़ता फिरा। मैंने उसे पुचकारते हुए कहा, "ट्राइसिकल लेने गई है...नहीं जाने दो, ट्राइसिकल गंदी चीज़ होती है, आख़थू..गुब्बारा लाएगी बीबी तुम्हारे लिए, बहुत खूबसूरत गुब्बारा..."
बच्चू बेटी ने मेरे सामने थूक दिया। बोलीं, "ऐ...ई...गंडी..."
मैंने कहा, "कोई देखे तो...कैसा बेटियों-जैसा बेटा है।"
पुष्पामणि को भी मैंने गोद में ले लिया और कहा, "पोपी मुन्ना, आज गुलाबजामुन जी भरकर खाएगा ना!"

उसके मुंह में पानी भर आया। वह गोदी से उतर पड़ी और बोली, "ऐसा मालूम होता है जैसे एक बड़ा-सा गुलाबजामुन खा रही हूं।"
बच्चू रोता रहा। पुष्पामणि कथकली मुद्रा से ज़्यादा हसीन नाच बरामदे में नाचती रही।
मुझे मेरे तख़य्युल की परवाज़ से कौन रोक सकता था। कहीं मेरे तख़य्युल के किले ज़मीन पर न आ रहें, इसी डर से तो

मैंने शमी को बाज़ार भेजा था। मैं सोच रहा था, शमी अब घोड़े अस्पताल के करीब पहुंच चुकी होगी...अब कॉलेज रोड़ की नुक्कड़ पर होगी...अब गंदे इंजन के पास...

और एक निहायत धीमी आवाज़ से ज़ंजीर हिली।
शमी सचमुच आ गई थी, दरवाज़े पर।
शमी अंदर आते हुए बोली, "मैंने दो रुपए खेमों से उधार लेकर भी ख़र्च कर डाले थे।"
"कोई बात नहीं," मैंने कहा।
फिर बच्चू, पोपी मुन्ना और मैं तीनों शमी के आगे-पीछे घूमने लगे।
मगर शमी के हाथ में एक बंडल के सिवा कुछ न था। उसने मेज़ पर बंडल खोला – वह मेरे कोट के लिए बहुत नफ़ीस वर्सटेड था।
पुष्पामणि ने कहा, "बीबी, मेरे गुलाबजामुन..."
शमी ने ज़ोर से एक चपत उसके मुंह पर लगा दी!

ढाई अक्खर हरचरण चावला

जर्मनी में सरदार टहलसिंह अपनी सिखी के तमाम कक्के उतार कर भी सरदार रह गया था। वह दरअसल ढाई अक्खर जर्मन भाषा सीख कर हाइम नंबर छह के चीफ का चहेता बन गया था और उसकी ओर से निश्चित अपने कमरे वालों का सरदार।

हमारे कमरे के पांचों लंबे धड़ेगे पंजाबी, जो अपने बापों की जमीने औने पौने बेच कर जर्मनी पहुंचे थे जर्मन तो क्या अंग्रेजी के भी दो शब्द ठीक तरह से नहीं बोल सकते थे। जर्मन शेफ को उनसे जब बेड का साप्ताहिक किराया वसूली करना होता, कोई बात समझानी होती, उनकी नालायकियों, गलतियों और गंदगियों पर चेतावनी करनी होती तो वह उन्हें जर्मनी भाषा में खूब जली कटी सुनाता मगर जब उसकी बदजुबानी और गुस्से पर वे और अधिक आनंदित होने लगते तो वह टहलसिंह को मदद पर बुला लेता और टहलसिंह उसकी कुछ भी बात न समझ कर अपने ढाई जर्मन अक्खरों के सहारे सब कुछ समझ कर सिर हिलाता।अपने पंजाबी भाइयों की ओर बढ़ आता और उन्हें सबकुछ समझा देता। टहलसिंह भी उन पांचों पर गुस्से ही होता गरजता अैर बरसता भी मगर साथ ही उनकी घन गरज में ठंडी मीठी फुहार की लहरें भी छुपी नज़र आती रहतीं। वे टेढे मेढे पंजाबी सीधी राह पर आ जाते और जर्मन सेठ की सारी शिकायतें वक्ती तौर पर दूर हो जातीं।

कमरे के सात साथियों में एक मैं ही पढ़ा लिखा था और किसी न किसी तरह जर्मन सेठ से गुज़ारे लायक टूटी फूटी अंग्रेजी मिली जर्मन से काम चला लेता था। इसलिये टहलसिंह मुझसे थोड़ा दबता और तमीज़ से पेश आता।

मुझे जर्मनी आए एक महीना हुआ था मगर उन सब में एक मैं ही बेरोज़गार था। इसलिये रात-रात भर बैठा सोचा करता कि मुझे किस बिच्छू ने काटा था कि अच्छी भली नौकरी छोड़ कर जर्मनी भाग आया।रात को दो या तीन बजे के बाद जब मेरी आंख लगती तो सुबह दस बजे से पहले न खुलती। हां बीच में कोई चार पांच बजे के बीच कुछ शब्द मेरे कानों में ज़रूर बज उठते मगर मैं उन्हें अपने ही ख्वाबों की बड़बड़ाहट समझ कर फिर से चादर तान कर सो जाता। कभी कभी सुर में गाए जाते यह शब्द कुछ साफ भी सुनाई दे जाते, "ढाई अक्खर प्यार के ..."

टहलसिंह मुझसे अंगरेज़ी सीखने के लिये सदा अंगरेजी में बात करता था मगर हज़ार कोशिशों के बाद भी उसकी अंगरेज़ी उसके अपने ढाई शब्दों तक ही सीमित रहती, "नंदा साहब! आई टैक्सी, बिग बिग साहब, नई दिल्ली फादर टैक्सी, दिल्ली मेनी मनी, बुक होम ...."

मैं समझ जाता कि वह अपनी इस टूटी फूटी अंगरेजी से यूरोप से आए सैलानियों को नयी दिल्ली की सैरें कराता होगा। बाप भी उसका दिल्ली का टैक्सी ड्राइवर होगा। अच्छा पैसा और अच्छा घर होगा। फिर उसे न जाने क्या सूझी कि सब कुछ छोड़ कर जर्मनी भाग आया। उसका जवाब खुद मेरी अपनी सूरत में मेरे पास था, मगर फिर भी मैं उससे पूछ ही बैठता, "टहलसिंह व्हाइ यू केम टु जर्मनी?"

"नंदा साहब! नो जर्मनी...आई इंगलैंड टैक्सी, फादर दिल्ली टैक्सी.. .मेनी मनी...बुक होम।"

"तो क्या तुम इंगलैंड जाकर टैक्सी चलाना और अमीर होना चाहते हो?"

वह पहले अपनी छाती पर अंगुली रखता। फिर मेरी छाती पर अंगुली रखकर कहता, "यू नो हिन्दी मी...इंगलिश ओनली!"

मैं समझ जाता कि अंगरेजी सीखने के शौक में वह मेरे साथ केवल अंगरेजी में ही बात करना चाहता है। मैं अंगरेजी बोलता। वह अगर कुछ भी न समझ पाता तो भी सिर हिलाता। यस, यस, यूं किये जाता जैसे बहुत बड़ा अंगरेज़ी दां हो।

बेरोज़गारी ने मुझे थोड़ा चिड़चिड़ा बना दिया था और टहलसिंह को इसका पता था, मगर वह मेरी क्या मदद कर सकता था? वह तो खुद बेरोज़गार था। एक रात सुबह चार बजे तक मुझे नींद नहीं आई और साढ़े चार बजे के करीब गाए जाते कुछ शब्द साफ साफ मेरे कानों से जा टकराए — पढ़ पढ़ के सब जग मुआ पंडित भया न कोय
ढाई अक्खर प्यार के पढ़े सो पंडित होय।

मैने चादर से मुंह हटा कर देखा। यह टहलसिंह था, जो मुंह हाथ धोकर, कपड़े पहनता हुआ, मुंह ही मुंह में कुछ पवित्र श्लोकों का पाठ करता, कहीं जाने को तैयार हो रहा था। नींद तो मुझसे रूठ ही चुकी थी। मैने यूं ही पूछ लिया, "टहलसिंह! कहीं जारहे हो?"

उसे मेरा हिंदी में पूछना बुरा लगा, मगर मुझे सीधे रस्ते पर लाने के लिये वह अंगरेज़ी में बोला, "आई वर्क..."
"वेअर? कैन यू गेट मी अ जॉब?"
वतन से लाए दिन ब दिन जेबों से निकलते डालर और बेरोज़गारी ने मुझे टहलसिंह के आगे झुकने और नौकरी मांगने पर मजबूर कर दिया था। उसने 'वेअर' और 'जॉब' ही के दो शब्दों से अंदाज़ा लगा लिया कि मैं उससे कोई नौकरी दिलवाने की प्रार्थना कर रहा हूं। वह बोला, "यू बिग साहब...आई सब्ज़ी मंडी..."

बेरोजगारी मुझे ऊपर से नीचे ले आई थी। मैने उसे समझाया कि काम काम होता है। काम छोटा या बड़ा नहीं होता। इसलिये वह मुझे अपने साथ सब्जीमंडी ले गया। वहां ट्रकों से आलू के बोरे उतारने और अंदर मंडी की दुकानों पर पहुंचाने का काम करता था। उसने ट्रक ड्राइवर से अपने ढाई जर्मन अक्खरों के जरिये मेरी सिफारिश की।

ड्राइवर ने मुझे ऊपर से नीचे तक देखा। मेरे कमजोर जिस्म को देखते हुए एक बार तो मुझे ऐसा लगा कि मैं उसके काम का आदमी नहीं और वह फौरन इंकार कर देगा, मगर न जाने उसे मेरे मरियल जिस्म या बिसूरती शक्ल पर तरस आ गया, या टहलसिंह के ढाई अक्खरों ने कोई कमाल कर दिखाया कि उसने मुझे बोरे उतारने पर रख लिया।

दस ही दिन के बाद मेरे जिस्म के अंदर की सिर से पांव तक लटकी हड्डियों की जंजीर कहीं बीच से तिरखी हुई महसूस होने लगी और मुझे लगा कि काम, काम नहीं होता। छोटा या बड़ा होता है और हर काम हर किसी के बस का नहीं होता। ग्यारहवें दिन जब टहलसिंह ने सुबह चार बजे मुझे आवाज़ दी तो मैं सुनी अनसुनी करता बिस्तर में मस्त पड़ा रहा। काम सुबह पांच से नौ बजे तक होता था। उस रोज़ जब वह वापस आया तो बोला,"नंदा साहब! यू..ओ..के..?" शायद वह मुझे बीमार समझ कर चला गया था।

"टहलसिंह! यह काम मेरे बस का नहीं!"
"आई टेल...नो गुड वर्क..."
फ्री एंट्री होने की वजह से दर असल जर्मनी उन दिनों अर्ध महाद्वीप पाक व हिन्दी से आने वाले सब पढ़े और अनपढ़े हिन्दुस्तानियों और पाकिस्तानियों का ट्रांजिट स्टेशन था। आए टक आराम किया। कमा कर चार मार्क जेब में डाले और आगे किसी अंगरेजी बोलने वाले मुल्क को सिधारे। इसलिये कि हर हिन्दुस्तानी और पाकिस्तानी जो खुद अंगरेजी जानता था और समझता था, सोचता था कि अमेरिका, कनाडा या इंगलैंड के बादशाह या मंत्री हाथों में हार लिये उनकी प्रतीक्षा में खड़े हैं। यह अलग बात है कि इन देशों के कठोर कानूनों और तेज़ नज़र रखने वाले अफसरों से बच बचाकर कुछ ही लोग पार उतर पाते थे। हर कोई बिना किसी साथी को बताए अंदर ही अंदर और बाहर ही बाहर प्रयत्नशील रहता और जब एक दिन वह बिस्तर बांधता या शाम को उसका बेड खाली मिलता तो साथियों को पता चलता कि एक पंछी और उड़ गया मगर टहलसिंह को अपने ऊपर पूरा विश्वास था कि वह इंगलैंड बड़ी आसानी से सेट हो जाएगा। इसलिये वह इस बात को छुपाता नहीं था।

एकदिन शाम के समय वह गड़ोंगी के स्टाल पर खड़ा बियर पीता कुछ दोस्तों से गप्पें हांक रहा था। मैं वहां से निकला तो उसके 'सत श्री अकाल' का जवाब देने को पल भर के लिये रूक गया। वह उनसे कह रहा था, "मैं जब पैदा हुआ तो मेरे बाप ने दादा को बताया मुंडा हुआ है। टहलने के शौकीन दादा घर के बगीचे में टहल रहे थे। बोले, "धन्य धन्य वाहे गुरू। तो अपना टहलसिह आ गया। बस तब से मेरा नाम टहलसिंह पड़ गया। तुम देखना मैं टहलते टहलते एक दिन लंदन जा बिराजूंगा।"

तीन लड़के तो किसी न किसी तरह कनाडा और अमेरिका की तरफ निकल गये। मैने भी इंगलैंड की तरफ एक ट्राइ मारी मगर पहले ही हल्ले में अपने भारी भारी अंगरेजी शब्दों के भंडार के बावजूद कस्टम पर ही मार खा गया और वापस जर्म नी लौट आया। फिर न जाने क्या हुआ और कैसे हुआ कि टहलसिंह अपने ढाई अक्खरों के सहारे इंगलैंड पहुंच गया।

मैं इधर नारवे पहुंच गया कि तब केवल उधर ही दरवाज़े खुले हुए थे। लश्टम पश्टम नई व अनजानी भषा को गालियां देता, उसका एक एक अक्षर चुनता हुआ कुछ अरसा बाद एक दफ्तर में नौकर हो गया। वह उधर अपने ढाई अक्खरों के सहारे एक बड़े स्टोर का मालिक बन गया। यह मुझे तब पता चला जब वह एक दिन ओस्लो के बड़े बाज़ार कार्लयूहान जाते पर सैर करता मिल गया।

"अरे टहल?"
"ओ नंदा साहब?"
इन शब्दों के साथ दौड़ कर हम आगे बढ़े और गले मिल गए।
"कहां ठहरे?" मैने पूछा।
"ग्रैंड होटल।" उसने बताया और मैं चौक उठा कि यह ओस्लो का सबसे पुराना और मंहगा होटल था।
"मै यहीं ओस्लो में रहता हूं। होटल छोड़ो और मेरे साथ चलो," मैने दोस्ताना पेशकश की।
"नहीं बिजनेस के सिलसिले में आया हूं। मेम भी साथ है। इधर मर्सिडीज़ में बैठी है। बड़े होटल में जरा बिजनेस में रोब पड़ता है। मिलूंगा जरूर! क्या पता है तुम्हारा?"

मैने कागज पर पता लिख दिया उसने अपने लंदन का खूबसूरत सा एडरेस कार्ड पकड़ाया।
"आपको खत लिखा था, जवाब नहीं आया, तो मैं समझ गया कि आप जर्मनी से निकल गये होंगे।" वह बोला।

वह जल्दी में था। मुझे भी दफ्तर पहुंचना था, जहां कल ही तीसरी बार पंदरह साल बाद भी नारवेजियन भाषा अच्छी तरह न जानने के कारण मैं अपनी अगली तरक्की का केस हार चुका था और आज इस सिलसिले में चीफ से मेरी मीटिंग थी। मैने दिल ही दिल में नारवेजियन भाषा में एक मोटी सी गाली दी। वह मुझे सोच में डूबा देखकर बोला, "यू होम... आई एंड मेम कम..."

धुआँ गुलज़ार

बात सुलगी तो बहुत धीरे से थी, लेकिन देखते ही देखते पूरे कस्बे में "धुआं" भर गया। चौधरी की मौत सुबह चार बजे हुई थी। सात बजे तक चौधराइन ने रो–धो कर होश सम्भाले और सबसे पहले मुल्ला खैरूद्दीन को बुलाया और नौकर को सख़्त ताकीद की कि कोई जिक्र न करे। नौकर जब मुल्ला को आंगन में छोड़ कर चला गया तो चौधराइन मुल्ला को ऊपर ख़्वाबगाह में ले गई, जहां चौधरी की लाश बिस्तर से उतार कर जमीन पर बिछा दी गई थी। दो सफेद चादरों के बीच लेटा एक ज़रदी माइल सफ़ेद चेहरा, सफेद भौंवें, दाढ़ी और लम्बे सफेद बाल। चौधरी का चेहरा बड़ा नूरानी लग रहा था।

मुल्ला ने देखते ही 'एन्नल्लाहे व इना अलेहे राजेउन' पढ़ा, कुछ रसमी से जुमले कहे। अभी ठीक से बैठा भी ना था कि चौधराइन अलमारी से वसीयतनामा निकाल लाई, मुल्ला को दिखाया और पढ़ाया भी। चौधरी की आख़िरी खुवाहिश थी कि उन्हें दफ़न के बजाय चिता पर रख के जलाया जाय और उनकी राख को गांव की नदी में बहा दिया जाये, जो उनकी जमीन सींचती है।

मुल्ला पढ़ के चुप रहा। चौधरी ने दीन मज़हब के लिए बड़े काम किये थे गांव में। हिन्दु–मुसलमान को एकसा दान देते थे। गांव में कच्ची मस्जिद पक्की करवा दी थी। और तो और हिन्दुओं के शमशान की इमारत भी पक्की करवाई थी। अब कई वर्षो से बीमार पड़े थे, लेकिन इस बीमारी के दौरान भी हर रमज़ान में गरीब गुरबा की अफ़गरी (अफ़तारी) इन्तजाम मस्जिद में उन्हीं की तरफ से हुआ करता था। इलाके के मुसलमान बड़े भक्त थे उनके, बड़ा अकीदा था उन पर और अब वसीयत पढ़ के बड़ी हैरत हुई मुल्ला को कहीं झमेला ना खड़ा हो जाय। आज कल वैसे ही मुल्क की फ़िज़ा खराब हो रही थी, हिन्दु कुछ ज्यादा ही हिन्दू हो गये थे, मुसलमान कुछ ज्यादा मुसलमान!!

चौधराइन ने कहा, "मैं कोई पाठ पूजा नहीं करवाना चाहती। बस इतना चाहती हूं कि शमशान में उन्हें जलाने का इन्तजाम कर दीजिए। मैं रामचन्द्र पंडित को भी बता सकती थी, लेकिन इस लिए नहीं बुलाया कि बात कहीं बिगड़ न जाये।"

बात बताने ही से बिगड़ गई जब मुल्ला खैरूद्दीन ने मसलेहतन पंडित रामचंन्द्र को बुला कर समझाया कि —
"तुम चौधरी को अपने शमशान में जलाने की इज़ाजत ना देना वरना हो सकता है, इलाके के मुसलमान बावेला खड़ा कर दें। आख़िर चौधरी आम आदमी तो था नहीं, बहुत से लोग बहुत तरह से उन से जुड़े हुए हैं।"
पंडित रामचंद्र ने भी यकीन दिलाया कि वह किसी तरह की शर अंग्रेजी अपने इलाके में नहीं चाहते। इस से पहले बात फैले, वह भी अपनी तरफ के मख़सूस लोगों को समझा देंगे।

बात जो सुलग गई थी धीरे धीरे आग पकड़ने लगी। सवाल चौधरी और चौधराइन का नहीं हैं, सवाल अकीदों का है।

सारी कौम, सारी कम्युनिटि और मज़हब का है। चौधराइन की हिम्मत कैसे हुई कि वह अपने शौहर को दफ़न करने की बजाय जलाने पर तैयार हो गई। वह क्या इसलाम के आईन नहीं जानती?"

कुछ लोगों ने चौधराइन से मिलने की भी ज़िद की। चौधराइन ने बड़े धीरज से कहा —
"भाइयों! ऐसी उनकी आख़री ख़्वाहिश थी। मिट्टी ही तो है, अब जला दो या दफन कर दो, जलाने से उनकी रूह को तस्कीन मिले तो आपको एतराज हो सकता है?"

एक साहब कुछ ज्यादा तैश में आ गये। बोले —
"उन्हें जलाकर क्या आप को तकसीन होगी?"
"जी हां " चौधराइन का जवाब बहुत मुख्तसर था।
"उनकी आख़री ख़्वाहिश पूरी करने से ही मुझे तसकीन होगी।"

दिन चढ़ते-चढ़ते चौधराइन की बेचैनी बढ़ने लगी। जिस बात को वह सुलह सफाई से निपटना चाहती थी वह तूल पकड़ने लगी। चौधरी साहब की इस ख़्वाहिश के पीछे कोई पेचीदा प्लाट, कहानी या राज़ की बात नहीं थी। ना ही कोई ऐसा फ़लसफ़ा था जो किसी दीन मज़हब या अकीदे से जुड़ता हो। एक सीधी-सादी इन्सानी ख़्वाहिश थी कि मरने के बाद मेरा कोई नाम व निशान ना रहे।

"जब हूं तो हूं, जब नहीं हूं तो कहीं नहीं हूं।"

बरसों पहले यह बात बीवी से हुई थी, पर जीते जी कहां कोई ऐसी तफ़सील में झांक कर देखता है। और यह बात उस ख़्वाहिश को पूरा करना चौधराइन की मुहब्बत और भरोसे का सुबूत था। यह क्या कि आदमी आंख से ओझल हुआ और आप तमाम ओहदो पैमान भूल गये।

चौधराइन ने एक बार बीरू को भेजकर रामचंद्र पंडित को बुलाने की कोशिश भी की थी लेकिन पंडित मिला ही नहीं। उसके चौकीदार ने कहा —
"देखो भई, हम जलाने से पहले मंत्र पढ़के चौधरी को तिलक जरूर लगायेंगे।"
"अरे भई जो मर चुका उसका धर्म अब कैसे बदलेगा?"
"तुम ज्यादा बहस तो करो नहीं। यह हो नहीं सकता कि गीता के श्लोक पढ़े बगैर हम किसी को मुख अग्नी दे। ऐसा ना करें तो आत्मा हम सब को सताएगी, तुम्हें भी, हमें भी। चौधरी साहब के हम पर बहुत एहसान हैं। हम उनकी आत्मा के साथ ऐसा नहीं कर सकते।"
बीरू लौट गया।
बीरू जब पंडित के घर से निकल रहा था तो पन्ना ने देख लिया। पन्ना ने जाकर मस्जिद में खबर कर दी।

आग तो घुट-घुट कर ठण्डी होने लगी थी, फिर से भड़क उठी। चार-पांच मुअतबिर मुसलमानों ने तो अपना कतई फैसला भी सुना दिया। उन पर चौधरी के बहुत एहसान थे वह उनकी रूह को भटकने नहीं देंगे। मस्जिद के पिछवाड़े वाले कब्रिस्तान में, कब्र खोदने का हुक्म भी दे दिया।

शाम होते होते कुछ लोग फिर हवेली पर आ धमके। उन्होंने फैसला कर लिया था कि चौधराइन को डरा धमका कर, चौधरी का वसीयतनामा उससे हासिल कर लिया जाय और जला दिया जाय फिर वसीयतनामा ही नहीं रहेगा तो बुढ़िया क्या कर लेगी।

चौधराइन ने शायद यह बात सूंध ली थी। वसीयतनामा तो उसने कहीं छुपा दिया था और जब लोगों ने डराने धमकाने की कोशिश की तो उसने कह दिया —

"मुल्ला खैरूद्दीन से पूछ लो, उसने वसीयत देखी है और पूरी पढ़ी है।"
"और अगर वह इन्कार कर दे तो?"
"कुरआन शरीफ़ पर हाथ रख के इन्कार कर दे तो दिखा दूंगी, वरना..... "
"वरना क्या?"
"वरना कचहरी में देखना।"

बात कचहरी तक जा सकती है, यह भी वाज़े हो गया। हो सकता है चौधराइन शहर से अपने वकील को और पुलिस को बुला ले। पुलिस को बुला कर उनकी हाज़री में अपने इरादे पर अमल कर ले। और क्या पता वह अब तक उन्हें बुला भी चुकीं हों। वरना शौहर की लाश बर्फ की सिलों पर रखकर कोई कैसे इतनी खुद एतमादी से बात कर सकता है।

रात के वक्त ख़बरे अफ़वाहों की रफ्तार से उड़ती है। किसी ने कहा —
"एक घोडा सवार अभी–अभी शहर की तरफ़ जाते हुये देखा गया है। घुड़सवार ने सर और मुंह साफे से ढांप रखा था, और वह चौधरी की हवेली से ही आ रहा था।"
एक ने तो उसे चौधरी के अस्तबल से निकलते हुये भी देखा था।
ख़ादू का कहना था कि उसने हवेली के पिछले अहाते में सिर्फ लकड़ियां काटने की आवाज़ ही नहीं सुनी, बल्कि पेड़ गिरते हुये भी देखा है।
चौधराइन यकीनन पिछले अहाते में, चिता लगवाने का इन्तज़ाम कर रही हैं। कल्लू का खून खौल उठा।
"बुजदिलों – आज रात एक मुसलमान को चिता पर जलाया जायेगा और तुम सब यहां बैठे आग की लपटें देखोगे।"
कल्लू अपने अड्डे से बाहर निकला। खून खराबा उसका पेशा है तो क्या हुआ? ईमान भी तो कोई चीज है।

"ईमान से अज़ीज तो मां भी नहीं होती यारों।"

चार पांच साथियों को लेकर कल्लू पिछली दीवार से हवेली पर चढ़ गया। बुढ़िया अकेली बैठी थी, लाश के पास। चौंकने से पहले ही कल्लू की कुल्हाड़ी सर से गुज़र गई।
चौधरी की लाश को उठवाया और मस्जिद के पिछवाड़े ले गये, जहां उसकी कब्र तैयार थी। जाते जाते रमजे ने पूछा —
"सुबह चौधराइन की लाश मिलेगी तो क्या होगा?"
"बुढ़िया मर गई क्या?"
"सर तो फट गया था, सुबह तक क्या बचेगी?"
कल्लू रूका और देखा चौधराइन की ख़्वाबगाह की तरफ। पन्ना कल्लू के "जिगरे" की बात समझ गया।
"तू चल उस्ताद, तेरा जिगरा क्या सोच रहा है मैं जानता हूं। सब इन्तजाम हो जायेगा।"

कल्लू निकल गया, कब्रिस्तान की तरफ।
रात जब चौधरी की ख़्वाबगाह से आसमान छुती लपटें निकल रही थी तो सारा कस्बा धुएं से भरा हुआ था।
जिन्दा जला दिये गये थे,
और मुर्दे दफ़न हो चुके थे।

जंगल सच्चिदानंद राउतराय

इस जंगल का कोई खास नाम नहीं। पूरा इलाका ही करमल कहलाता है। फिर भी स्थानीय लोग पास वाले हिस्से को बेरेणा–लता कहते हैं। नटवर फॉरिस्ट–गॉर्ड बनकर इधर आया है। दो वर्ष में ही यहाँ अच्छी तरह आसन जमाकर बैठ गया है। जंगल के ठेकेदार के साथ उसकी सुलह है। कुचला का ठेका लिया है, लेकिन बड़े–बड़े साल, पी–साल काटकर ट्रक में भर ले जाते हैं। सुना तो यहाँ तक जाता है कि नटिया मोटी रकम लेकर उन्हें छोड़ देता है या फिर जाली चालान दे देता है, यह बात रेंजर बाबू से कई बार कही जा चुकी है। कितनी ही रिपोर्ट ऊपर भेजी गई हैं, लेकिन कुछ नहीं होता। लोगों का कहना है कि नटिया की जेब में हैं ऊपर वाले। हालांकि जंगल इसी बीच साफ होता जा रहा है। कोई उसका बाल बाँका नहीं कर सकता। नटिया रूपास गाँव में चाय की दुकान के आगे बेंच पर बैठा चाय पीते–पीते मूँछों पर ताव देता है – "देखेंगे, कौन साला मेरा क्या बिगाड़ लेगा! इस लट्ठ से खोपड़ा खोल दूँगा।"

उस गाँव का डाकिया भ्रमर पर अधिक नाराज है। कभी–कभी सोचता है– पीट–पीटकर मार डालूँ और लाश लेकर जंगल में फेंक आऊँ। किसी को पता भी नहीं चलेगा। थाने में जमादार बाबू के साथ बैठ–उठ है उसकी। एक–दो बार बुलाकर थाना–बाबू ने लकड़ी की चोरी के बारे में पूछताछ की है। नटिया की कैफियत से वे सन्तुष्ट हैं – ।

भ्रमर ने नटिया के दूर के रिश्ते की मौसी की जायी बहन से ब्याह किया है। सुलोचना को घर लाने की बहुत इच्छा थी। इसके लिए उसने कुछ भी उठा नहीं रखा। शरधा जीजी, केलू बाबा आदि को बीच में रख दामा पुहाण बाबा को बहुत समझाया। लेकिन उसकी वह लफंगाई आदत, उसके बेढ़ंगे स्वभाव को देखकर माँ–बाप या सुलोचना कोई राजी नहीं हुए। फिर भी वह कभी–कभी ठेका या बदले में काम कर लेता है। कोई फॉरिस्ट गार्ड छुट्टी पर जाये तो महीने दो महीने उसकी जगह काम कर लेता है, फिर वही बेकार का बेकार!

नटिया ने उस दिन सुलोचना को पोखर के पास धमकाया था, "देखता हूँ, तुझे कौन ब्याहता है? मैं ठिकाने बिठा दूँगा!" आज तक सुलोचना भूली नहीं है वह बात! नटिया की भंगिमा और आवाज़ कभी–कभी याद आ जाती है तो वह घबरा–सी जाती है।

नटिया बनाम नट, बनाम नटवर की मोटी–मोटी बाघ–जैसी मूँछें, उन पर चिपटी नाक और हड़ीले गाल देखकर कोई भी डर जायेगा। बचापन से ही सुलोचना को उससे कोफ्त रही है। फिर उसकी टेढ़ी–मेढ़ी आदत, कड़ा मिज़ाज और उस पर उसका आगे बढ़कर मामलातकार बनने की आदत – शुरू से ही उसके प्रति मन में घृणा भर चुकी है। अब तो लम्बे–लम्बे बालों और मूँछों की कली के कारण तो एकदम अजीब लगता है।

उस दिन गाँव में यात्रा (मेला) हो रही थी। जखरा ऑपेरा पार्टी 'कंसासुर–वध' स्वांग (एक तरह का नाटकीय प्रदर्शन) रच रही थी। भ्रमर और सुलोचना गाँव में स्वप्नेश्वर महादेव के मन्दिर के प्रांगण में यह स्वांग देख रहे थे। नट भी एक पिक्का सुलगाये हुए यात्रा देख रहा था। बीच–बीच में जब सखी का कोई गाव–गीत आता तो वह अश्लील टिप्पणियाँ करने से नहीं चूकता। यात्रा खत्म होने के बाद धक्कम–धक्की करते सब लोग भीड़ में लौट रहे थे, सुलोचना को लगा, बायीं ओर पीछे से किसी ने हाथ बढ़ाया है। कसकर उसे भींचकर भीड़ में कहीं गायब भी हो गया। चीखती–सी उसने भ्रमर को आवाज दी। भ्रमर कुछ कदम पीछे छूट गया था। उसने दौड़कर आगे आकर पूछा, "क्या बात है?"

आगे नटिया जा रहा था। उसे दिखाकर इशारा किया। भ्रमर ने जाकर पीछे से नटिया को धर पकड़ा। नटिया बहाना बनाते हुए बोला, "क्या.... क्या बात है? किसके बदले किसे पकड़ रहे हो?"

दोनों में तू–तू मैं–मैं हो रही थी – कुछ लोग इकट्ठा हो गए। आखिर बीच–बचाव हुआ। नटिया और भ्रमर दोनों ने एक दूसरे को कहा – "ठीक है, देख लेंगे!"

तब से सारे गाँव में यह बात फैल गई कि नटिया और भ्रमर में ठन गई है। जल्दी ही कुछ घटेगा!

दो दिन बाद। हाट वाले दिन मदन साहू की दुकान के आगे नटिया ने सबको सुनाकर कहा, "मैं उसका खून पी जाऊँगा।" उधर भ्रमर भी कुछ दूर काँसा-पीतल की दुकान के आगे सना बेहरा को सुनाकर कह उठा, "मैंने उसे खत्म न कर दिया तो मेरा नाम भ्रमर साहू नहीं!"

क्रमशः दिन बीतते गये। लोग-बाग धीरे-धीरे नट-भँवरे के झगड़े-झंझट की बात भूल गये। छह-सात महीने निकल गये इसी तरह। एक दिन भोर तड़के ही सुलोचना जंगल की ओर से दौड़ी-दौड़ी हांफती-सी आकर घर में घूसते ही अचेत! भँवरा और कुछ युवक उधर पास खड़े बतिया रहे थे। दौड़ आये, किसी तरह सुलोचना को होश में लाये। पूछा, "बात क्या हुई?" सुलोचना ने बताया, "साँझ तक बछिया जब नहीं आयी तो ढूँढ़ने मैं जंगल की ओर गयी थी। कोई झुरमुटे से निकल अचानक आ झपटा। खींचा-तानी चली। आम के पेड़-तले खींचता ले गया। जान बचाकर किसी तरह भागी गिरती-पड़ती आ गई। बाबरानियाँ काँटों का बोझ लिये जंगल से लौट रही थीं। उन्होंने भी हल्ला मचाया। मगर वह तो अँधेरे में भाग छूटा।'

"कौन था वह?" सबने एक स्वर में पूछा।

"नटभाई!" सुलोचना ने धीरे से कहा।

बस भँवरा के सिर भूत सवार। फरसा लेकर नटिया के घर की ओर तेजी से चल पड़ा। साथ ये चार-पाँच छोकरे। हाथ में लाठी लिये ये भी लैस। नटिया पिछवाड़े बाड़ी में से होते हुए जंगल में भाग गया। आठ-दस दिन तक गाँव में दिखायी ही नहीं पड़ा। इसके बाद जब गाँव लौटा तो भँवरा उसकी ताक में रहने लगा।

गाँव में काना-फूसी हुई - बस अब दो में से कोई जायेगा। गाँव के नाले के पुल पर बैठा पैर हिलाते हुए नट कह रहा था - सबको सुना सुनाकर, "अब की देख लूँगा उसे!" भँवरा भी महादेव मन्दिर के आगे सबको सुनाकर कह आया, "उसे जब तक जिन्दा न जला दिया, चैन से नहीं बैठूँगा।"

गाँव में कुछ युवकों में चर्चा चली - देखना है, अब पहले कौन किसे खत्म करता है। भगवान ही जानें।

बरसात शुरू हो गई है। बिजली और बादलों की गड़गड़ाहाट से सारा जंगल काँप उठा। मसाशुणी नदी और गाँव में घूटनों तक पानी। उधर जटिया पहाड़ के सिरे से धीरे आकर चारों ओर भर रही है। बाँस का बेड़ा बनाकर लोग आवाजाही कर रहे हैं। गाँव के बीच में ऊँचे टीले पर दाल, चावल, सब्जी लाकर रसोई पका रहे हैं। लोगों के घरों में पानी भर गया है। हर वर्ष कुछ दिन गाँव वालों को यही सब भोगना पड़ता है। सबके घर एक-एक डोंगी बाहर वाली छान से बँधी होती है। गाँव में बाढ़ का पानी घुसने पर लगातार छः-सात दिन इधर-उधर डोंगी से ही जा-आ पाते हैं - यहाँ तक कि निकट के अड़ोस-पड़ोस में भी। बाढ़ के साथ आती है महामारी, खाँसी-सर्दी, बुखार, हैजा - । टीले पर छोटा-सा स्वास्थ्य-केन्द्र है। कोई-कोई डोंगी में जाकर वहाँ से दवादारू से आता है। कोई मर जाये तो " जै गंगा मैया! तेरी शरण...." कह बहा देते हैं। बरसों के बाद परवल, गोभी, टमाटर, बैंगन आदि खूब होते हैं। परवल तो पच्चीस पैसे किलो हो जाती है। गाँव वाले सब्जी लाकर कटक में डेढ़ रूपये किलो में बेचते हैं। फागुन-चैत में फूलों की महक, आम और बकुल की सुगन्ध से समुचा जंगल बौरा जाता है

सारा जंगल ऐसी बरसा-हवा में दुलक रहा है। रात होते ही अँधेरे में पेड़-पौधे कुछ नहीं दिखते। सब मिलकर अँधेरे का अंश बन जाते हैं। जीवन का जैसे निशान भी नहीं रह जाता। कहीं कोई संकेत नहीं रह जाता।

जंगल में भी बाढ़ का पानी भर गया है। साँप, गीदड़, सियार, हिरण वगैरह पानी की धार में आकर गाँव के किनारे लगते

या उस अकूत जल में बह जाते।

बरसा कुछ थम गई थी। नट एक डोंगी में बैठा जंगल की ओर चल पड़ा। साथ लिये है छाता और लालटेन। आज उसकी चेक–गेट पर ड्यूटी है। गेट के पास की गुमटी में वह खिड़की – दरवाजा सब बन्द कर बैठ गया है। आँधी–बरसा का मौका देख कंट्राक्टर का ट्रक भी जंगल में घुस आया। बड़े–बड़े साल के पेड़ काटेंगे, लादकर भरा ट्रक लेकर लौटेंगे। नट पेड़ की कटाई की आवाज सुन रहा है। लेकिन वह कर भी क्या सकता है इस समय? क्रमशः ट्रक आकर चेक–गेट के पास रूका। ऊपर से बाँस की रूकावट उठाने के लिए हॉर्न बजाया। नट ने अनसुना कर दिया। अचानक दो–तीन कुली उतर आये ट्रक से। नट को घसीट लाये। चाबी माँगी। मगर नट ने चाबी नहीं दी। कहा, "रात में गेट खोलने की इजाजत नहीं है। रेंजर बाबू ने मना कर रखा है, सवेरे आकर चक्कों की लीक देखेंगे – मेरी नौकरी गोल हो जायेगी। बिना 'पास' के मैं गेट नहीं खोल सकता।"

नट की कसकर पिटाई कर दी गयी। बेहोश कर गेट तोड़ ट्रक लेकर भाग निकले। तब रात के दो बज रहे थे। आस–पास कोई लोग–बाग नहीं। जंगल साँय–साँय कर रहा था।

सुबह डोंगी में बैठ भँवरा निकला, गाँव में डाक बाँटने के लिए। फॉरिस्ट रेंजर की डाक अधिक होती है। जाकर चेक–गेट की गुमटी की खिड़की में झाँका। देखा, नट बेहोश पड़ा है! बस, गों–गों कर रहा है! दोनों जबड़े खून में सने हैं। मुँह लाल हो गया है। मक्खियाँ भिनभिना रही हैं।

किवाड़ पर धक्का मारा। नट न हिला न डुला। कुछ उठाया, कुछ घसीटा, फिर डोंगी पर लिटाया। ले चला गाँव के स्वास्थ्य–केन्द्र की ओर – गाँव के बीच वाले टीले के पास। और फिर डॉक्टर बाबू के जिम्मे सौंपकर चल पड़ा चिट्ठी बाँटने के लिए।

कई घण्टों बाद नट को होश आया। डॉक्टर बाबू से सारी बातें सुनकर उसे कानों पर विश्वास नहीं हुआ। भँवरा का ऋण कैसे उतारूँ? पिछली बातें – झगड़ा–फसाद सब भूल गया।

कुछ दिन बाद की बात है। मोहनी साहू ने भँवर से कहा, "कहना, नटिया आया था। वह तो बस तेरे ही गुण गा रहा था। बोला – 'भँवरा भाई ने मेरी जान बचा ली। जीवन में उसका ऋण कभी नहीं चुका सकूँगा!'.....

भँवरा का मन खूब नरम हो गया। फिर भी कहीं भेंट हो जाने पर नटिया से बात करने में उसे संकोच होता।

नट भी दिल खोलकर उससे बातचीत नहीं कर पाता। दोनों एक–दूसरे की ओर देखकर अपने–अपने रास्ते चले जाते।

महीने दो महीने बाद नटिया ने सुना – साइकल वाला समेसर कह रहा है, "भँवरा ने तेरे लिए क्या कुछ नहीं किया। भगवान ने इतनी बड़ी विपद से बचा लिया! जाको रखे साइयाँ, बाल न बाँका होय!"

नट सब सुनता रहता। मगर भँवरा को बुलाकर कुछ कह नहीं पाता। भँवरा भी सब सुनता रहता, मगर नट को कुछ नहीं कह पाता। बस, आमने–सामने पड़ते तो दोनों के चेहरे पर ज़रा–सी मुस्कान खिल उठती।

ऐसे ही कुछ महीने बीत गये। उस दिन नटिया ने बस्ती में सुना – सुलोचना पेट से है। दो महीने बाद वह माँ बन जाएगी!

रेंजर बाबू ने उस दिन हिरन मारा था। नटिया को बुलाकर उसे दो किलो मांस दिया। पता नहीं, उसके सिर में क्या सनक चढ़ी, जाकर भँवरा के दरवाजे हाजिर! सुलोचना और भँवरा बरामदे में बैठे बतिया रहे थे। नटिया अनायास कह उठा – "भँवरा भैया! सुलू बहन! ये मिरग–मांस तुम रखो। तरकारी बना लेना। मुझे रेंजर बाबू ने दिया है।"

भँवरा और सुलोचना दोनों के होठों पर हल्की-सी मुस्कान बिखर गयी – "सारा ही क्यों दे रहे हो?"

नटिया ने ठहाका लगाया, " मेरे क्या काम का? मैं तो मुरारी बाबा के होटल का ग्राहक हूँ। मेरे लिए भला कौन पकायेगा?"

भँवरा ने कहा, "नाटिया रे! तुम ऐसा करो.... आज रात हमारे घर खाना खा लेना। न्योता रहा।"

सुलोचना तो लाज में गड़ गई। एक बार नाटिया के चेहरे की ओर देखकर मुँह नीचा कर लिया।

नाटिया ने कहा, "ठीक है। बहिन के घर से न्योता मिला है, कोई कैसे मना करेगा? मगर कहाँ, बहिन तो कुछ बोलती नहीं ..... "

सुलोचना तो लाज में सिमिट गयी। फिर थोड़ी हँसकर कह उठी – "हाँ-हाँ,... तू आज हमारे घर खाना खायेगा नट भैया!"

प्रतियोगी

बिपिनबिहारी मिश्र

माँ-बाप ने बड़े शौक से विघ्नराज नाम रखा था। उन्हें मालूम था कि बाबू विघ्नराज तालचर ट्रेन की तरह रूक-रूक कर एक-एक क्लास पार करेंगे। मैट्रिक पास करते-करते वह बीस वर्ष का हो गया। दूब घास की तरह चेहरे पर मूँछ-दाढ़ी उग आई। मन तितली की तरह उड़ने लगा। कालेज में तीन वर्ष पार करते न करते पूरा फेमस। सभी जान गए बाबू विघ्नराज को। परीक्षा हॉल में कलम के साथ-साथ चाकू भी चलाया, फिर भी लाभ नहीं हुआ .....

एक दिन उसके जिगरी दोस्त अमरेश ने आकर समझाया— 'भाई, इस पढ़ाई से कोई लाभ नहीं होनेवाला है। मान लो, कांथ-कूथ कर किसी तरह हमलोगों ने बी.ए. पास कर लिया, तो भी ज्यादा से ज्यादा सब इंस्पेक्टर या हवालदार ही तो होंगे। रोज मंत्री को सौ सलाम ठोंकना होगा। बात-बात पर डाँट-फटकार और कदम-कदम पर ट्रांसफर की धमकी। इस गुलामी से तो अच्छा है चलो राजनीति करेंगे। वह किशोर है न... अरे वही, हमारा नवला, तीन बार बी.ए. में फेल हुआ। आज एम.एल.ए. है। आगे-पीछे गाड़ी चक्कर काटती फिरती है। लक्ष्मी रात-दिन घर-आंगन में घुंघरू खनकाती रहती है। बड़े-बड़े ऑफिसर चारों पहर खुशामद करते रहते हैं।' ....

'लेकिन भाई अमरू, पॉलिटिक्स करना क्या इतना आसान है। आज जो लोग चारों खुर छूकर जुहार करेंगे वे ही लोग पान से चूना खिसकते मात्र जूते की माला पहनाने पर उतारू हो जाएंगे। लोगों ने उन्हें जूता का हार पहनाकर पूरा गाँव घुमाया था। मैंने अपनी आँखों से देखा था कि किस तरह सरपंच की बोलती बंद हो गई थी। ... उसी दिन मैंने मन ही मन कसम खा ली कि कुछ भी करूंगा किन्तु पॉलिटिक्स नहीं करूँगा'

नहीं रे भाई नहीं, अगर ठीक से राजनीति करने का हुनर सीख लिया तो जूते का हार क्यों पहनेगा? लोग फूलों की माला लिए बाट जोहेंगे। बस चार-पाँच वर्ष पावर में रह जाने पर सिनेमा हॉल से लेकर पेट्रोल पम्प तक बनवा लेगा। उसके बाद सात पुस्त तक आराम से खीर-पूड़ी उड़ाता रहेगा। तू तैयार हो जा, बाकी इंतजाम मैं करूंगा। मेरी भाभी के मामू के लड़के के छोटे भाई के मौसिया ससुर का लड़का अरूण भाई पक्का पॉलिटिसिशयन है।

उससे एकाध साल की ट्रेनिंग लेने पर मंत्री, एम . एल . ए . खुद हमारे पास दौड़े आएंगे। हमारे हाथ में वोट है और जब हम लोग वोट जोगाड़ करेंगे तभी तो वे लोग एम . एल . ए . – मंत्री होंगे'

'नहीं अमरू, मंत्री की बात मत कर। एक बार गया था मंत्री से भेंट करने। दो घंटा इंतजार करना पड़ा और उसके बाद संतरी ने आकर गाय–गोरू की तरह खदेड़ दिया। ....

'ओह, तू तो हर जगह गोबर ही माखता है। यदि किसी सही आदमी को लेकर जाता तो वही संतरी तुझे सलाम बजाता। अरे भाई, मंत्री तो गुलाब के गाछ हैं। तू अगर फूल तोड़ने के बजाय कांटों में हाथ लगाएगा तो इसमें गुलाब गांछ का क्या दोष है?'

अमरेश के तर्क के आगे विघ्नराज का कुछ नहीं चला। वह राजी हो गया। दोनों अरूण भाई के दरबार में पहुँचे। पैकेट से थोड़ा–सा पान पराग निकाल कर मुँह में डालते हुए अरूण भाई ने कहा — 'वह सामने बिजली का खम्भा दिखलाई पड़ रहा है? जानते हो एक चींटी को उस पर चढ़ने में कितना समय लगेगा? वह सीधे तो ऊपर नहीं पहुँच सकती। कई बार गिरेगी, फिर उठेगी तब कहीं ऊपर पहुँच पाएगी। पॉलिटिक्स में भी उसी तरह उठोगे, गिरोगे और फिर चढ़ने की कोशिश करोगे, तब कहीं जाकर ऊपर पहुँच पाओगे। इसमें काफी वक्त लगता है। यहा एक रात में दाढ़ी लम्बी नहीं हो जाती। समय लगता है। राजनीति के सभी दांव–पेंच सीखने पड़ते हैं। दक्षता प्राप्त करने के पहले हजार बार धरना, स्ट्राइक, घेराव, लाठी चार्ज के दौर से गुजरना पड़ता है। जेल जाना पड़ता है .... क्या तुम लोग इसके लिए तैयार हो?'

विघ्नराज सोच में पड़ गया। सब तो बर्दाश्त कर लेंगे, किन्तु पुलिस के लम्बे डंडे का जबर्दस्त प्रहार .... ना रे बाबा ना, मुझे नहीं करनी है राजनीति। अमरेश ने विघ्नराज के चेहरे पर उभरती हुई झिझक की रेखाओं को परखा। झट से उसका हाथ पकड़कर पीछे की ओर खींच लिया और आगे बढ़कर बोला — 'भाई, आप आग में कूदने के लिए कहेंगे तो हम कूद जाएंगे। बस, हमें आपका आशिर्वाद चाहिए।'

अरूण बाबू के दल में शामिल होते ही दोनों को रास्ता रोकने का काम मिल गया। सामन्त टोला कॉलेज को मिलनेवाला सरकारी अनुदान, बिजली की अबाध आपूर्ति आदि मामलों को लेकर कॉलेज के लड़कों ने 'रास्ता रोको अभियान' की योजना बनाई। अरूण बाबू ने तीन सौ रूपये पकड़ाते हुए उनसे कहा — देखो, रास्ता रोको अभियान शुरू करने पर पुलिस, मजिस्ट्रेट आदि आकर बहुत कुछ कहेंगे, बहुत तरह से समझाएंगे, धमकाएंगे किन्तु कुछ नहीं सुनना। जब तक मैं न कहूँ रास्ता रोके रखना। सुबह छह बजे से संध्या छह बजे तक बिल्कुल चक्का जाम। एक भी गाड़ी आगे नहीं जानी चाहिए। गाड़ी बंद होने पर ही सरकार की नींद टूटेगी। एक डेगची में चूड़ा और गुड़ रेडी रखना। भूख लगने पर पहले खुद खाना और मांगने पर दूसरे लड़कों को भी खिलाना किन्तु एक पल के लिए रास्ता भी छोड़कर कहीं मत जाना।'

योजना के अनुसार लगभग पचास लड़के नेशनल हाईवे को रोककर बैठ गए। सबसे सामने विघ्नराज और अमरेश थे। उन लोगों ने मन ही मन कसम खाई थी कि सिर भले ही उतर जाए किन्तु पीछे नहीं हटेंगे। देखते ही देखते सैंकड़ो गाड़ियाँ एक के बाद एक आकर खड़ी हो गई। पुलिस आई। मजिस्ट्रेट आए। उन लोगों ने बहुत समझाया किन्तु लड़कों के कानों पर जूँ नहीं रेंगी। सब उसी तरह डँटे रहे।

ड्राइव्हरों के नेता आगे आकर बोले — 'सर आप हम लोगों पर छोड़ दीजिए, हम लोग इन्हें समझ लेंगे। ताजिन्दगी याद रखेंगे इस रास्ता रोको अभियान को।'

'लेकिन कुछ ऐसा–वैसा नहीं होना चाहिए, धीरज से काम लेना।' मजिस्ट्रेट साहब ने समझाया।

तीन–चार घंटे बाद अरूण बाबू आए। उन्होंने लड़कों को बताया कि सरकार ने हमारी सारी मांगों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने का वचन दिया है। लड़कों ने अरूण बाबू का इशारा पाते ही रास्ता रोको अभियान समाप्त कर दिया। बाँध के टूटते ही जैसे पानी का रेला हरहरा कर आगे की ओर भागता है उसी तरह उस राजपथ पर गाड़ियों की लम्बी कतार आगे बढ़ गई।

'अरे वाह, तुम लोग दिन भर यहाँ धूप–बतास में कूद–फांद करते रहे और तुम्हारे अरूण भाई पार्टी वाले से पाँच हजार रूपये ऐंठ गए' — विरोधी पार्टी के एक छोट भैया ने आकर जब उन लोगों से कहा तो उन लोगों ने अपना माथा पीट लिया।

विरोधी नेता की बातें सुनकर विघ्नराज ने अमरेश से कहा — 'बात सच लगती है। यदि ऐसा नहीं होता तो हमें छह बजे सुबह से शाम छह बजे तक रास्ता रोकने के लिए कहा गया था और खुद तुम्हारे अरूण भाई ने दस बजे दिन में ही आंदोलन क्यों तोड़ दिया?'

जब दोनों न जाकर अरूण बाबू से इसके बारे में पूछा तो उनके आदमी ने उन्हें वहाँ से धक्का मार कर बाहर कर दिया।

'रास्ता रोको अभियान' की खबर गाँव तक पहुँच गई और जब विघ्नराज अपने गाँव पहुँचा तो बाप ने खूब पिटाई की। विघ्नराज रात को ही गाँव छोड़कर अमरेश के पास शहर लौट गया।

विघ्नराज ने अमरेश से कहा — 'भाई, कोई और रास्ता निकालो। यह पॉलिटिक्स–वॉलिटिक्स मुझसे नहीं होगी। ऐसा कोई धन्धा बताओ जिसमें हर्रे लगे न फिटकरी और रंग चोखा आये। बस साल–दो–साल में किसी तरह हम लोग लखपति बन जाएँ।

अमरेश कुछ देर तक सोचता रहा। हठात् उसके दिमाग में कुछ कौंध गया। वह मुस्कुराता हुआ बोला — 'अरे विघ्न, तू ने कभी आइने में अपना चेहरा देखा है? तुझ जैसा सुन्दर चेहरे वाले कितने लोग हैं? खबर मिलते ही लड़की वाले प्रस्ताव लेकर दौड़ेंगे तेरे पास।'

'मुझे अभी शादी नहीं करनी है।' विघ्नराज ने कहा।

'शादी करने के लिए तुझे कौन कहता है?'

'तो?' ...

'हम लोग विवाह करने का व्यवसाय करेंगे। विवाह होते ही उड़न छू। फिर कौन खोज पाएगा।'

'अगर पकड़े गए?'

'कलकत्ता, बम्बई जैसे बड़े महानगरों में कौन किसे पहचानता है? हम लोग अपना–अपना नाम बदल लेंगे।'

दोनों इस नए धंधे के लिए एकमत हो गए। बाहर जाने के लिए खर्च का जोगाड़ अमरेश ने किया। अपने बाप को ने जाने उसने क्या पाठ पढ़ाया कि उन्होंने जमीन का एक टुकड़ा बेचकर पाँच हजार रूपये का जोगाड़ कर दिया।

दोनों मित्र कलकत्ता जा पहुँचे। वहाँ श्याम बाजार में एक किराये का मकान लिया। छह महीने का एडवांस दे दिया। नाम बदलकर रमेश और महेश रख लिया। महेश ने रमेश के ब्याह के लिए एक व्यापारी की बेटी से बातचीत

चलाई। व्यापारी अपनी बेटी के विवाह के लिए बहुत चिन्तित था क्योंकि उसकी लाड़ली बेटी दो बार अलग-अलग लड़कों के साथ घर से भागकर बदनामी के बाजार में खूब नाम कमा चुकी थी। रमेश के लिए विवाह प्रस्ताव तो दे दिया गया किन्तु पहला सवाल उठा कि लड़का का बाप कौन बनेगा और बाराती कहाँ से आएंगे?'

'अरे भाई, सब भाड़े पर मिल जाते हैं। दैनिक बीस रूपये और पेटभर भोजन पर ढेर सारे लोग मिल जाएंगे। उनमें से किसी एक को बाप और बाकी लोगों को बाराती बना देंगे।'

भाड़े के बाप और बारात को लेकर विवाह कार्य सम्पन्न हुआ। दहेज में बहुत से सामानों के साथ दस हजार रूपये नकद मिले। उसी दिन रात को घड़ी, अंगूठी, हार और दस हजार नकद लेकर दोनों मित्र चंपत हो गए। कलकत्ता से बनारस, बनारस से इलाहाबाद, दिल्ली, बड़ौदा, बम्बई होते हुए जब दो बर्ष बाद वे लोग पुनः कलकत्ता वापस आए तो उनकी वेशभूषा और चेहरे-मोहरे में काफी बदलाव आ गया था। दोनों लखपति हो गए थे। बिलकुल साहबी ठाठ-बाट हो गया था। दोनों सूट-बूट-टाई पहन कर क्लब, होटल, स्वीमिंगपुल का चक्कर लगाते और कोई नया शिकार तलाशते रहते।

हठात् एक दिन होटल में उनकी मुलाकात एक अनिंद्य सुन्दरी से हो गई। उसके बड़े भाई कौल साहब ने अपनी बहन से उन लोगों का परिचय कराया। दोनों भाई-बहन कलकत्ता, दार्जिलिंग, सिक्किम आदि घूमने के लिए आए थे। माँ-बाप नहीं थे। करोड़ों के व्यवसाय के मालिक थे कौल साहब। अभी तक कौल साहब का विवाह नहीं हुआ था। उम्र अधिक नहीं थी। देखने में काफी सौम्य-सुन्दर। आकर्षक व्यक्तित्व। शादी के लिए ढेर सारे प्रस्ताव आ रहे थे किन्तु उन्होंने निश्चय कर लिया था कि जब तक उनकी बहन सुनीता की शादी नहीं होगी वह ब्याह नहीं करेंगे। कौल साहब चाहते थे कि कोई सुन्दर और सच्चा लड़का मिल जाए तो सुनीता की शादी कर दें। सुनीता के नाम से जितनी सम्पत्ति है, वही उनके भावी जीवन को सुखमय बनाने के लिए काफी होगी।

कौल साहब की बातें सुनकर विघ्नराज ने अमरेश की ओर देखा। अमरेश ने विघ्नराज को आँखें मारी। दूसरे दिन दोनों भाई-बहन को डिनर के लिए होटल में आमंत्रित किया गया। बातचीत के दौरान अमरेश ने विघ्नराज की सम्पत्ति के बारे में बताते हुए कहा — 'जानते हैं कौल साहब, हमारा कारोबार वैसे कोई बड़ा नहीं है। पाराद्वीप में पंद्रह ट्रालर, भुवनेश्वर में तीस ट्रक और चिंगुड़ी मछली पालन के लिए चिलिका में मात्र दो सौ एकड़ जमीन है। दो छोटी-छोटी इण्डस्ट्री थी। देखभाल करने का समय नहीं मिलता था इसलिए पिछले वर्ष बेच दी। सोचते हैं दिल्ली अथवा कलकत्ते में कोई नई इण्डस्ट्री बैठाएंगे। हम लोग आपके समान उतने बड़े बिजनेस मैन तो नहीं हैं किन्तु हमें अपने परिश्रम पर विश्वास है और जो मेहनत करता है उसे ईश्वर भी कभी किसी चीज की कमी नहीं होने देते।

'वाह, आपका विचार कितना अच्छा है। इतना बड़ा कारोबार होने पर भी आपके मन में थोड़ा-सा भी अहंकार नहीं है। आप तो जानते हैं कि हम लोग पाकिस्तानी आक्रमण के कारण कश्मीर से भाग कर आए। हम लोग .... अर्थात् हमारे पिताजी सिर्फ ग्यारह रूपये लेकर दिल्ली आए थे। शुरू-शुरू में वे पुराना डिब्बा खरीदते और बेचते थे और उसी से अपना गुजारा करते थे। इसी तरह धीरे-धीरे बिजनस करते हुए हम यहाँ तक पहुँचे हैं। पहले माँ और उसके बाद पिताजी हमें छोड़कर परलोक सिधार गए। हमलोग बिलकुल अनाथ हो गए। सब कुछ रहकर भी अगर सिर पर माँ-बाप का हाथ न रहे तो बड़ा अकेलापन महसूस होता है।' — इतना कहते-कहते कौल साहब का गला रूंध गया। उन्होंने रूमाल से आँसू पोंछते हुए पुनः कहना शुरू किया — 'इतने बड़े कारोबार का भार अचानक मेरे कंधे पर आ पड़ेगा, मैं नहीं जानता था। मैं अकेला आदमी, कहाँ-कहाँ मारा फिरूँ, किस-किस को संभालूँ? इसीलिए इस तलाश में हूँ कि सुनीता के लिए कोई योग्य लड़का मिल जाए तो शादी करके आधा कारोबार उसको सौंप दूँ। लेकिन आजकल अच्छे आदमी कहाँ मिलते हैं। सबकी निगाह दहेज के रूप में मिलने वाली नकदी पर लगी रहती है। बड़े दुख के साथ कहना पड़ता है कि आज का आदमी अपनी मेहनत पर विश्वास न करके दूसरे की धन-सम्पत्ति को फोकट में हड़प लेने की ताक में रहता हैं। .... अच्छा, आप ही बताएं यदि ऐसी मनोवृत्ति लेकर हम चलेंगे तो देश का क्या होगा? क्या कभी हमारा राष्ट्र जापान और अमेरिका की तरह विकास कर पाएगा?'

'आप बिलकुल ठीक कहते हैं। अपने देश को उन्नति के शिखर पर ले जाने के लिए पहले हमें अपने आपको सुधारना होगा।' विघ्नराज एवं अमरेश दोनों ने कौल साहब के कथन के प्रति अपनी सहमति जताई। जब उन लोगों की बातें हो रही थीं सुनीता चुपचाप मुँह झुकाए बैठी थी। शायद बड़ों के बीच में बोलना उसे पसंद नहीं था। वह बड़ी शर्मीली लड़की थी सुनीता।

होटल से लौटने के बाद विघ्नराज ने अमरेश से पूछा — 'क्या अमरू, यहाँ दाँव मारने से कैसा रहेगा?'

'अरे पूछता क्या है? यही एक हाथ मारने पर तो हम मालामाल हो जाएंगे। देखते ही देखते करोड़ों के मालिक बन जाएंगे। सुनीता से शादी कर तू उसका कारोबार संभाल लेना और मुझे अपना बिजनस पार्टनर बना देना

'शादी के बाद हम अपनी सम्पत्ति के बारे में सुनीता को क्या कहेंगे?' विघ्नराज ने प्रश्न किया।

'अरे विवाह होने के बाद यदि उन्हें मालूम भी हो गया कि हम लोग फोकट में राम गिरधारी हैं तो क्या फर्क पड़ेगा? क्या कर लेंगे वे लोग?' अमरेश ने ठहाका लगाते हुए कहा।

'तब ठीक है। तू जाकर विवाह प्रस्ताव दे आ।' — विघ्नराज ने कहा।

दूसरे दिन विघ्नराज के विवाह का प्रस्ताव लेकर अमरेश कौल साहब के पास पहुँचा। कौल साहब पहले तो हिचकिचाए फिर बोले — 'देखिए, हम लोग रूढ़िवादी परिवार के हैं। यद्यपि विघ्नराज अच्छा लड़का है फिर भी हमें उसके माँ–बाप से बातचीत करनी होगी। इसके अलावा सुनीता से भी इस विषय में पूछना होगा। इसलिए अभी से मैं कुछ नहीं कह सकता।'

'जरूर–जरूर, मैं विघ्नराज के पिताजी को बुला लाऊँगा। आपकी ओर से कौन बातचीत करेंगे?' अमरेश ने पूछा।

'हमारे मामा। मैं उन्हें खबर कर दूँगा। कौल साहब ने भी अपनी सहमति दी।

बातचीत के अनुसार तिथि निश्चित की गई। विघ्नराज की ओर से उसका भाड़े का बाप आया। कौल साहब के मामू भी समय पर पहुँच गए। कुछ देर बातचीत चलने के बाद विवाह की तारीख तय हुई। उससे पहले निबन्ध करने की तिथि निश्चित की गई।

सप्ताह भर बाद अमरेश को बुलाकर कौल साहब ने कहा — 'आप तो जानते हैं, व्यापारी समुदाय का मनोभाव कैसा होता है। इसलिए निर्बन्ध के समय अगर आपकी ओर से यथेष्ट गहने नहीं दिए गए तो समाज में चर्चा शुरू हो जाएगी। अब तो सिर्फ दो दिन रह गए हैं। मुझे मालूम हैं कि आप इतना जल्द इतने सारे रूपये जोगाड़ नहीं कर पाएंगे। मैं तीन लाख रूपये का चैक काट देता हूँ। आप उसी रूपये से सुनीता को हीरे का एक बढ़िया सेट देंगे। ताकि हमारे कुटुम्बजनों को बोलने का मौका न मिले।'

'वाह कौल साहब वाह, आप भी अच्छी बात करते हैं। यह सच है कि हम आपकी तरह बड़े व्यापारी नहीं हैं किन्तु क्या तीन लाख रूपया भी जोगाड़ नहीं कर सकते?' इतना कहते हुए अमरेश ने कौल साहब का हाथ थाम लिया।

अमरेश से सारी बातें सुनकर विघ्नराज ने कहा — 'क्यों नहीं ले आया तीन लाख का चैक? बेकार में शेखी बघार आए।'

'तेरी मुर्खामी कब जाएगी, पता नहीं। यदि मैं चैक ले लेता तो कौल साहब को हमारे ऊपर शक नहीं होता?' अमरेश ने विघ्नराज को समझाया।

'तो फिर इतने रूपये कहाँ से आएंगे?'

'बैंक में ढ़ाई लाख रूपये हैं। बाकी पैसे तेरे भाडे के बाप से सैकड़े पचास रूपये की दर से सूद पर ले आएंगे।'

निर्बन्ध के दिन बहू को हीरे का एक बेशकीमती सेट दिया गया। तय किया गया कि विवाह दिल्ली में सम्पन्न होगा। कौल साहब ने जिद्द की बारात प्लेन से ही जायेगी। जितने लोग जाएंगे लिस्ट दे दें। तीन-चार दिन में प्लेन टिकट होटल में आकर ही दे जाएंगे।

तीन-चार दिन बीत गए। कोई खबर नहीं आई। कौल साहब कहाँ गए क्या पता?

'हो सकता है दोनों भाई-बहन दार्जिलिंग घूमने चले गए हों।' विघ्नराज ने कहा।

'हाँ, हो सकता है। किन्तु खबर तो देनी चाहिए।' अमरेश बोला।

कई दिन बीत गए, किन्तु कोई-खबर नहीं मिली। दार्जिलिंग जाकर भी कुछ पता नहीं चला। उन लोगों ने दिल्ली का जो पता दिया था, उस जगह पहुँचने पर मालूम हुआ कि ऐसा कोई आदमी वहाँ कभी नहीं रहता था।

'हम लोगों ने कहीं गलत पता तो नहीं लिख लिया है?' अमरेश ने अपनी शंका व्यक्त की।

'हो सकता है। चलो कलकत्ता चलकर देखते हैं। वहीं दोनों का पता लगेगा।' विघ्नराज ने सुझाव दिया।

कलकत्ता लौट कर उन्होंने देखा कि डेरे पर एक लिफाफा आया हुआ था। कौल साहब और सुनीता ने दोनों के नाम से चिट्ठी लिखी थी।

'लाओ ... लाओ मुझे देखने दो।' इतना कहते हुए अमरेश ने विघ्नराज के हाथ से चिट्ठी छीनकर कहा — 'देखें, क्या लिखा है।'

विघ्नराज का चेहरा उतर गया। वह एकटक अमरेश की ओर देखता रहा। चिट्ठी में केवल एक पंक्ति टाइप की गई थी —बंधुगण, इस व्यवसाय में हमलोग तुम लोगों से सीनियर हैं।'

सुरभित संपर्क इंदुलता महान्ति

अपने-अपने ऑफिस से लौटकर एक साथ चाय पीने के समय का सुदर्शन और सुचरिता दोनों ही जी भरकर उपयोग करते। दोनों आपस में इस तरह घुल-मिल जाते कि बाहर भी एक विराट दुनिया है, यह भूल जाते।

कहानी की पिटारी ज्यादातर सुचरिता के पास ही रहती। पिटारी खोलकर वह एक-के-बाद एक कहानी निकालती और सुदर्शन साधारणतः नीरव श्रोता की भूमिका में रहता।

सुचरिता-सुदर्शन के जीवन का यह प्रतिदिन का वाकया था। पर उस दिन व्यतिक्रम दिखायी दिया। उस दिन ठीक समय

पर ही सुचरिता घर लौटी थी। चाय, नाश्ता लेकर सुदर्शन का इंतजार भी किया था। सब–कुछ पूर्व निश्चित समय से होने पर भी सुचरिता के रेकॉर्डर में पिन नहीं लगा था।

सुदर्शन को आश्चर्य लगा। उसने सुचरिता के चेहरे की तरफ देखा। पर सुचरिता नीचे की ओर चेहरा किये, एकाग्रता से चाय में चीनी मिलाने का काम करती रही। चीनी शायद बहुत पहले ही घुल गयी होगी।

आषाढ़ महीने के बरसने को प्रतीक्षारत आकाश की तरह सुचरिता का चेहरा धम–धम कर रहा था।

लोकल ट्रेन में उस समय सुचरिता ने नया–नया ही जाना शुरू किया था। महानगर में उसको रहते और नौकरी करते कुछ महीने हो गये थे, फिर भी सुचरिता अपने चतुर्दिक परिवेश से अछूती थी। घर एवं ऑफिस के निरापद और भद्र परिवेश के अंदर रहकर दुनिया के प्रतियोगितापूर्ण धक्कों के बारे में वह अनभिज्ञ थी।

इतनी भीड़, प्रत्येक स्टेशन पर गाड़ी एक निर्दिष्ट समय के लिए रूकेगी, यह सभी जानते, पर एक साथ चढ़ने की होड़ लग जाती। इसके कारण धक्का मुक्की होती, शरीर–से–शरीर घिसता, ऊपर से किसी तरह डब्बे के अंदर घुसने के बाद भी मुक्ति नहीं। बैठने के लिए जगह मिलने की बात तो सोची भी नहीं जा सकती। सभ्यता से खड़े होने के लिए जगह नहीं मिलती। धक्का–मुक्की के बीच शरीर–से–शरीर सटाकर खड़े रहते पुरूष और महिलाएँ। उस पर जिस रॉड को पकड़कर वह खड़ी होती, उसे पकड़कर खड़े किसी पुरूष का हाथ उससे छू जाता, तो वह बिना कारण संकुचित हो जाती इतनी बड़ी ट्रेन में इतने सारे डिब्बे। सभी में कमोबेश वही एक बात।

एक दिन डब्बे में चढ़कर ठीक ढंग से खड़े होने के लिए जगह न पाकर वह बेचैनी महसूस कर रही थी कि एक युवक भीड़ को चीरकर उसके पास पहुँचकर बोला, "आइए, यहाँ एक सीट खाली है, बैठ जाइए।"
सुचरिता ने युवक के चेहरे को देखा।

'दया का यह अवतार कहाँ से उतरकर उसकी सहायता के लिए पहुँच गया? और मतलब क्या हो सकता है?'

सीधे उसके चेहरे को देखकर भी उसका मतलब क्या है, इसका आभास उसे मिला नहीं। एकदम पड़ोस में रहनेवाले लड़के–सा चेहरा। साधारण वेशभूषा, पर दोनों आँखें बात करती हुई–सी, और अद्‌भुत रूप से संवेदना से परिपूर्ण। उस पहली मुलाकात के समय ही सुचरिता को लगा था, कभी उसके मुँह से जो बात न निकल पाएगी, तो आँखों से वही बात वह कह देगा।

आँखों की भाषा समझने पर भी सुचरिता ने चेहरा घुमा लिया। किसी की दया, अनुकंपा की ओर उसने कभी ताका ही नहीं।

पर, उसके बाद एक असंभावित घटना घटी। झट से उसका हाथ पकड़कर, एक तरह से खींचकर, ले जाकर एक सीट पर उसने बैठा दिया और धीमे स्वर में शासन करने की अंदाज में बोला, "पाँच दिन हो गये, देख रहा हूँ, बैठने के लिए एक जगह तो बना नहीं पाती हैं, और ऊपर से भीड़ में आराम से खड़ी भी नहीं हो पा रही हैं, तो फिर घर से बाहर कदम क्यों रखती हैं?"

उसका इस तरह का बुजुर्गाना व्यवहार उसे बिच्छू के डंक की तरह लगा। पता नहीं कैसे उसने समझ लिया और तुरंत ही उठकर उसके कंधों को दोनों हाथों से दबाकर उसे उठने न देकर वह बोला, "नाराज हो गयी क्या, दीदी? नाराज होइए, पर मैं भी तो कुछ झूठ नहीं बोला हूँ।"

"दीदी!" सुचरिता चौंक गयी। सुदर्शन की उम्र के एक व्यक्ति का उसे दीदी संबोधन। पर उसी दशा में रहने के लिए उसे

ज्यादा समय नहीं मिल पाया। अपनी जगह पर उसे बैठा देने के कारण चारों तरफ से दूसरे लोग तुरंत चिल्लाने लगे, "हाँ, हाँ अमर, तुम यह क्या कर रहे हो बोलो? अब खड़े होकर क्या तुम बाकी रास्ता तय कर पाओगे?"

सम्मिलित प्रतिवाद को एक ही वाक्य में शांत कर देने के लिए अमर नामक यह व्यक्ति बोला, "इस तरह खड़े रहने से बहुत आराम मिल रहा है मुझे। एक जगह बैठे-बैठे पुतला-सा बन गया था।"

सुचरिता के सामने बैठी एक वयस्क भद्र महिला ने खिसककर अमर को अपने पास बैठा लिया। बोली, "हाँ तुम्हें तो जरूर आराम मिल रहा होगा, पर तुम्हें इस तरह खड़े देखकर हमें बहुत तकलीफ हो रही है।"

अमर उसके बाद सुचरिता की तरफ देखकर अपनी बोलती आँखों को घुमाकर हँसते हुए बोला, "देखा न दीदी! दोगे तो पाओगे भी। आप को जगह दी नहीं कि मैं भी बैठने के लिए जगह पा गया।"

अमर आता सुचरिता से पहले किसी एक स्टेशन से और उसकी मंजिल थी, सुचारिता की मंजिल से काफी आगे। उसे जगह देने के बाद के दिनों में सुचरिता ने देखा कि उसके स्टेशन में गाड़ी रूकने पर अमर द्वार के पास खड़ा रहता और उसके डिब्बे में घुसते ही उसके लिए सुरक्षित सीट तक रास्ता दिखाता ले चलता। बहुत बार ऐसा भी होता भीड़ को ठेलकर सुचरिता डिब्बे में चढ़ नहीं पाती, तो वह हाथ बढ़ा देता और सुचरिता अनायास ही उसका हाथ पकड़कर चढ़ जाती।

फिर भी सुचरिता अमर के साथ सहज नहीं हो पाती थी और वह कुछ बोले न बोले, अमर उसके बारे में अपना व्यक्तव्य बिना रूके कह देता।

उसके बाद अचानक एक दिन सुचरिता का मुँह खुला। अपनी कोशिश से नहीं। अमर ने ही कोशिश करके उसका मुँह खुलवाया। सब दिन की तरह उस दिन भी अमर उसके लिए सीट रखकर, उसके स्टेशन आने के समय, द्वार पर खड़ा इंतजार कर रहा था। उसका हाथ पकड़कर उसके लिए रखी हुई सीट तक ले गया। न जाने कैसे हमेशा ही खिड़की के पास वाली सुविधाजनक सीट ही वह रखता था। वह शायद ट्रेन जहाँ से चलती थी, उसी स्टेशन से चढ़ता होगा। सुचरिता ने उससे पूछा नहीं था। उस दिन कुछ व्यक्तिक्रम भी नहीं हुआ था। उस दिन अमर उसके सामने की सीट में बैठ गया।

हर दिन की तरह सुचरिता ने अपने लिए रखी गयी सीट पर बैठकर बैग को कंधे से उतारकर गोद में रख लिया और खिड़की से बाहर देखने लगी। ट्रेन के चलते ही बाहर की दुनिया को अपनी विपरित दिशा में जाते देखने के लिए।

अमर ने कुछ देर उसके चेहरे को देखने के बाद पुकारा, "दीदी!" सुचरिता ने अमर की ओर देखा। उसकी पुकार में उसे चिर-परिचित आनंद की जगह विषाद घुला हुआ-सा लगा। चेहरे को देखकर सुचरिता समझ गयी, सब दिन का सरस चेहरा उदास है। सुचरिता उसे देख रही है, देखकर उसने उसी स्वर में पूछा, "क्या मेरा चेहरा बहुत असुंदर है?"
इस प्रश्न का अर्थ न समझ पाकर सुचरिता उसके सौम्य-सरल चेहरे को केवल देखती रही।

अमर के पास बैठी भद्र महिला बोली, "तुम्हारा चेहरा सुंदर है, यह बात तुम खुद जानते हो अमर! और यह बात भी जानते हो कि तुम्हारे चेहरे को जो एक बार देखता है, वह बार-बार देखना चाहता है।"

सबको चौंकाते हुए सुचरिता खूब जोर से हँस दी, "मैं नहीं देखूँगी तो क्या आपका सुंदर चेहरा असुंदर हो जाएगा?"

"ना-ना आप कहकर संबोधित मत करिए। बहुत मान देने का आभास हो रहा है।" उसी तरह छोटे बच्चों-सा ठुनककर अमर ने कहा।

"अब बाहर के पेड़-पौधे, पानी-पवन, आकाश को न देखकर तुम्हारे सुंदर मुख को देखकर बैठूंगी। पर मेरे सामनेवाली सीट में तुम्हें बैठना होगा। पीछे या आजू-बाजू दोनों तरफ तो भगवान ने मुझे आँखें दी नहीं हैं।" सुचरिता ने जवाब दिया।

इसी बात से ही बातचीत की धारा अनवरत बहने लगी थी। हर एक दिन बीतने के साथ ही अमर के और निकटतर होकर उसके स्वभाव और चरित्र के बारे में ज्यादा, और ज्यादा परिचय पाती जा रही थी।

सुचरिता सोचती, अमर नहीं होता तो वह यात्रा शायद असह्य हो जाती। इस डिब्बे में यात्रा करनेवाले सभी लोगों के लिए ट्रेन की तरह अमर भी एक परिहार्य अंग हो गया था।

पर एक दिन वही अमर दिखायी नहीं पड़ा। दूसरों को पता नहीं कैसा क्या महसूस हुआ होगा, पर अपने स्टेशन में गाड़ी के रूकते ही निर्दिष्ट द्वार के पास अमर का हँसता हुआ चेहरा और बढ़े हुए हाथ को न देखकर, सुचरिता की सारी खुशी मुरझा गयी। डिब्बे के अंदर घुसने के बाद उसके लिए मोना दीदी ने सीट रखी है कहकर पुकारा, तो उसने सीधे वहीं जाकर बैठने से पहले चारों तरफ एक बार नजर फिरायी।

पर अमर नहीं था। मन उदास हो गया, फिर भी कुछ व्यक्तिगत सुविधा-असुविधा को सकती है, सोचकर सुचरिता दूसरे दिन का इंतजार करने लगी। पर दूसरे दिन भी अमर नहीं आया और उसके दूसरे दिन भी.... । घर से निकलते समय सुचरिता सोचती, आज अमर जरूर आया होगा। इतने दिन तक न आने का कोई कारण नहीं हो सकता। पर चौथे दिन भी अमर को न देखकर सुचरिता और चुप नहीं रह सकी। अमर के साथ हमेशा रहने वाले विनय से पूछा, "इतने दिन हो गये, अमर नहीं आ रहा है, क्या हुआ उसे?"
चौंकते हुए विनय ने पूछा, "क्या आप अमर के बारे में नहीं जानतीं?"
सुचरिता का सीना धक-धक करने लगा। मन में कई तरह के अशुभ विचार आने लगे। जबकि अब तक उसने अमर के बारे में किसी भी तरह के अशुभ की कल्पना ही नहीं की थी। अपने में ही मगन रहकर इन कुछ दिनों में उसने दूसरों के चेहरे की तरफ ध्यान ही नहीं दिया था। पर अब देखा, तो पाया, सबके चेहरे से किसी ने हँसी को पोंछ लिया है। विषाद के एक आवरण ने चेहरे को ढक रखा है।

सुचरिता की प्रश्न पूछती आँखों के उत्तर में विनायक ने कहा, "अमर शायद अब और कभी भी हमारे साथ यात्रा नहीं कर सकेगा। ल्यूकोमिया के लास्ट स्टेज में अस्पताल में भर्ती है, डॉक्टर ने कहा है एक्यूट है और...."सुचरिता आगे और कुछ नहीं सुन सकी। ऑफिस में वह कुछ भी काम नहीं कर पायी थी। घर पहुँचकर सुदर्शन का साहचर्य भी उसके मन में कोई भावांतर सृष्टि
नहीं कर पाया था। बस एक ही सोच घूम रही थी, "अमर मरने जा रहा है।"

सुचरिता की चाय ठंडी हो रही थी फिर भी उसको पीने का कोई उपक्रम करते न देककर सुदर्शन ने अपनी चाय के कप को रखकर उसकी पीठ में स्नेह का स्पर्श देकर पूछा, "क्या हुआ सुचरिता। मुझे बताओ।"

ठंडी हवा के स्पर्श से जमा हुआ बादल पिघल गया। सुचरिता की आँखों से धार-धार आँसू झरने लगे। उसी रूदन के बीच में वह बस इतना कह सकी, "वह अमर है न, मरनेवाला है।"

यह बात समझ से परे होने के बावजूद सुदर्शन ने समझने का भाव लिये, प्यार से पत्नी को सीने से लगाकर, धीरे-धीरे केवल सिर सहला दिया, कहा कुछ नहीं।

सुचरिता ने कुछ आश्वस्ति महसूस की। कुछ न जानते हुए भी सुदर्शन तो समझ पाया है, सब-कुछ।

अढ़ाई घंटे हरिकृष्ण कौल

हम स्टेशन पहुंचे तो अंधेरा हो चुका था। पहुंचते ही हम ने आरक्षण–चार्ट पर दृष्टि डाली। लेकिन यहां भी दुर्भाग्य के ही दर्शन हुए। वेटिंग–लिस्ट में जिन भाग्यवानों के नाम मेरे दोस्त से पहले दर्ज थे उन का आरक्षण हो चुका था। लेकिन मेरे ही दोस्त को जाने किस जुर्म की सज़ा में लटका कर रखा गया था। दुर्भाग्य ने उसे और उस का साथी होने के कारण मुझे एक और तरह से भी परेशान किया था। पुणे से आने वाली जिस गाड़ी में उसे जम्मू जाना था, वह अढ़ाई घंटे लेट थी। इस दूसरी परेशानी का असर उस से ज़्यादा मुझ पर पड़ा था। मैंने सोचा था कि अगर गाड़ी आदत से मजबूर हो कर लेट ही आना चाहेगी तो भी नौ बजे तक आ ही जाएगी। दोस्त को विदा करके मैं आसानी से दस बजे की आख़िरी बस से अपने घर पहुंच सकता था। मगर अब वह बात नहीं रही थी। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि दोस्ती और लिहाज़ का चोला उतार कर दोस्त को उस की किस्मत के हवाले करके स्टेशन पर छोड़ जाऊं, और खुद समय पर अपने घर लौट जाऊं, या फिर मुद्दत बाद मिले दोस्त के प्रति अपना कर्तव्य निभाते हुए तब स्टेशन पर ही ठहरूं जब तक पुणे से आ कर गाड़ी उसे ले कर जम्मू के लिए रवाना नहीं हो जाती। अपने आप को अपनी किस्मत के नहीं, बल्कि अपने प्रभु के हवाले करूं। यदि उस की इच्छा होगी तो मुझे सकुशल मेरे घर पहुंचा देगा। इच्छा न होगी तब भी मेरा सिर उस के आगे झुका रहेगा।

"इस मुल्क का कुछ नहीं होगा! न ट्रेन वक्त पर आएगी न प्लेन टाइम पर टेक–ऑफ करेगा।" मेरे दोस्त ने यह बात तल्ख लहज़े में कही और बेंच से उठ कर प्लेटफॉर्म पर निरूद्देश्य घूमने लगा। मैं स्टेशन मास्टर के पास गया। उस ने मुझे तसल्ली दी कि ज़्यादा घबराने की जरूरत नहीं है। गाड़ी आते ही हमें टी॰टी॰ से बात करनी चाहिए। अगर उस के पास कोई बर्थ खाली होगी तो वह बर्थ हमें ही मिलेगी।

जिस प्रकार कोई मुर्गी चोंच में दाना ले कर चूज़े के पास जाती है उसी प्रकार मैं यह शुभ सूचना ले कर अपने दोस्त के पास गया। सुन कर उसे कोई प्रसन्नता नहीं हुई। उस के चेहरे पर उस की खास मुस्कुराहट एक बार फिर मेरा मज़ाक उड़ाने लगी – स्कूल मास्टर से ले कर स्टेशन मास्टर तक सब झूठी तालीम और झूठी तसल्ली देते हैं। इस मुल्क का कुछ नहीं होगा।

मेरा यह दोस्त कश्मीर का प्रसिद्ध और जाना–माना बुद्धिजीवी था, जो मानव मूल्यों के विषय में हुई एक ऑल इंडिया कॉन्फ्रेन्स में भाग लेने दिल्ली आया था। दो दिन की यह कौन्फ्रेन्स कल शाम को ही संपन्न हुई थी। आज सवेरे वह होटल छोड़ कर मेरे यहां आया था और सारा दिन मुझे अर्पित किया था। सब से पहले हम इंडियन एयर लाइंस के दफ्तर गए थे। वहां उस ने रिक्वेस्ट कर टिकट वापस करके "रिटर्न एयर फेअर" के रूपए जेब में डाले थे। वहां से हम करोलबाग गए थे जहां से उस ने बीवी–बच्चों के लिए कपड़े और कुछ दूसरा सामान खरीदा था। करोलबाग से आ कर उस ने मेरे घर पर मेरे साथ कश्मीरी खाना खाया था और मेरी पत्नी के पकाने की बहुत तारीफ की थी। मेरे बच्चों के साथ भी वह खूब खेला था और इस बात के लिए सिर्फ उन्हें ही नहीं, मुझे और मेरी पत्नी को भी शाबाशी दी थी कि इतने बरस दिल्ली में रहने के बावजूद हम और बच्चे कश्मीरी ही बोलते हैं। खाना खाने और फिर नमकीन गुलाबी चाय पीने के बाद हमारे बीच कई मसलों पर बहस छिड़ी थी। उस की बातों से लगता था कि उसे हर व्यक्ति और हर विचार से नफरत है, मगर वैसी ही नफरत जैसी एक बाप को अपने प्यारे बेटे से उस की बदकारी देख कर होती है, या फिर किसी आज्ञाकारी और श्रद्धालु बेटे के मन में अपने पिता का कोई नीच कार्य देख कर पैदा होती है। उसका मानना था कि बुनियादी तौर पर आदमी कुत्ते से ज्यादा ज़लील और भालू से अधिक वहशी है। उस की राय में वह दिन कायनात का सब से तारीक दिन जिस दिन चार

टांगों वाले जीव ने दो टांगों पर चलना सीखा था और इस तरह अपनी जात को उबार कर बाकी मख़लूकात को डुबो दिया था। यह सब कहने के बाद उसने आह भरी थी, "इस दुनिया का कुछ नहीं होगा!"

चार बजे के आस-पास मेरी पत्नी ने उस की फरमाइश पर कश्मीरी कहवा बनाया था। कहवा पी कर हम ने और भी बहुत सारे अदबी, इलमी, आलमी और आफाकी मसले धुने थे। सवा सात बजे वह और मैं टैक्सी से स्टेशन की ओर चल पड़े थे और इस समय सवा नौ बज रहे थे।

प्लेटफॉर्म नंबर दो से एक गाड़ी जाने कहां के लिए निकल पड़ी। प्लेटफॉर्म तीन पर कोई गाड़ी जाने किधर से आई। लेकिन ख़ाली पटरी लिए प्लेटफॉर्म नंबर एक पुणे से आने वाली उस गाड़ी की प्रतीक्षा करते-करते थक गया था जिससे मेरे दोस्त को जम्मू जाना था। मैंने दाएं-बाएं दोनों ओर दूर तक नज़र डाली। ख़ाली पटरी पर जल्दी गाड़ी आने का कोई सवाल ही पैदा नहीं होता था। लेकिन मेरे दिमाग ख़ाली दिमाग में जल्द ही यह सवाल आया कि क्या दोस्त को उस की किस्मत के भरोसे छोड़ना मेरे लिए और हमारी दोस्ती के लिए अच्छा रहेगा? नहीं, मुझे गाड़ी के आने और फिर उस के चले जाने तक इंतज़ार करना होगा। गाड़ी के आने और चले जाने के बीच के समय में मित्र के सोने के लिए बर्थ का कोई न कोई इंतज़ाम भी करना होगा। उसे ख़ुशी-ख़ुशी विदा करने के बाद ही ख़ुद घर वापस जाने की चिन्ता करनी होगी। ठीक है दस बजे के बाद कोई बस नहीं मिलेगी, पर थ्री-व्हीलर तो मिल जाएगा। तभी यथार्थ की सुध आने से मेरा उत्साह ठंडा पड़ गया। स्टेशन से मेरे घर तक थ्री-व्हीलर का किराया दस-पन्द्रह रूपए से कम क्या होगा? मगर मेरी जेब में पांच रूपए का एक और अकेला नोट था! आधी रात को घर पहुंच कर पत्नी को जगाना और इस से थ्री-व्हीलर वाले को देने के लिए रूपए मांगना, मेरी समझ में ही नहीं आया कि मैं इस नई समस्या से कैसे निपटूं? जब मेरी पत्नी की नींद टूटेगी, बल्कि तोड़ी जाएगी, तब वह मेरी हड्डी-पसली तोड़ने में कौन-सी कसर बाकी रखेगी? पूछेगी कि यह कौन-सा चहेता भाई -बहनोई आया था जिस के लिए तुमने पूरा दिन और आधी रात बर्बाद की? अपने बच्चों का पेट काट कर रोगनजोश, मख़नी शामी कबाब से उसका जहन्नुमी पेट भर दिया और तिस पर थ्री-व्हीलर के किराए के तौर पर जुर्माना भी अदा किया?

मैं ने अपनी पत्नी के अनचाहे मेहमान की ओर दृष्टि डाली। उस ने समय बिताने के लिए ईवनिंग न्यूज़ का पर्चा ख़रीदा था। उस के पास जा कर मैंने भी पर्चे पर नज़र डाली।
"पांच करोड़!" मेरे मुंह से चीख़-सी निकल पड़ी। सुर्ख़ी वाली ख़बर बड़ी सनसनीख़ेज़ थी। पांच करोड़ रूपयों का एक बड़ा भारी स्कैन्डल नंगा हुआ था जिस में बड़े-बड़े लोगों के हाथ होने की संभावना थी।
"पांच करोड़ पढ़ कर तुम्हारी लार इस तरह क्यों बहने लगी? आजकल करोड़ कोई बड़ी रकम नहीं होती।" उसने मेरी मूर्खता पर मुस्कुराते हुए कहा, "कुछ पता है, आए दिन होने वाले इन सेमिनारों, कॉन्फ्रेन्सों, जश्नों पर कितने करोड़ ख़र्च होते होंगे? कितनी दौलत ज़ाया होती होगी? इस मुल्क का कुछ नहीं होगा!"
"मतलब जिस कॉन्फ्रेन्स के लिए तुम यहां आए थे, उस पर ख़र्च किया गया सारा पैसा भी असल में ज़ाया हुआ है!" मैंने कहा।
"बिलकुल ज़ाया हुआ है। इतने लोगों के लिए फर्स्ट-क्लास या हवाई-जहाज़ से आने-जाने का इंतज़ाम किया गया। फाइव-स्टार होटलों में इन के कमरे बुक किए गए। लंच, डिनर, पार्टी, पिकनिक पर हज़ारों नहीं, लाखों रूपए उड़ाए गए। पहले बेमतलब की इन मजलिसों के बारे में फारसी में कहा जाता था - निशसतन, गुफतन, बरख़ासतन; मतलब बैठना, बातें करना और उठ कर चले जाना। मगर अब इन तीन तनों के साथ एक चौथा तन भी जुड़ गया है - ख़ुरदन, यानी खाना-पीना।"
"इस मुल्क का कुछ नहीं होगा।" जाने कैसे इस बार उसका तकिया कलाम मेरे ही मुंह से निकल पड़ा।
"मुल्क का कुछ होगा या नहीं, मुझे फायदा ज़रूर हुआ।"
"कैसा फायदा?"
"मुझे दस साल बाद अपने दोस्त से मिलने का मौका हासिल हुआ।"

उसने पहले मेरे कंधे पर हाथ रखा और फिर मुझे गले से लगाया। फिर मेरी कमर में हाथ डाल कर मुझे एक स्टॉल तक ले गया और दो ऑरेन्ज जूस का ऑर्डर दिया। कायदे और शराफत से पेमेन्ट मुझे ही करनी चाहिए थी। मगर मेरे पास सिर्फ पांच रूपए का एक नोट था। मैं नज़र बचा कर माइक पर हो रहा एनाउंसमेन्ट सुनने और उसे समझने की कोशिश करने लगा। मेरा दोस्त जब पर्स निकालकर पेमेन्ट करने लगा तो मैंने तुरंत जेब में हाथ डाला। उस ने मेरा दाहिना हाथ पकड़ कर मेरे दूसरे हाथ में जूस का गिलास थमा दिया। ठंडा जूस पीते-पीते लज्जित चेहरे से पसीने की सर्द बूंदे बहने लगीं। और देखते-देखते अढ़ाई घंटे गुज़र गए। पूरे साढ़े दस बजे दाहिनी तरफ का सिग्नल डाउन हुआ। दूर पटरी के सिरे पर लाल बत्ती की जगह हरी बत्ती जली और कुछ देर बाद ही प्लेटफॉर्म को झकझोरती प्रागैतिहासिक काल के डायनासोर से भी भयानक रूप में गुर्राती रेल गाड़ी हमारे सामने पहुंच कर रूक गई। प्लेटफॉर्म पर सूटकेस लिए मर्दो, बच्चों के हाथ थामे औरतों और सिर पर सामान लादे कुलियों की भाग-दौड़ और धक्का-मुक्की शुरू हुई। न उतरने वाले भीतर जाने वालों को घुसने देते और नही घुसने वाले उतरने वालों को बाहर आने देते थे। यह पागलपन देख कर मेरा दोस्त हक्का-बक्का रह गया था। उसकी अनोखी मुस्कुराहट इस समय जैसे उस के होठों से गायब हो गई थी।

अचानक काला कोट पहने टी॰टी॰ प्लेटफॉर्म पर खुमी की तरह फूट पड़ा और सामने वाले काउंटर के पीछे खड़ा हो गया। दर्जन भर यात्री सामने इकट्ठे हो कर उसकी ओर टुकुर-टुकुर देखने लगे। लेकिन उसने उन पर कोई दया न दिखा कर बेरूखी से ऐलान किया कि किसी भी कंपार्टमेन्ट में सोने के लिए कोई बर्थ खाली नहीं है। मेरे दोस्त का चेहरा पीला पड़ गया लेकिन मैं बेशर्म बन कर टी॰टी॰ की तरफ बेचारगी से देखने लगा। वह सामने खड़े लोगों की अवहेलना करते हुए जाने किस अभिप्राय से इधर-उधर देख रहा था। लेकिन मेरी तरफ एक-दो बार उसने अजीब नज़रों से ज़रूर देखा था। या तो उसे मुझ पर और मुझसे ज़्यादा मेरे साथ चिपके मेरे दोस्त पर दया आई थी; या फिर उसने हमें तगड़ा आसामी समझा था। थोड़ी देर बाद जब उसके सामने खड़े व्यक्ति छंटने लगे तो उसने बिना किसी हिचक-झिझक के मुझसे बीस रूपए मांगे। मेरे दोस्त ने तुरंत दस-दस के दो नोट मेरे हाथ में दिए जो मैंने मुस्कुरा कर टी॰टी॰ साहब के हवाले किए। टी॰टी॰ ने भावहीन चेहरे से नोट जेब में रखे। मेरे दोस्त का पीला पड़ा चेहरा फिर से कश्मीरी सेब की-सी लालिमा-सा चमकने लगा। उसने मुस्कुराते हुए मुझसे कश्मीरी भाषा में कहा, "अब शैतान का पेट भर गया, मुझे बर्थ मिल गया और मेरा काम बन गया। अलबत्ता इस मुल्क का कुछ नहीं बनेगा।"

टी॰टी॰ ने पहले जैसे भावहीन चेहरे से मुझसे टिकट मांगा। मेरे दोस्त ने अपना टिकट मेरे हाथ में रखा जिसे मैंने टी॰टी॰के हवाले किया। उसने कंपार्टमेन्ट और बर्थ का नंबर लिख कर टिकट लौटाया। मेरे दोस्त ने अपना टिकट मेरे हाथ से छीन लिया और अपना कंपार्टमेन्ट खोजने दौड़ा। मैं भी उस के पीछे जाने लगा कि टी॰टी॰ने आवाज़ दी, "दूसरा टिकट कहां हैं?"
"हम में से एक को ही जम्मू जाना है। जिसे जाना है वह अपना डिब्बा ढूंढ़ रहा है।" मैंने उसे असली बात बता दी।

बात सुनकर टी॰टी॰का चेहरा क्रोध से तन गया और मेरी ओर देख कर बोला, "मैं सेकेन्ड क्लास के एक बर्थ के सिर्फ दस रूपए लेता हूं। न एक पैसा ज्यादा, न एक पैसा कम। यह मेरा उसूल है और मैं उसूल छोड़ कर बेईमानी नहीं करता।"

उसने जेब में हाथ डाला और नफरत से मेरी ओर देख कर दस का नोट मेरे हवाले कर दिया। मैंने नोट लिया और अपने दोस्त की तरफ नज़र डाली। वह झेलम एक्सप्रेस के डिब्बों के नंबर पढ़ कर अपना डिब्बा खोज रहा था। मैने इधर-उधर देख कर नोट चुपके से अंदर की जेब में डाल लिया। अब मेरे पास पन्द्रह रूपए थे। एक पांच रूपए का नोट जो मैं घर से लाया था और दूसरा दस का नोट जो भगवान की कृपा से अभी-अभी मुझे यहीं मिला था। अब मैं बिना किसी परेशानी के थ्री-व्हीलर में आराम से अपने घर जा सकता था और घर से दस-बीस गज़ पहले ही किराया चुका कर थ्री-व्हीलर वाले की छुट्टी कर सकता था जिससे मेरी पत्नी को शक करने का मौका ही नहीं मिलता कि मैं बस से नहीं, थ्री-व्हीलर से घर लौटा हूं।

मैंने एक बार फिर पटरी पर खड़ी रेलगाड़ी की ओर नज़र डाली। मेरा दोस्त अभी तक अपना डिब्बा पहचान नहीं सका था। दोस्ती और शराफत का तकाज़ा पूरा करने की नीयत से उसकी मदद करने के लिए मैं दौड़ कर उसके पास पहुंचा।

कामरूपी यू आर अनंतमूर्ति

हेलन अभी कच्ची उमर की ही है। शीशे के सामने अठखेलियाँ करती नाच रही है। सड़क के आवारा छोकरों को देखकर डांस के सीखे स्टैप्स करते हुए उसे अपने शरीर की थिरकन निहारना सुखद लगता है; वह निर्लज्ज-सी सोच रही है कि उसकी ओर कोई क्यों नहीं देखता। वह एक-चौथाई बच्ची भले ही हो, पर तीन हिस्से तो स्त्री ही है। नाज – नखरों और अदाओंवाली इस लड़की की एकाग्रता को भंग न करें। आगे वह एक पूरी नागरिकता को ही भस्म कर डालने की शिक्षा पा रही है। यह येट्स का कथन है। मेरे सामने से गुजरा एक कामरूपी मुझे लिखने को विवश कर रहा है।

उस व्यक्ति ने एकाएक भीतर घुसकर चारों ओर नजर दौड़ायी। भटकती नज़र एक सोफे से दूसरे तक दौड़ती रही। सामने के आदमकद शीशे के सामने उसने अपनी मूँछे करीने से ऊँची कीं और बालों को सँवारा। मेरा ध्यान खींचने के लिए अपने को ठीक-ठाक किया। भौंहों के नीचे अपनी आँखों को पूरी तरह खोलकर दिखाने का व्यर्थ प्रयास किया। फिर से बाएँ घूमकर हठात सामने घूमा। हँसी से भरे पोपले मुँहवाली गांधीजी की फोटो के नीचे, चौकोर काँच की मेज पर रखे सफेद रंग के फोन पर हम दोनों की नजर पड़ी ः कहीं से अचानक भीतर घुस आये उस झींगुर की तरह, जो दिशाहीन होकर कहीं से कहीं उड़ता हुआ जहाँ-तहाँ टकराता धप्प से आ गिरे। फोन और गांधी के सामने खड़े होकर उसने अपना ब्रीफकेस लाल सोफे पर फेंककर मेरी ओर देखा। इस प्रकार हम लोगों की बातचीत शुरू हुई।

हैदराबाद के हवाई अड्डे के लाउंज में मैं अकेला हवााई जहाज की प्रतीक्षा में बैठा था, तभी इस महानुभाव के दर्शन हुए। सफेद टाइट पैंट और बुश्शर्ट – दोनों ही खादी के थे। वी•आई•पी• लाउंज के योग्य सज्जनता के लक्षण उसके मुख पर दिखाई नहीं दिये, फिर भी खादी के कपड़े पहने था इसलिए उसमें अहैतुक साहस रहा होगा। मैने सोचा, शायद वह मेरे बेटे की उम्र का हो। पर पिचके गालों और भटकती लालची आँखोंवाले ऐसे लोगों की आयु का निश्चित अनुमान करना कठिन होता है।

मैं कुंदेर की पुस्तक 'सर्वग्राही संवेदना' पढ़ रहा था। मुझ पर शायद उसका प्रभाव रहा होगा। उसने टूटी-फूटी अंग्रेजी में लगातार जो कुछ कहा, मैं उसको नजरअन्दाज नहीं कर सका। एक वाहियात-सा कैमरा मेरी तरफ बढ़ाकर उसने मुझे बताया कि उसे कहाँ से कैसे थामना है और किस स्थिति में कैसे-किस बटन को दबाकर फोटो खींचनी हैं। फोटो खींचने से पहले अपने जरा-जरा उभरे दाँतों को ढाँकने का प्रयास करते हुए अपनी अपेक्षाओं को मुझ तक पहुँचाने और उन पर मेरी प्रतिक्रियाओं से बे-परवाह उसकी स्वप्रतिष्ठा के बारे में मैं जो देख सका, वह था उसका अपना स्वार्थ-साधन। टूटी-फूटी अंग्रेजी में अपनी बात कहते हुए उसने मुझ नितांत अपरिचित की विनम्रता को बिना किसी 'डाउट' के स्वीकार कर लिया था।

"वहाँ मिस्टर, वहाँ – गांधीजी के फोटे के नीचे! मैं वहाँ सोफे पर बैठूँ और फोन उठाकर हँस-हँसकर बातें करते हुए जरा मूड बना लूँ, तब आपको गांधीजी की फोटो, लाल सोफा-सेट, ज़रा-सा हरा कार्पेट, पासवाली काँच की मेज, फूलदान में लगे गुलाब और मेरा स्टाइल – इन सबको फोकस करके मेरा स्नैप लेना है।"

एक आँख मूँदकर मैंने बड़ी विनम्रता से उसका स्नैप लिया। इससे उत्साहित होकर उसने कई तरह के पोज और मुख-मुद्राओं के फोटो खिंचवाये। एक बार 'चप्पंडि चप्पंडि' (कहिए, कहिए) कहकर खिलखिलाकर हँसा भी।

अब वह अपने जीजा के घर में बैठा है। यह जीजा उसके स्वजातीय मंत्री का पर्सनल असिस्टैंट है। वह मिनिस्टर उसका इतना घनिष्ठ है कि यह उसी के घर में नहाता-धोता है।

शायद मुझे विनीत बनाने के लिए या फिर अपने मुख पर यशोलक्ष्मी की कृपावली मुद्रा लाने के लिए वह इस तरह की बातें अंग्रजी, तेलुगु और हिंदी में लगातार करता रहा और अपने उन मूडों को व्यक्त करनेवाले फोटो मुझसे खिंचवाता रहा।

रील की आखिरी फोटो में वह फोन सुनता हुआ कुछ नोट कर रहा था। (इस बार उसने अपने ब्रीफकेस से एक पुड़िया निकालकर माथे पर कुंकुम लगा लिया था।) ऐसे में खुद मिनिस्टर ही यहाँ आ जाते हैं। वह जरा-सा उठकर उनको हाथ के इशारे से बैठने को कह रहा है। एक यह पोज था।

जिस भविष्य की वह कल्पना कर रहा था, मेरे माध्यम से उसी की अपनी इच्छा वह पूरी कर रहा था। फिर वह अपना ब्रीफकेस लेकर उठ खड़ा हुआ। उसने कैमरे से रील निकालकर सावधानी से उसे डिब्बे में लपेटकर रख लिया।

लेकिन उस शनि ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा। कुंदेर को पढ़ने के बहाने मैं अपनी पूर्व मानसिक स्थिति में लौटना चाहता था, पर वह बगल की कुर्सी पर ही आ बैठा। उसने अपने ब्रीफकेस में से साज-सामान निकाला।

सामने आदमकद शीशा लगा था। दूसरों का लिहाज करने की मेरी प्रवृत्ति के कारण उसे डींग मारने का अवसर मिल गया। मेरी आँखों से आँखें मिलाकर उसने अपने मुँह मियाँ-मिट्ठू बनना शुरू कर दिया। उसका सिर-पैर जाने बिना मैं उसकी बातों में दिलचस्पी दिखाने लगा। मैं कौन हूँ, उसने यह पहले ही पता लगा लिया था। वह अपनी शेखी बघारने में लग गया। मुझे याद नहीं उस समय मैंने अपने आपको क्या समझ रखा था। पर उसने मुझ जैसे कइयों को अपने मंत्रीजी के चैंबर में देख रखा था। मैंने उसकी जो तस्वीरें खींची थीं वे उसकी दैनिक चर्या को ही व्यक्त करनेवाली थीं। 'देखिए' कहकर उसने अपना एलबम खोला।

एक चित्र में वह फर्नांडिस के गले में हार पहना रहा है। देश-सेवा के अपने प्रथम चरण में वह ऐसे पक्ष में है जिससे एक पैसे का फायदा नहीं। इसमें तो धूल ही नसीब होती है। ऐसा चित्र था वह। दूसरी फोटों में वह एन•टी•आर• के चैत्ररथ का अगुआ है। हाथ उठा-उठाकर जय-जयकार कर रहा है। उसका एक स्वजातीय लीडर तेलुगुदेशम पार्टी में मंत्री बन गया था इसलिए लाचार उसे उसके साथ जाना पड़ा। यह उस समय की फोटो थी। एक और चित्र में वह सिर और मूँछें मुड़ाकर पेड़ की उन जड़ों-सा दीख रहा था जिन पर जमी मिट्टी धुल गयी हो। राष्ट्रपति के साथ तिरूपति जाकर इनके लीडर ने भी सिर मुँडवा लिया था। तब इसने भी वैसा ही किया था। तब की तस्वीर है यह।

बाकी जीराक्स प्रतिलिपियाँ हैं। किसी-किसी मंत्री के, किसी-किसी व्यक्ति के लिए ः हो सके तो काम दीजिए वाले अभिप्राय के सिफारिशी पत्र। उसमें यह भावना थी कि इसके परोपकारी स्वभाव के कारण ही यह सब चल रहा है। आन्ध्र के मंत्रियों के अलावा उसने केंद्र के मंत्रियों के भी पत्र दिखाये। अब वह कांग्रेस में हैं। यूथ कांग्रेस का वही सेक्रेट्री है। बैकवर्ड सैल के मंत्री के लिए वही स्पीच लिखता है। जीजा पर मंत्री का बहुत स्नेह है। पर जीजाजी को अंग्रेजी नहीं आती, इससे बिना जीजा का काम नहीं चलता इत्यादि बातें मेरे सामने क्षण-भर में साफ हो उठीं।

मुझे वह कथाकार लेखकों के गले पड़नेवाले कॉमिक के पात्र जैसा लगा। मैंने उसका नाम नहीं पूछा। स्वयं आगे बढ़कर हाथ पसारकर वह बोला - मैं, शंकर बाबू, यूथ कांग्रेस का लीडर। मुझे ऑल इंडिया बैकवर्ड सैल के इनवाइटी के रूप मंत्रीजी ने नॉमिनेट किया है।

"आपका 'एड्रेस' देखकर मुझे 'होप' हो गयी।" बाद में खड़ा होकर हँसता हुआ वह बोला ः "आप जैसे 'गेट ऑन' व्यक्ति बिना सूट-टाई के तो पत्नी से भी नहीं मिलते।" उसकी बात सुनकर मैंने सोचा कि आगे से कुर्ता-पाजामा नहीं पहनना चाहिए। लाउंज में चक्कर लगाते हुए वह मेरे बारे में कहने लगा, "आप एक सफल आदमी हो।" यह वह देखते ही जान

जाता है कि कौन क्या है। इसके बिना इस जमाने में राजनीति में रहना संभव नहीं। "सफल होने के लिए क्या सिर्फ प्रतिभा ही काफी है? ऊपरवाले की कृपा होनी चाहिए।" दिल्ली के विमान की प्रतीक्षा में बैठा मैं, उसे बड़ा 'फ्रेंडली' लगा। "हमारे प्रधानमंत्री जानते हैं कि आप जैसे लोगों को कैसे इस्तेमाल करना चाहिए। मैं तो इस समय पीठ-पीछे हाथ बाँधकर प्रतीक्षा करता रहता हूँ।"

मित्र शंकर बाबू को यह पता लग गया होगा कि उस समय मेरा ध्यान वहाँ नहीं है। यह देखकर उसने एकदम हाथ से लिखा दीखनेवाला परंतु प्रिंट हुआ राजीव गांधी का ग्रीटिंग कार्ड दिखाया। उसने शीशे से यह देख लिया कि जिस प्रभाव की उसे आशा थी वह पड़ चुका है। बाद में उसने एक बहुत बड़ा चित्र दिखाया। वह किसी विवाह का चित्र था। जब मैंने वह चित्र देखा तब उसकी इच्छा कुछ और थी और मेरे मन में कुछ और। चित्र में एक सुंदर दुल्हन ने अपनी छाती पर मोटी-सी चोटी डाल रखी थी। लड़की काली थी। उसके प्रत्येक अंग पर सोना लदा था फिर भी वह मुझे एक शापग्रस्त सुंदर देवकन्या-सी जान पड़ी। उसके सामने एक बड़ी तोंदवाला खड़ा था। उसकी गर्दन पर तह-पर-तह चरबी चढ़ी हुई थी। खिजाब लगे बालोंवाली आधी सफाचट खोपड़ी। उसकी मोटी तोंद पर चढ़े चमकदार रेशमी कुर्ते में वह वी•आई•पी• एक मदमाता रसिक जान पड़ा। हाथ जोड़कर उसके खड़े होने से लगता था कि वह किसी की प्रतीक्षा में हो, ऐसा नहीं लग रहा था। वह एक दृष्टि में अटकी शिलामूर्ति-सा लगा। बाद में सोचते हुए मेरे मन में पंखुड़ियाँ-सी खुलने लगीं।

शंकर बाबू उस मोटे का परिचय देने को आतुर था। पर मैंने उस शापग्रस्त कन्या जैसी दीखती लड़की के बारे में प्रश्न करना शुरू कर दिया। आपकी बहन का नाम क्या है? क्या पढ़ी-लिखी है? वह भाग्यशाली निजी सहायक आपके जीजा ही हैं। हाँ, और ये मंत्री हैं यह भी आपके बताये बिना ही मैं समझ गया हूँ। आपकी बहन की अब कोई संतान है? उसकी रूचियाँ क्या हैं?

पर वह उठकर खड़ा हो गया। पीठ-पीछे हाथ बाँधकर बड़ी शान से मंत्री के बारे में बखान कर रहा था - ये पूजा किये बिना कॉफी तक भी नहीं छूते। सबसे बढ़िया टेलर से ही वे अपने कुर्ते सिलाते हैं। अपनी जाति में सेकेंड लाईन ऑफ लीडरशिप होना चाहिए, कहकर उसे आगे ला रहे हैं। उन्होंने ही अपने खर्चे से शादी करायी। पाँचेक कैबिनेट में वे मंत्री रहे हैं। नेक्सलाइट भी उनसे डरते हैं। सभी बैकवर्ड लोगों से उन्हें प्यार है। "सरोज, जरा कॉफी बना दो" कहते वे सीधे रसोई में ही पहुँच जाते थे।

अंतिम वाक्य में भूतकाल का प्रयोग सुनकर मेरा कौतुहल और भी जाग पड़ा। जब उसने बहन की बात उठायी तब से मैं उसके लिए एक श्रोता भर था। अब उसके बात करने का लहजा बदल गया था मानो मैं अब नेक्सलाइटों की धमकियों के बारे में केवल एक श्रोता होऊँ। इसने मंत्री महोदय को एक भाषण लिखकर दिया था 'लॉ एंड ऑर्डर' के बारे में।

उस भाषण का विषय था नेक्सलाइट लोगों की धमकियों का मुकाबला कर पाना संभव नहीं, यह भी एक स्वर था। पिछड़ी जाति की समस्याएँ अभी हल करनी हैं। मेरी माँ, जो इतनी रीलिजस थी, वह भी अब नेक्सलाइटों की प्रशंसा करने लगी हैं। मेरी बहन भी अब उनसे मिलने को क्यों तैयार हो रही है?

शीशे के सामने भटकती उसकी छोटी-छोटी आँखें जब मेरा सामना करने लगीं तब मैंने कठोरता से पूछा, "कौन-सी-बहन?"

उसे तनिक तसल्ली हुई। बैठकर उसने ब्रीफकेस से एक और चित्र दिखाकर कहा, "यह चित्र मैंने उसके अनजाने में ही खींचा है।" यह कहकर उसने मुस्कराकर मुझे उत्साहित-सा किया।

उस चित्र में मैंने देखा - सुखाने को छाती पर बिखराये घने चमकते काले बाल। उसके शरीर पर नाम को भी एक आभूषण न था। यहाँ तक कि कान में बालियाँ भी न थीं। सादी हथ-करघे की साड़ी पहले स्नानघर से बाहर निकलती हुई दीख रही थी। उसे देखने से लगता था कि गुस्सा नाक पर ही धरा है। वह एकदम जलती पांचाली-सी दीख रही थी। बड़ी बहन के

समान शापग्रस्त सौम्य देवता नहीं। फ्लैश से हैरान हुई विस्फारित आँखों की कठोर दृष्टि से भाई को जलाये डाल रही थी। काला मुख, काले बाल, चमकती आँखें! देखने से ऐसा लगा जैसे घने बादल हों।

"यही गीता है। सबसे छोटी बहन। रोज घर–आँगन बुहारकर पोंछा लगाती हैं। बड़ी अच्छी रंगोली भी डालती है। अब इसी ने नेल्लूर में हमारे कुल के लोगों को एकत्रित करके शराब की दुकाने बंद कराने की क्रांति की है।" यह कहकर उसने व्यंग्यभरी हँसी हँसते हुए एक दीर्घ विश्लेषण करने को विवश कर दिया था।

वह किसी भी विश्लेषण के बारे में हो सकता है। पर दुःखी मानव–व्यवस्थाओं के दोषों के बारे में, मानव इतिहास के कलंक के प्रति शंकर बाबू को किसी प्रकार की परवाह न थी। पर उसकी बातों में यह बात आभासित हो रही थी कि हमारे जैसे लोग उसकी आगे की बहस में रूचि ले सकते हैं। "डेमोक्रेसी की आपको जरूरत नहीं। चुनाव के बिना डेमोक्रेसी बची रहेगी? चुनाव के लिए पैसे नहीं चाहिए? वे कहाँ से मिलेंगे? काले धन से ही न? आगे डेवलपमेंट के लिए रेवेन्यू नहीं चाहिए क्या? वह कहाँ से आएगा? काले पैसे से ही न?

"मोस्ट ऑफ इट! उसमें ज्यदा–से–ज्यादा शराब की बिक्री से। इन नेक्सलाइटों को भी क्रांति के लिए बंदूकें कहाँ से मिलती हैं? ड्रग के पैसे से। पाकिस्तान से, चीन से, जर्मन–विद्रोह से,....लेनिन ने क्रांति की थी न? गांधीजी को भी पैसा बिरला से ही मिलते थे न? पर उसे पैसे कहाँ से मिले थे? आकाश से बरसे थे क्या? आप जैसे लोग इंग्लैंड से पढ़कर अपने को सज्जन कहकर इतराते नहीं – उन देशों के पास जो पैसा आया है वह भी तो गरीब देशों का खून चूस कर ही तो आया है। इसी तरह साई बाबा जो अस्पताल बना रहा है,..... या तिरूपति के तिम्मप्पा का भंडारा – "

मैं वाद–विवाद में हिस्सा नहीं ले रहा था, यह देखकर शंकर बाबू ने अपने आप हँसना शुरू किया ः "यह क्या, सर? आप जैसे लोगों से मैं जरा अंग्रेजी सीखना चाहता हूँ तो आप यूँ चुप हो गये! मैं आपकी तरह फॉरेन गया नहीं। संडे, इंडिया टुडे, फाइनांशियल एक्सप्रेस –जो भी हाथ लगता है, उसे पढ़कर मैंने अंग्रेजी सीखी है। हमारे ऑफिस में ई•पी•डब्ल्यू• पत्रिका आती है। भले ही मैं आपको इम्प्रैस नहीं कर सका पर हमारे मंत्रीजी के लिए मैं ही ब्रेन हूँ। ये सब विचार मैंने उनको लिखकर दिये और उसी बात को लेकर वे बोलते हैं और आप जैसे लोग बड़ी गंभीरता से उसका विश्लेषण शुरू करते हैं। उनके बारे में आप ही कल ई•पी•डब्ल्यू• में लिखेंगे।"

खैर, उसके इतना ज्ञान बघारने पर भी मैं उससे प्रभावित नहीं हुआ।

पर मैंने जानबूझकर जम्हाई लेते हुए कहा, "मैंने तो आपकी बड़ीवाली बहन के बारे में पूछा था, पर आपने उस बारे में कुछ कहा ही नहीं!"

"क्या बताऊँ, मेरा दुर्भाग्य! शादी के एक महीने बाद ही वह चल बसी।" धरती पर आँखें गाड़े शंकर बाबू ऊपरी मन से बोला, "उसने सुसाइड कर ली। मेरी सारी फजीहतों का वही कारण है।"

कामरूपी अपने असली रूप में एक क्षण–भर के लिए ही सही मुझसे बात करेगा, मेरा यह सोचना भ्रम ही रहा। उसे मुझसे क्या चाहिए था। क्षण–भर में ही उसकी आँखें शीशे से सोफा और सोफे से शीशे तक भटकने लगीं। उसका भाषण बड़ा साफ–सुथरा था। सरोज मनोरोगी रही होगी।

"हमारा घराना शिक्षित नहीं था। माँ को पता ही नहीं चला। मेरा तो सारा समय समाज–सेवा में ही चला जाता था। रोज दौड़–धूप लगी रहती। उसके लिए कोई कमी न थी। यहाँ तक कि रसोईघर में आकर मंत्री महोदय कॉफी माँगते थे। सास–ससुर का कोई झंझट नहीं था। जो चाहिए वह साड़ी, शरीर भर कर गहने –"

मेरा स्वर काँप उठा। मैंने जरा कटु होकर कहा, "आप अच्छी तरह जानते हैं कि वह क्यों मरी। अगर आप मुझसे बात

करना चाहते हैं तो सच सच कहिए।"

शंकर बाबू के हाव-भाव बदल गये। अपरिचित व्यक्ति के प्रति जो किंचित् मात्र नम्रता रहनी चाहिए, वह भी उड़ गयी। घनिष्ठता में जो घृष्ठता राहती है उसी ढंग से मुझे भी एक सभा मानकर वह मेरे सामने आ खड़ा हुआ। कनखियों से शीशे में देखते हुए किसी दूसरे से बात करने की तरह मुझसे कहने लगा।

उसकी कच्ची आयुवाली बहन गीता की तरह मुझे बात करते देखकर उसे आश्चर्य हुआ। "बिना नीति खोये भी कुछ लोग सफल होते हैं। उदाहरण के लिए आप ही को लीजिए।" कहकर फिर से अपनी गलत-सलत अंग्रेजी में उसने कहना शुरू किया।

उसकी बात से यह ध्वनित हो रहा था कि वह अंग्रेजी में बात करने की प्रैक्टिस के लिए बात कर रहा है। उसके इस कटु सत्य को मुझे सह भी लेना चाहिए।

टेबल के पीछे मंत्रीजी बैठे हैं। वहाँ एक कोने में बैठा सब देख रहा है। "उदाहरण के लिए आप! आप नहीं तो आपकी क्लास का कोई और। वहाँ आते हैं। खड़े होकर झुककर नमस्कार करते हैं। (शंकर बाबू दाँत निपोरता हुआ हाथ जोड़कर मेरे सामने खड़ा हो गया) मंत्रीजी आराम से सिर उठाते हैं। आँख से बैठने का इशारा करते हैं। तब मैं डरता-डरता बैठ जाता हूँ। (शंकर बाबू सामनेवाले सोफे पर अपराधी की भाँति सिर झुकाये दुबककर बैठता है।) अब मेरे लिए समस्या है। अंग्रेजी में बात करूँ? या फिर तेलुगु में? तेलुगु में बात करने से यह भाव निकलता है कि मंत्रीजी को अंग्रेजी नहीं आती। इसलिए मैं अंग्रेजी में शुरू
करता हूँ।

"सर, आपका नेक्सलाइटों के द्वारा पहुँचाई हानि का विश्लेषण बहुत बढ़िया था। राजनीति में डाक्टेट लेनेवाले हम जैसों की भी आप जैसी इनसाइट नहीं। (अब शंकर बाबू अपना स्वर बदलकर, 'वह स्पीच इस पूअरमैन ने लिखी है' कहकर अपनी ओर उँगली से इशारा करता है) मंत्रीजी बेशर्म होकर फूल उठते हैं। ऐनक साफ करके पहन लेते हैं। तेलुगु में ही कहते हैं, "मित्रता बनाये रखिए। मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ?" तब मैं 'हाँ' 'हूँ' करता खखारकर गला साफ करता हुआ प्रार्थना करता हूँ (शंकर बाबू ने मेरे स्वर की नकल की)। "लास्ट टाइम ही मुझे पब्लिक सर्विस कमीशन का चैयरमैन बनना था, सर। हमारे मुख्यमंत्री को बैकवर्ड लोगों में दिलचस्पी नहीं है, सर। एक भी बैकवर्ड किसी युनिवर्सिटी का वी•सी• नहीं बना। आप तो बैकवर्ड लोगों का साथ नहीं छोड़िए। आप ही पर हम लोगों का विश्वास है। इस समय पी•एस•सी• में मुझे चांस देना ही होगा, सर।"

मंत्रीजी हँसते हैं। (शंकर बाबू ने मंत्रीजी की नकल करते हुए)" आप अपनी सारी डिटेल्स हमारे पी•ए• को दे दीजिए।" कहकर विदा देने की मुद्रा में मंत्रीजी के चले जाने के बाद हाथ जोड़ता है।

"तब तो आप जैसे नीति पर चलनेवाले भी मेरे जीजा के चेंबर में जाते हैं। उस समय हमारे जीजा इस तरह बैठे रहते हैं।"

उसने अपने ब्रीफकेस से एक और चित्र निकालकर दिखाया जो मेरे लिए एक आश्चर्य की चीज थी। जीजा भी लाल सोफे पर सफेद फोन कान पर लगाये बैठे हैं। पास एक फूलों का हार रखा है। उनके माथे पर भी कुंकुम लगा है। पर उनके पीछे की दीवार पर चरखा कातते गांधीजी की फोटो लगी है। उसके जीजा भी 'चप्पंडि, चंप्पंडि' कहते होंगे। शंकर बाबू ने वह फोटो जीजा के एक्शन में रहते ही ली होगी।

"जीजा को अंग्रेजी नहीं आती। मुझे जोर से बैठ जाने को कहता है। मुझसे सारा ब्यौरा लेकर घर आकर मिलने को कहता है।" शंकर बाबू की आँखें प्रश्नार्थक रूप से उठी ः "आपको मालूम नहीं? एकदम मालूम नहीं? अगर आप इतने

मूर्ख हो तो 'गैट ऑन' कैसे होओगे। आज के जमाने में बिना पैसे चटाये कोई काम होता है क्या? बैंक स्कैम में किसका हाथ ऊपर है? आप जैसे साउथ इंडियन ब्राह्मणों का ही न। गैट ऑन, गैट ऑनर, गैट ऑनेस्ट, यही जमाने की तीन डिग्रियाँ हैं। मैं पहले ही स्तर में तड़प रहा हूँ। आप तीसरी स्टेज में पहुँच गये। मेरा जीजा भी पहुँच जाएगा। वह अपने गाँव में एक अनाथालय बनवाना चाहता है, रास्कल...."

इस प्रकार बातें करते हुए चेतना का उत्स-सा बनकर हल्का होकर वह काले शरीरवाला व्यक्ति इधर-उधर देखता लाउंज में चक्कर काटने लगा। मैं उसी को देखता गम्भीरता से बैठा था। कहावत है जो मान-मर्यादा छोड़ देता है वह भगवान के समान हो जाता है।

उस कंबख्त शनि से उसी दिन अखबार में छपी बच्ची अमीना की बात उठाकर मुझमें विद्रोह की भावना जगाकर मुझे दुर्बल क्यों बना दिया? यह मुझे उसके दफा होने के बाद पता चला। उसके दफा होने से पहले वह करूणा उत्पन्न करनेवाला किसी दूसरे व्यक्ति-सा लगा था।

"बलात्कार के कारण ही अमीना ने खाड़ी के एक बूढ़े से विवाह किया, यह तो सच है। अगर वह यही बात कोर्ट में कह देती तो उसके बाप को जरूर जेल जाना पड़ता। वह बेचारा रिक्शा-चालक था। उसके ढेर-सी बेटियाँ थीं। बाप अगर जेल चला जाता तो उनका क्या बनता? बस, वेश्या ही बनना पड़ता। शक्तिशाली ऊँची जातिवाले अमीर उसका दुख समझ नहीं सकते पर वह सरल बच्ची समझ गयी। इसलिए बेचारी ने ' मैंने ही अपनी इच्छा से इस बूढ़े से शादी की' कह दिया। असल में सैक्रीफाइज माने यही होता है। एअरपोर्ट लाउंज में बैठकर हमारे लिए और आपके लिए ऐसी बातें करना वड़ा आसान है ब्रदर। पर अमीना जैसी लड़की का अपना जीवन ही अपने परिवार के लिए त्याग देना - "

शंकर बाबू ने गंभीरता से अपना मुँह शीशे में कनखियों से देखते यह कहानी बड़े गदगद स्वर में कही। बाद में उसने मेरी आँखों से जब आँखें मिलायीं तो उसके चेहरे का रंग बदल गया। घनिष्ठता के कारण उसके पूरे दाँत उसकी मोटी-मोटी मूँछों के नीचे से झलक गये। आँखों में चंचल रसिकता झाँक गयी। बगल में बैठकर मेरे कान के पास आ गया। उसके अपने सिर में लगाये पता नहीं किस कंबख्त तेल की खुशबू से मेरी नाक फटने लगी। उसने अपना एक हाथ मेरी बाँह पर रखकर और पास खिसककर धीमें स्वर में कहा - "कुछ लड़कियों को बूढ़े ही पसंद आते हैं। आपका क्या खयाल है?" जरा रूककर मुझे ही देखते हुए 'मिस्टर' कहकर
शब्दों को चबाते हुए आँख मारी। सिगरेट सुलगाकर धुआँ निकालकर सीटी बजाता हुआ मुझे भी सिगरेट देने लगा।

वह मेरे बेटे की आयु का होगा। मुझे लगा वह एक गंदा पुराने जमाने का बूढ़ा है।

मैंने उसको लात मारकर बाहर क्यों नहीं निकाल दिया, यह सोचकर मुझे आज शर्म आती है। कहानी सुनने का कौतुहल जो मुझमें पैदा हो गया था वह शायद मुझे ही लात मारने की शक्ति रखता था, यह सोचकर मुझे ही डर लगा। किसी भी चीज को देख सकनेवाली या दिखा सकनेवाली हो सकती है। इस प्रकार मैं उसकी गलीज नजरों से घबरा रहा था। तभी याद आयीं बूढ़े एट्स की अदम्य कामुकता भरी कविताएँ। जर्जर बूढ़ा बदमाश लड़की से कहता है, पट्ठे जवान छोकरे सुख लूट तो सकते हैं पर सुख न दे सकनेवाले कामुक हैं। मेरे पास आ और देख सुख क्या है। ऐसी बातें लिखनेवाला, लार टपकानेवाला कवि मुझे असह्य लगने
लगा। तभी शंकर बाबू ने घनिष्ठता से मेरी ओर देखकर सिगरेट का कश लिया।

मेरा दुर्भाग्य यह है कि यह कहानी यहीं समाप्त नहीं हुई। लाउंज के भीतर घुसते समय शंकर बाबू किसी दुविधा में फँसा था - या फिर मुझे ही ऐसा लग रहा था।
उसकी सुनायी कहानी का सारांश यह है ः

उसके पिता की जाति का पेशा मकान बनाने की मिस्त्रीगिरी था। वह भी माँ के साथ वहीं, काम करता था। बाप की

कमाई पीने में ही उड़ जाती थी। माँ की कमाई से सबका पेट चलता था। उसीसे उसकी और उसकी बहनों की पढ़ाई चली। पिता लीवर डैमेज हो जाने से मर गया। (यह कहानी मेरे अंदर करूण रस पैदा करने के लिए शंकर बाबू ने जरा ऊँचे स्वर में ही सुनायी, आगे अपना साहस दिखाने को पीठ पीछे हाथ बाँधे खड़े होकर) शंकर बाबू ने देशसेवा की प्रेरणा अपनी जाति के मंत्रीजी से पायी। अपने बुद्धि-चातुर्य से यह उसका ब्रेन बन गया और घर के लिए आवश्यक सभी सामान मुहय्या करने लगा। जब घर की व्यवस्था सुधरने लगी तब मंत्री महोदय ने ही जरा रूचि लेकर सरोज का ब्याह अपने निजी सहायक से करा दिया। उसकी जाति में पढ़े-लिखे लोग कम होने से उसे सरोज से बढ़िया पत्नी नहीं मिल सकती थी। सरोज के लिए भी उस बास्टर्ड से बढ़िया स्थितिवाला दूसरा नहीं मिल सकता था। (यह बास्टर्ड शब्द उसी के मुँह से निकला था।)

अब शंकर बाबू एक उलझान में फँस गया था। उस बास्टर्ड की एक ही हठ है। छोटी बहन गीता से उसकी दूसरी शादी करा दो। मंत्री महोदय भी वहीं आग्रह कर रहे हैं। वे मुझे सैकिंड लाइन ऑफ लीडरशिप के लिए तैयार करना चाहते हैं न।

शंकर बाबू इस बात की चर्चा घर में उठा नहीं सकता था। माँ मंत्री और जीजा को ऐसी - ऐसी गालियाँ देती है जो कि सिर्फ उसकी ही जाति में संभव है। वह भी बीमार रहती है - हार्ट वीक है, ब्लड प्रेशर, 'डायबटीज'। पैसा क्या आकाश से बरसता है? जीजा ही दे सकते हैं। पर माँ कहती है ः उस हरामजादे की पाप की कमाई नहीं चाहिए। मैं आस-पड़ोस के घरों में चौका-बर्तन करके कमा लूँगी। गीता भी 'मैं नेल्लूर में अपनी जाति के लोगों के साथ रहकर क्रांति करूँगी' , कहती है। एकदम डरपोक है, रात को माँ के साथ ही सोती है। पर कॉलेज में उसकी संगति ठीक नहीं, बस।

"जीजा भी इंतजार करते-करते थक गया। मुझे भी 'घर में पाँव मत रखना' कह दिया था। उस हरामजादे करप्ट मंत्री ने भी मुझसे बात करना बंद कर दिया था।" कल सुबह शंकर बाबू मान-मर्यादा ताक पर रखकर जीजा के पास बँगले में गया। जीजा पूजा कर रहा था। बास्टर्ड पूजा किये बिना कॉफी भी नहीं पीता। शंकर बाबू धीरे से सीधा रसोई में गया। उसकी पसंद की फिल्टर कॉफी तैयार करके इंतजार करने लगा। कॉफी बनाने में सरोज पारंगत थी। हर बात में ब्राह्मणों जैसी। बास्टर्ड जीजा कुंकुम चंदन लगाकर अपनी हर रोज की कलेक्शन के लिए चमचमाती पेंट-बुशशर्ट पहनकर तैयार हो गया। स्टेनलेस स्टील के गिलास में मैंने महकती कॉफी सोफे के सामने तैयार करके रखी थी। उसने रोते से स्वर में पूछा, "गीता मान गयी क्या? मंत्री मुझे डिसमिस कर देंगे। उनकी तो एक ही जिद है।" शंकर बाबू ने माँ की बीमारी बताकर आँसू गिराए। (मेरी सहानुभूति पाने को शंकर बाबू अपने और जीजा दोनों के हाव-भाव दिखा रहा होगा - यह शक मेरे मन से हटा नहीं)

"गीता मान जाएगी। उसे हमारे मंत्रीजी के क्रांतिकारी विचारों में विश्वास है।" इस प्रकार शंकर बाबू ने रील छोड़ी। माँ की दवा-दारू के बहाने उस कंजूस से एक हजार रूपये ऐंठें। वह नये-नये ताजा नोटों की गड्डी थी। (ब्लैक मनी बड़ा शुभ होता है ब्रदर" कहकर एक हँसी की फुलझड़ी छोड़ता आगे चल दिया।)

उस दिन पूरे समय हैदराबाद के स्लमों में घूम-घूमकर जो काम करना था, किया। उसकी बात सुननेवाला एक दल है। नेक्सलाइट भला क्या खाकर इनके सामने टेरर पैदा करेंगे? गीता ओर उसके दोस्तों को डराने-धमकाने का प्लान उस दल को बताकर शाम को घर गया। माँ रसोई में खाँसती हुई दूध गरम कर रही थी। दूध स्टोव पर रखा था। गीता कुछ पढ़ती हुई नोट बना रही थी। सदा की तरह उसके बाल बिखरे थे और साड़ी फटी हुई थी।

"माँ" कहकर उसने पुकारा। फिर धीरे से बोला ः "यह लो एक हजार हैं। ये तुम्हारे ट्रीटमेंट के लिए हैं, जीजा ने दिये हैं। गीता को मनवा लो कहा है।" यह कहकर शंकर बाबू चुप खड़ा हो गया।

पर एकदम से वह बिखरे बालोंवाली गीता उठ खड़ी हुई। वह चंडी-सी दीख रही थी। बड़े भाई के हाथ से हजार की गड्डी छीन ली। आँधी की तरह स्टोव की ओर बढ़ी। खाली हाथों से ही उबलते दूध का पतीला उतारकर पटका और

नोटों की गड्डी जलते स्टोव पर रख दी।

यह सब सुनाते समय शंकर बाबू मुझे वास्तव में दिग्भ्रांत–सा दीखा। पूरे दिन मजदूरी करने पर भी माँ को दस रूपये मजदूरी नहीं मिलती। पैसा–पैसा जोड़कर बाप से छीन–झपटकर कुछ पैसे ले लेती। पर ऐसी माँ भी नोटों की उस गड्डी में आग लगते देखकर चुप थी। गीता उस गड्डी को ऐसे देख रही थी मानो उस गड्डी के साथ भाई को भी जला डालेगी। दोनों हाथ जमीन पर टिकाये माँ चुपचाप बिलख रही थी। बुढ़िया का दिमाग खराब हो गया था। पहले तो शंकर बाबू हक्का–बक्का रह गया। पर सह न सका। स्टोव को लात मारकर उसने जलाती हुई नोटों की गड्डी को खाली हाथों से झपट लिया और पोचे से लपट खा गये नोटों को पोंछ जेब में डाल लिया।

वह अपने को रोक न सका। वहीं सब्जी काटने का हँसिया रखा था, उसे उठाकर गीता का झोंटा पकड़कर उसकी गर्दन पर वार करने को बढ़ा। पता नहीं तब गीता में कहाँ से शक्ति आ गयी। उसने भाई को लात मारी। हँसिया छीनकर उसे मारने उद्यत हुई। माँ ने 'अरे' कहकर उसके हाथ से हँसिया छीन लिया। और अपने सिर पर मारना शुरू कर दिया। वह झगड़ा पड़ोस के ब्राह्मण को सुनाई दिया। गीता इतने से ही चुप नहीं रही। झाड़ू लेकर उसे मारती हुई घर से बाहर ढकेल दिया।

शंकर बाबू को पता नहीं क्या सूझा कि उसने कुछ सोचते हुए झट से झुलसी नोटों की गड्डी जेब से बाहर निकालकर पूछा, "बैंकवाले इन्हें बदल देंगे न?" बाद में उसने अपनी कहानी आगे बढ़ायी।

शंकर बाबू अपनी पार्टी के दफ्तर में जाकर 'दी वीक' और 'संडे' के पुराने अंक पढ़ता रहा। सुबह तक सब शांत हो जाएगा, सोचकर घर पहुँचा।

दरवाजा खुला था। माँ मरी–सी मुँह ढाँपे पड़ी थी। "गीता कहाँ है?" इसने पूछा। माँ से कोई उत्तर न मिला। इसने माँ के मुँह का पल्ला हटाया। माँ को हिलाया। उसने आँखें खोली। इसने डाँटकर पूछा, "गीता कहाँ है?" उसने तब भी उत्तर न दिया। वह हिली–डुली भी नहीं। अपने आप आँखें खोल और बंद कर रही थी। "तुम्हें इस तरह मरने की हालत में छोड़कर वह लोफर, छिनालपना करने कहाँ गयी है?" कहते हुए इसने दीवार से सिर दे मारा। तब भी माँ ने होठ न खोले। वह बाल बिखरे मुनि जैसे हो उठी थी।

शंकर बाबू को लगा कि उसका एक चैप्टर खतम हो गया। उसने निश्चय किया कि आगे से उस लोफर मंत्री से बात नहीं करेंगे और उस बास्टर्ड जीजा के पास भी नहीं जाएगा। अब उसके पास एक ही उपाय बचा था। "मंत्री का 'राइवल' एक और इनकी ही जाति का है। उसे पोटेंशियल राइवल कहना चाहिए। वह ग्रेनाइट मर्चेंट हैं। वह तेलुगु–देशम का सिंपेथाइजर भी है। बहुत पैसेवाला है। उसे मेरे जैसे युवकों की सहायता चाहिए थी। समझ में नहीं आ रहा था कि उसे कैसे इम्प्रैस किया जाय। इसीलिए आपसे ये फोटो खिंचवायी।"

शंकर बाबू के भविष्य की कहानी सुनाने का उत्साह मुझमें बचा नहीं था। उसकी बतायी हर बात एक से दूसरी गुथी हुई–सी लगी। मेरे एकमुखी होने पर भी, वह अनेक चेहरे लिये मेरे सामने आया।

आगे चलकर वह कुआँ खुदवा सकता है, साड़ियाँ बँटवा सकता है, मकान बँटवा सकता है, पेड़ लगवा सकता है, इतिहास में अपने नाम की एक छोटी–सी चेंपी लगवा सकता है।

अपने क्षेत्र को सुदृढ़ करने के लिए स्लम के लोगों का जीना हराम कर सकता है। यही बाल – बच्चेदार किसी दूसरे की झोंपड़ी में आग लगा सकते हैं। उस घास की झोंपड़ी में सोया बच्चा आग में भुन भी सकता है।

कुछ दिन बाद एक ठंडी सुबह मफलर–सा लपेटे वाकिंग जानेवाला एक सद्गृहस्थ कह रहा था ः "छि, बेचारे!.... पर

इतना न होता तो इन कंबख्तों की अकल ठिकाने कैसे लगती! अब देखो कैसे ठंडे पड़ गये हैं।" इतिहास में यह सब अनिवार्य है।

स्मृति के सुखद झरोखों में झांकें तो हिटलर अपनी माँ से बहुत प्यार करता था। पत्नी के मरते समय स्टालिन दुख में अकेला पड़ गया था। उसने उस मध्यरात्रि के बहुत बड़े भोज में पैपर के स्वादवाली वोदका को 'थम्सअप' कहकए गटागट पीने के बाद मूँछें पोंछ ली थीं। उसने ही अच्छी तरह खिला-पिलाकर अचार के मर्तबान से दीखनेवाले ख्रश्चेव को भालू की तरह नचाया था। वह कभी-कभी अपने लाल सैनिकों के साहस की बातें याद आने पर रो देता था। महान दुष्ट राजा चिक्कवीर राजेन्द्र ने भी बुढ़िया से पूछा था, "दादी, मैंने तुम्हारे किस कान में बचपन में मूता था?"

या फिर उत्कट प्रार्थना करके जो अपेक्षा होती है, उससे मिलनेवाला आश्चर्य भविष्य के चरित्र में जिसे हम घास समझते हैं, वह भी दूर्वा बन सकती है। शंकर बाबू भी एक साँझ अपनी ढलती आयु में अकेला बैठकर जब सोच में डूबेगा, तब उसे उसका उधम दिखाई दे पाएगा। तब गीता का नोटों की गड्डी को जलते स्टोव पर रखना, और माँ का चुपचाप उसे निहारना और स्वयं उसका हैरान होना, गुस्से की आग में ताजे नोटों के झुलसते समय विकसित प्रेम का भी शुद्ध हो जाना, सरोज का मरकर इन सबको जागृत कर देना यह सब याद आ सकता है।

अब शंकर बाबू जागृत हो धारदार बर्छी की तरह दिखाई देता-सा लगा। मुझे देखकर वह आत्मीयता से हँस रहा था। शीशे के सामने खड़े हो उसने बाल सँवारे। उत्साह का उत्स बन वह आंध्र के पक्षों का बलाबल और अपने लोगों की मूर्ख ता का विश्लेषण करने लगा।

"मुझे एक विद्यारण्य मिल जाय तो मैं एक राज्य का निर्माण कर सकता हूँ सर। मैं इस तरह हारनेवाला आदमी नहीं हूँ।" कहकर वह ब्रीफकेस लेकर उठ खड़ा हुआ और मुझे 'गुडलक' कहकर चला गया।

ओ रे चुरुंगन मेरे — मीना काकोडकर

मां की मौत के दो दिन गुज़रे थे। उसकी याद में मुझे बार-बार रोना आ रहा था। पिताजी दिन-रात सिर पर हाथ रखे कोने में बैठे रहते। उन्हें देख कर तो मुझे मां की याद और भी सताती थी। हर रात मां मुझे बगल में ले कर सोती थी। इन दो रातों में सुरंग मुझे अपनी झोंपड़ी में ले गई थी। उसके बगल में मैं पिल्ले जैसा सुस्ता गया था। पर आज पिताजी ने मेरा बिछौना अपनी झोंपड़ी में ही लगा दिया। जब सुरंग मुझे लेने आई तो उन्होंने कहा, "सोने दो उसे यहीं पर। मुझ अकेले को खाली झोंपड़ी खाने को दौड़ती है।"

सुरंग के पास जाने के लिए मेरा जी तरस रहा था। फिर भी मैं चुप रहा। रात को अकेले ही बिछौने पर लेटा और मुझे रुलाई आ गई। अंधेरे में हाथ लंबा कर के मैंने योंही इधर उधर टटोल कर देखा, मां नहीं थी। कम से कम पिताजी तो मुझे अपनी बगल में सुला लें, इस आशा से पिताजी को पुकारने के लिए मैंने मुंह खोला। पर मुझे उनके रोने की सी आवाज़ आई। उन्हें भी मां की याद आती होगी, यह सोच कर मैं हिचक-हिचक कर रोने लगा। मांऽऽ ऐसा आक्रोश कर के मैं धम्म से पिताजी के बिछौने पर आ धमका। उन्होंने मुझे कस के गले लगाया। मैंने भी उन्हें बांहों में जकड़ा। उनके आंसू मेरे गालों पर टपकने लगे। वे मुझे सहलाते रहे। जैसे कि मेरी मां सहलाती थी।

दूसरे दिन मौसी आई। आते ही मुझे गले लगा कर रोने लगी। उनकी गोद में मुंह छुपाए मैं भी रोने लगा। मौसी के कपड़ों से फूलों की सी खुशबू आ रही थी। मां के कपड़ों से हमेशा धुएं की गंध आती थी। पर मेरा मन चाहा कि मौसी के कपड़ों से धुएं की ही गंध आती तो कितना अच्छा होता!

उनको समय पर बुलावा नहीं भेजा इसलिए मौसी पिताजी से बहुत गुस्सा कर रही थी। मां की याद कर-कर के उनका मुंह भी लाल हो गया। मौसी ज़रा भी मां जैसी नहीं दिखती। मेरी मां सांवली थी, तो मौसी थी गोरी।

दोपहर के वक्त मौसी ने पिताजी से कहा, "मैं रघू को अपने घर ले जाती हूं। इधर उसकी परवरिश ठीक से नहीं होगी।
पिताजी चुप रहे।
"तुम्हारे काम पर जाने के बाद वह अकेला पड़ जाएगा। उसके खान-पान का क्या होगा?"
पिताजी ने मेरी तरफ़ देखा।
"अगर उसको भेजा तो मुझसे अकेले में दिन कैसे काटे जाएंगे?"
"तुम मर्द हो। काम शुरू करते ही सब कुछ भूल जाओगे। ये बेचारा मुसीबत का मारा हो जाएगा।"
मैं बैठकर दोनों के मुंह ताकता रहा। मैं जाना भी चाहता था और नहीं जाना भी। आख़िर पिताजी ने मेरी दो कमीज़ें, पतलून थैले में रख दिए और बोले, "रघू, तू अपनी मौसी के साथ जा।"

जब उन्होंने 'जा' कहा तब न जाने को मेरा जी चाहा। पिताजी मुझे बहुत लाड़ करते थे। मुझे साथ लेकर वे कई बार छोटे पुल पर मछली पकड़ने जाया करते थे। तब हमारी लाई गई मछली मां अच्छी तरह आग में सेंकती थीं। शनिवार के दिन चौराहे पर बड़ा बाज़ार भरता था। पिताजी उधर छोटी-बड़ी रस्सियां बेचने बैठते थे। मैं भी उनके साथ बैठता था। धूप तेज़ होने पर पिताजी छाता खोलते थे और हम बड़ी अकड़ के साथ उसके नीचे बैठते थे। उधर पिताजी मुझे चने, मूंगफल्ली वग़ैरह देते थे।

आज भी शनिवार था। मगर पिताजी नहीं गए। मां के जाने के बाद से पिताजी बदल ही चुके हैं। मेरा तो बिल्कुल दम घुटता है।
"पिताजी, आप भी आइए ना!"
"पगला! पहले तू जा।"
"आप कब आएंगे?"
"आऊंगा।"
"पर कब?"
"आऊंगा एक दिन।"
"जल्दी ही आ जाइए।"
पिताजी कुछ नहीं बोले।
"जल्दी आएंगे न?" मैंने फिर से दुहराया। उन्होंने सिर हिला दिया।

मौसी की अंगुली पकड़ कर मैं झोंपड़ी से बाहर आया। पिताजी दरवाज़े तक आए। जुवांव की शराब की दूकान के पास पहुंचने तक मैंने बार-बार मुड़-मुड़ कर देखा। पिताजी वहीं खड़े थे। उत्तम की दूकान के बाद अब झोंपड़ी दिखाई नहीं दे रही थी। पिताजी भी ओझल हो गए। मौसी की अंगुली छोड़ कर पिताजी तक दौड़ने को मन चाहा। मैंने मौसी की अंगुली छोड़ी भी पर मौसी ने ही मेरा हाथ मज़बूती से पकड़ लिया।
"रघू, तुम सयाने लड़के हो। है ना?"
मैंने गर्दन हिलाई और चुपचाप उनके साथ चलता रहा।
"हम बस में बैठ कर जाएंगे।"
"बस में बैठकर?"
"हां...।"

पिताजी, मां और मैं एक बार मेले में गए थे। तब बस से ही गए थे। आज फिर से बस की मुलायम सीटों पर बैठने को मिलेगा, यह सोच कर मैं खुश हो गया और मौसी की अंगुली कस कर पकड़ ली।

मौसी का घर हमारी झोंपड़ी से बड़ा था। सफ़ेद चूने से पुता। उस रात बेहद बारिश हुई। पर ज़रा भी चुआ नहीं। हमारी झोंपड़ी में जगह-जगह पानी चूता था। सब जगह बर्तन रखते-रखते मां ऊब जाती थी। अगर ज़्यादा ही चूने लगे, तो पिताजी सीढ़ी पर चढ़ कर छत की मरम्मत करने लगते और मां या मैं चिमनी का प्रकाश दिखा कर, "इधर चूता है... उधर चूता है" ऐसा बताते।

आज अगर छत चूने लगे, तो पिताजी को दिया कौन दिखाएगा? मौसी की बगल में सोते हुए ये विचार मेरे दिमाग़ में आ रहे थे।
"मौसी... ।" मैंने पुकारा।
"चुपचाप सो जाओ।" मौसी ने मेरी पकड़ और भी मज़बूत कर ली और मुझे थपथपाने लगी। उस की साड़ी की गंध मेरी नाक में घुसी। मां की बगल में सोते हुए धुएं की अच्छी सी गंध आती थी। सुरंग की साड़ी से भी वही खुशबू आती है, जैसी कि मां की साड़ी से आती थी। उस गंध का चिंतन करते हुए मैं मौसी की बगल में घुसा।

मौसी ने मुझे वहां की पाठशाला में पढ़ने भेजा। मेरा पहले वाला स्कूल इससे बेहतर था। स्कूल के सामने ही बरगद का पेड़ था। उसकी जटाओं को पकड़ कर हम इधर से उधर झूलते थे। वैसे तो इस स्कूल के रास्ते पर भी एक इमली का पेड़ था। ढ़ेर सारी इमलियां मिलती थीं। जेब भर कर इमली लेते समय मुझे शिरी और बेंदित की याद आती थी।

हमारी झोंपड़ी के पास एक नाला था। हम कई बार नाले पर जाते थे। डुबुक-डुबुक कर के डुबकियां लगा कर नहाते थे। मौसी के घर के पास नाला नहीं था, कुआं था। मौसी सुर-सुर कर रस्सी खींच के गागर से कुएं का पानी निकाल कर मेरे सर पर उंडेल देती। पूरे बदन में साबुन लगाती। घर पर मैं अकेला ही नहा लेता था। मैंने मां को कभी मुझे नहलाने नहीं दिया। मैं क्या अब नन्हा सा बच्चा था? पर मौसी सुने तब न! मुझे गुस्सा आता था।

"आठ बरस का घोड़ा, पर कौए जैसा नहाता है! गंदा कहीं का।" ऐसा कह कर मौसी मुझे साबुन रगड़ती थी। आंखों में झाग जा कर मेरी आंखें भी जलने लगती थीं। मुझे लगता था कि मैं मौसी को भींच लूं। पर मैं कुछ नहीं करता था। बेचारी मां को मैंने कई बार भींचा था।

पिताजी के साथ कभी-कभी मैं भी नदी पर जाता था। तब हम दोनों कंकड़ ले कर एक दूसरे की पीठ मलते थे। उस याद से पिताजी के पास जाने को मेरा मन ललचाया। जब मौसी मेरे गीले बाल पोंछने लगती, तब मैं आंखें बंद कर के वही सोचता रहता।

मौसी की कोई संतान नहीं थी। मौसी, मौसा और उसकी मां इतने ही लोग वहां रहते थे। पड़ोस में भी मेरी उम्र की कोई लड़का नहीं था। जो बड़े थे, वे मुझे अपने खेल में शरीक होने नहीं देते थे। मैं बहुत ऊब जाता था। तब मौसी अपना काम छोड़ कर मेरे साथ खेलती थी। मौसी, अंटों से खेलना नहीं जानती थी। लेकिन पांच कंकड़ वाला खेल वह बहुत ही अच्छा खेलती थी। पिट्ट-पिट्ट कर के कंकड़ पकड़ती थी। मौसी के पास बहुत-बहुत गजगे थे। मौसी के साथ खेलने में बहुत मज़ा आता था। मैं ठगा भी लूं, तो मौसी की समझ में कुछ नहीं आता था। जब पूरे अंटे मेरे हो जाते, तब वह मुझे गोद में बिठाकर, "बड़ा होशियार है मेरा राजा बेटा!" ऐसा कह कर हंसती थी।

जब मैं स्कूल जाने निकलता तब मौसी आंगन में खड़ी रह कर मुझे देखती थी।
"ठीक से जाओ... ।"
"हां मौसी... ।"

इमली के आकर्षण से मेरे कदम जल्दी–जल्दी पड़ते थे। मौसी के घर के सामने वाली सड़क सीधी जाती है। बाद में मोड़ पर एक आम का पेड़ है। उधर पहुंचने तक मैं रोज़ पीछे मुड़ कर देखता था और मौसी को हाथ हिला कर जो दौड़ लगाता था, तो एकदम इमली के पेड़ के नीचे। मेरे हाथ हिलाने तक मौसी आंगन में ही खड़ी रहती थी। एक बार मैं हाथ हिलाना भूल गया, तो मौसी को एकदम बुरा लगा। स्कूल से जब मैं लौटा तो कहने लगी–
"रघू, आज तूने पीछे मुड़ कर देखा ही नहीं।"
"कब मौसी?"
"स्कूल जाते वक़्त।"
"भूल गया।"
"ऐसे कैसे भूल गया? तुझे तो मुझसे अपनापन ही नहीं है। मैं ही तुझ पर जान देती हूं...।" मौसी की आंखें भर आई। मुझे बहुत बुरा लगा। पीछे मुड़ कर नहीं देखा तो इसमें मौसी को इतना दुखी होने की क्या बात थी, यही मैं सोचता रहा। पर उस दिन से आम के पेड़ के पास पहुंचते ही मैं बिना भूले पीछे मुड़ कर देखने लगा।

रात को मौसी मुझे कहानी सुनाती थी। उस रात उसने मुझे चुरुंगन की कहानी सुनाई।
"एक था चिरुंगन। एकदम नन्हा सा। एक दिन उसकी मां मर गई। चिरुंगन घोंसले में अकेला रह गया। चिरुंगन की एक मौसी थी। उसने बड़ी ममता से उसे अपने पंखों तले सहारा दिया। उसे प्यार दिया। पाला...पोसा...।
मैंने मौसी से पूछा, "मौसी उस चिरुंगन की मौसी के अपने बच्चे नहीं थे क्या?"
"नहीं बाबा, वह मुई थी बड़ी बदनसीब!"
"तब...।"
"चिरुंगन की मौसी उसका पालन पोषण करने लगी। मौसी उसे बहुत प्यार करती थी। वह उसे अपना ही बच्चा समझती थी। मौसी ने उसे उड़ना सीखाया। बच्चे ने पंख फैलाए। वह अकड़ से उड़ने लगा। मौसी खुशी से फूली न समाई। एक दिन चिरुंगन घोंसले से बाहर निकला। उड़ कर दूर–दूर चला गया। मौसी चिरुंगन को भूल न सकी। वह उसकी राह देखती रही। कहने लगी –
"ओऽरे चिरुंगन मेरे,
कब आएगा तू?
प्यार करती हूं तुम से मैं
पर भूल गया रे तू!"
...और उस चिरुंगन की याद में मौसी घोंसले में रोती रहती थी।
कहानी सुनाते–सुनाते मौसी खुद ही रोने लगी। उसका रोना देख कर मैं भी रोने लगा। मौसी ने मुझे गोद में लिटाया और थपथपाते हुए धीमे स्वर में वह गाने लगी।
"ओऽरे चिरुंगन मेरे..."

हमारी छमाही परीक्षा हो चुकी थी मगर पिताजी एक बार भी मौसी के घर नहीं आए। मुझे उनकी, मां की बहुत याद आती थी। रविवार के दिन कभी–कभी मैं मौसा जी के साथ बस स्टैंड पर जाया करता था। तब, शायद किसी बस से पिताजी उतरेंगे, इस आशा से मैं देखता रहता। पर पिताजी नहीं आए। मैंने उनसे कहा था, "जल्दी आना।" बहुत राह देखी और एक दिन पिताजी आ धमके। स्कूल की छुट्टियां थीं। मैं अकेला ही आंगन में अंटों से खेल रहा था। सामने कोई खड़ा रहा। ऊपर देखा तो पिताजी! मैंने अंटे फेंक दिए और पिताजी की कमर में बाहें डाल दीं।

"मौसी पिताजी आ गए..।"
पिताजी ने मुझे कस कर पकड़ा। मेरा चेहरा खुशी से खिल उठा।
मौसी बाहर आई।
चाय पीते वक्त पिताजी ने कहा, "रघू को लेने आया हूं...।"
मौसी के हाथ का सूप ज़मीन पर गिरा। उस में से चावल सब जगह बिख़र गए। मौसी बिल्कुल गई बीती। सूप भी ठीक तरह पकड़ना नहीं जानती।

"तुम काम पर निकलोगे। रघू अकेला रह जाएगा। उसका क्या होगा?"
"वह अकेला नही होगा।"
"नहीं कैसे?"
"मैंने दूसरी शादी की है।" पिताजी ने धीरे से कहा।
"क्या? मोगरू के चल बसे छः महीने भी नहीं बीते, और तुमने... ।"
"क्या करता? दुनिया में रहना तो है न? बड़ी मुसीबत में था। आख़िर रघू को भी कितने दिन यहां रखता?" मौसी का चेहरा तमतमा गया।
"रघू का नाम मत लेना। उसे वहां ले जा कर क्या सौतेली मां के मुंह में दोगे? मैं उसे कभी नहीं भेजने वाली।"

मौसी गुस्से से बोलने लगी। मैं दोनों के मुंह ताकता रहा। सौतेली मां? मौसी ने मुझे सौतेली मां की बहुत कहानियां कही थीं। सब सौतेली मांएं बुरी होती हैं, यह मैं जानता था। पिताजी मेरी भी सौतेली मां लाए हैं यह सोच कर मुझे रोना आया और मां की याद में मैं हिचकियों पर हिचकियां भरता रहा।
"रघू को सौतेली मां से कुछ तकलीफ़ नहीं होगी। वह उसे प्यार ही करेगी।"
"यह तुम मुझे मत बताना। तुम अभी से कैसे जान गए?"
"वह पड़ोस में ही रहती थी। हमारे रघू को वह बहुत चाहती है।"
"कौन है वह?"
"सुरंग... ।"

सुरंग? मेरी आंखें चमक उठीं। हटो, सुरंग भी कभी सौतेली मां हो सकती है भला? वह कितनी अच्छी है! उसकी बगल में जब सोया था, तब मुझे लगा था कि जैसे मैं मां की गोद में सो गया हूं!
मैं फ़क् से हंसा। पिट्ट कर के कूद कर पिताजी के पास पहुंचा।
"पिताजी, मैं चलूंगा।"
पिताजी हंसे। मेरे बाल सहलाने लगे। मौसी चुपके से खाली सूप ले कर अंदर चली गई।
"मौसी मेरी कमीज़ किधर है?...पतलून किधर है... ?" कह कर मैं उनके पीछे दौड़ा।

मौसी रसोई घर में खड़ी थी। उनकी नाक लाल हुई थी।
"रघू, क्या तू सचमुच जाएगा?"
सचमुच याने? पगली मौसी! क्या पूछती है, जानती ही नहीं! मैंने सिर हिलाया।
"यहां तुझे अच्छा नहीं लगता?"
यहां मुझे अच्छा लगता था पर पिताजी के साथ और भी अच्छा लगेगा। मैंने मौसी से वैसा कहा।
"मैं ही पगली!" ऐसा बोलते-बोलते मौसी ने सूप में चावल डाल दिए।
"मौसी, बाहर चावल बिखरे हैं। वैसे ही पड़े हैं।"
"हां, जानती हूं..चावल बिखरे हैं।"
"मैं जमा कर लाऊं?"
"नहीं रघू, मुझसे बिखरे थे, मैं ही जमा कर लूंगी।" कह कर मौसी बाहर चली गई।

दोपहर भोजन के बाद मौसी ने मेरे कपड़े थैली में रख दिए। मेरी मनपसंद पिपरमिंट मेरी जेब में भरी। कुछ लड्डू बांध दिए।
"आएगा न कभी-कभी?"
मैंने सिर हिलाया। पिताजी के तैयार होने से पहले ही मैंने पैरों में चप्पल भी पहन लीं। मैं आंगन में आ पहुंचा। मौसी ने मुझे कस कर गले लगाया, चूम लिया। मैं शरमिंदा हुआ। पिताजी ने देखा होगा, यह सोच कर ही मैं लाल हो गया।
पिताजी का हाथ पकड़ कर मैं चलने लगा।
"...पिताजी, क्या नाले में अभी तक पानी है?"

"...पिताजी, हम छोटे पुल पर मछलियां पकड़ने जाएंगे न?"
"...सुरंग भी अभी हमारे ही साथ रहेगी?"

मैं बहुत कुछ जानना चाहता था। पिताजी हंस-हंस कर मुझे जवाब देते थे। बेंदित और शिरी को बहुत सारे समाचार सुनाने थे। जेब में से इमलियां देनी थीं। घर पहुंचने को मैं बहुत उतावला था।
खुशी-खुशी मैं बस में चढ़ा। बस चलनी शुरू हो गई। बोलते-बोलते जेब में हाथ डाला। मौसी के दिए पिपरमिंट हाथ लगे और झट से मुझे याद आया-
आम के पेड़ के पास पहुंचने पर, पीछे मुड़ कर, मौसी को हाथ हिलाना मैं भूल गया था। बिल्कुल भूल गया था... ।

आखिरी झूठ गुलाबदास ब्रोकर

कितनी सुंदर है वह? बात करने का मौका मिल जाए तो मज़ा आ जाए। नरेश घिया ने अपने आप से कहा। और बात करने के इरादे से उसने अपनी ओर बढ़ती हुई लड़की की तरफ मुसकरा-कर देखा।

उसके चेहरे पर भी मुस्कुराहट थी। वह कह रही थी, "मैं आपके पास आ ही रही थी।"
"सचमुच, मुझे बहुत खुशी हुई मिस .... "
"नंदिता मेहता।" उसने वाक्य पूरा किया।

"कल की गोष्ठी में मुझे आप का व्याख्यान बहुत पसंद आया," फिर अचानक वह आत्मविभोर हो कर बोली — "मुझे इतना पसंद आया कि मैंने सोचा अगर मैं खुद आकर आपका अभिनंदन नहीं करती हूं, तो अपनी नजरों में ही गिर जाऊंगी।"
नरेश जरा झुककर बोला, "थैंक्यू .... थैंक्यू .... थैंक्यू , मिस .... "
"नंदिता, नंदिता ..... मेहता नहीं मिस्टर घिया।"
"पर आपने गलती की न, मिस नंदिता।"
"मैंने गलती की? कौन सी?
"मेरा नाम मिस्टर घिया नहीं, नरेश है।"
"ओह, सॉरी, हां मैं अपनी खुशी ही आपके सामने व्यक्त करना चाहती थी।"

"मैं गौरवान्वित हुआ। पर क्या मैं सचमुच इतना अच्छा बोला था .....इतना अच्छा कि आपके जैसी तेजस्वी स्त्री, 'सॉरी,' कन्या को खुद चलकर आना पड़ा मुझे बधाई देने ... !"

"आप जरूर इतना ही अच्छा बोले होंगे, नहीं तो मैं इधर क्यों आती?" एक मुसकराहट उसके अधरों पर थी, "आप कैसे आदमी हैं? जैसे कि आपको पता ही न हो कि आप कितना अच्छा बोले थे।"
"सचमुच पता नहीं है मिस नंदिता। बहुत ही भुलक्कड़ हूं। पर क्या कहा था मैंने?"
"अगर यही मैं बता सकती, तो बधाई स्वीकार कर रही होती, दे न रही होती। पर वह क्या वाक्य था — "व्हॉट ग्रैमर इज लैंगुएज .... वह क्या ....क्या था?"
"हां .... हां, वह तो.... वह तो.... , " नरेश चुटकी बजाते हुए कह रहा था, "वर्ड्स आर टु थॉट व्हॉट, ग्रैमर इज टू लैंगुएज" (विचारों के लिए जो महत्व शब्दों का है, वही महत्व भाषा के लिए व्याकरण का है।) पर नंदिता जी यह उक्ति मेरी नहीं है, कहीं पढ़ी थी मैंने।"
"पढ़ी हुई ही सही, पर आपने इसका प्रयोग बहुत अच्छा किया। फिर आपकी तो आदत है कि किसी चीज का भी यश

लेना नहीं चाहते। पंडया साहब कह रहे थे .... ।"
"क्या कह रहे थे पंडया साहब? "

"यही कि नरेश बिलकुल अभिमानी नहीं है। हमारी कक्षा में कल की गोष्ठी के संदर्भ में बाते करते हुए आज ही उन्होंने कहा कि आपने कोई निबंध बहुत अच्छा लिखा था, किन्तु उसका भी यश आप लेने को तैयार न हुए।"
"मतलब?"
"मतलब आपने कोई बहुत 'ब्रिलियंट' बात लिखी थी। उसकी प्रशंसा होने पर आपने मुसकरा कर कहा था कि इसके लिए मुझे बहुत बुद्धिमान मानना गलत होगा, क्योंकि मैंने उसे कहीं पढ़ा था।

"मैंने तो केवल उसे उद्घृत कर दिया था और सच भी यही था, मिस नंदिता।"
"मिस..... विस जाने दीजिए नरेशजी, सिर्फ नंदिता ही अच्छा लगता है।"
नरेश कुछ झुका। फिर मन में गुदगुदी महसूस करते हुए बोला, "मैं झूठ नहीं कह रहा हूं। मुझे मसखरी करने की आदत है। मैंने इमानदारी से लिखा था कि परीक्षक अगर ऐसा मानेगा कि ऐसा लिखनेवाला लड़का प्रतिभावान है, तो यह उसकी भूल होगी। अकसर ऐसा भी होता है कि जो चीज परीक्षक ने न पढ़ी हो, उसे विद्यार्थी पढ़ ले और उसे परीक्षा में लिख दे, तो परीक्षक उसे होशियार समझने लगता है।"
"होशियार है तो लगेगा भी।"

इस तरह से नरेश तथा नंदिता की मित्रता गाढ़ी होती गयी, जो थोड़े ही दिनों में सारे कॉलेज की चर्चा का विषय बन गयी। कालेज में नयी आयी नंदिता अपने रूप तथा लावण्य से सबके आकर्षण का केंद्र थी। नरेश अपनी चपलता और होशियारी के लिए सब का प्रिय था ही — पर वह उस रूपवती सुंदरी का भी प्रिय हो जाए, यह किसी को भी पसन्द नहीं आया फिर भी सभी समझते थे कि यह स्वाभाविक ही है, क्यों कि नरेश जैसा प्रतिभाशाली था, वैसा ही धनवान भी था। बात-बात में वह लजाता हुआ कहता था कि बड़ौदा में उसके पिता की दो मिलें तथा चार मोटरें हैं। वहां तो बड़े राजसी ठाठ तथा लाड़-प्यार से रखा जाता है, पर उसकी इच्छा बंबई में ही पढ़ने की थी, इसलिए वह यहां चला आया है। मम्मी तो बहुत रोई थीं। पर पापा ..... इरादे के बड़े पक्के हैं। बेटा अपने आप अपनी जिंदगी संवार सके इसलिए न तो एक मोटर वहां से भेजते हैं और न मुझे यहां खरीदने देते हैं। वैसे चार में से दो तो बेकार पड़ी रहती है। एक का इस्तेमाल मम्मी करती है, एक पापा की सेवा में रहती है। जब कभी मैं वहां होता हूं, तब तीसरी मोटर भी मुझे दे दी जाती है। और मम्मी अक्सर कहती है, " तू अकेला है इसलिए तेरे हिस्से में दो दो मोटरें हैं।"

नरेश और नंदिता जब भी मिलते उनकी बातचीत का विषय मुख्यतः विदेश होता। नंदिता कहती — "मेरे पिताजी काफी वर्ष विलायत में रहें हैं इसलिए मेरा बचपन करीब-करीब वहीं बीता है। पर मेरे पापा बड़े ही सनकी है। जब मैं दस साल की हुई, तब उन्होंने अपना वहां रहने का इरादा बदल दिया। तंबू उखाड़कार इधर आये। अब वह माथेपर त्रिपुंड आंकते हैं और गीता के श्लोक बोलते रहते हैं बड़े सनकी लगते हैं।"
इतना कहकर वह जोर से खिलखिला पड़ती। तभी नरेश पूछ बैठा, "टेम्स नदी को कलकल बहते नहीं सुना है ना?"
"कैसे बहेगी बिचारी जब सारा शहर उसे घेरे हुए है।"
"तो फिर ऐसे कलकल नाद करते हुए हंसना कहां से सीखा, नंदिता? बचपन तो तुमने उसी के किनारे बिताया है न?"
"आप बड़े वैसे हैं!"
"पर तुम्हारी तरह नहीं। और मेरे पिता भी तुम्हारे पिता की तरह नहीं हैं। उनमें सनक तो बिलकुल ही नहीं। व्यापार उनका प्राण है। विलायत में भी धंधा ही करते रहे। पारंगत हो कर जब स्वदेश लौटे, तब यहां भी व्यापार ही किया और ईश्वर की कृपा से उन्हें सफलता भी खूब मिली।"
"ठीक —ठीक!" नंदिता हंस पड़ी।

"दो मिलें तथा चार मोटर गाडियों की सफलता ..... कोई खास सफलता नहीं कहलाती नरेश जी।"

"पांचवी भी आनेवाली है," नरेश ने गंभीरता से कहा, "आज ही मम्मी का पत्र आया है। उन्होंने इस बात को गुप्त रखने को कहा है।"
"यह किसे मिलेगी?"
"किसे मिलनी चाहिए?"
"तुमको," नंदिता ताली बजाती उठ खड़ी हुई, "आपको भी फायदा हो गया। मुझे भी कभी उसमें लिफ्ट दोगे ना?"
"मैं क्या कहूं, " नरेश ने असमंजस में पड़ते हुए कहा। उसकी आवाज भी धीमी पड़ गयी, "कि उसे किसी को दे सकूं, इसीलिए मम्मी का 'स्क्रू' घुमाने की कोशिश कर रहा हूं।"
"सचमुच!"

सामने रखी एक किताब की ओर संकेत करते हुए नंदिता ने नरेश से पूछा —
"तुम मार्क्स को पूरा कर चुके हो शायद। यह तो कोई दूसरी किताब लगती है?"
"यह फ्रायड की है, देखनी है?"
"भाड़ में जाय फ्रायड, मुझे तो उसका नाम भी पसंद नहीं।"
"तुम बहुत जल्दी ही ऊब जानेवाली जान पड़ती हो।"
"तो लाओ, देख लेती हूं, इसमें क्या है?"
"नहीं, नहीं, रहने दो, मेरा फ्रायड इतना गिरा हुआ नहीं है, " नरेश ने हंसते हुए कहा।
और उस पुस्तक को उसने जरा परे खिसका दिया।

"देखूं, तुम्हारा फ्रायड। उसमें क्या पढ़ने लायक है?" कहकर उसने अचानक आगे बढ़कर पुस्तक उठा ली।
"अरे! यह तो लंदन की 'गाइड-बुक' है। फ्रायड कहां हैं?"
"अरे, यह आ गयी? बदल गयी होगी। शायद, पटेल है ना, काफी दिनों से पीछे पड़ा है, लंदन के बारे में जानने के लिए। इसीलिए उसे देने के लिए लाया हूं। बेचारा फ्रायड तो मेरे कमरे में ही सो रहा होगा।"
"पर यह भी उन लोगों के लिए है जो लंदन से बिलकुल अनजान है।"
"पटेल तो अनजान ही है ना!"

"पर यह पुस्तिका तो एकदम नयी है। क्या उसी के लिए खरीदी?"
"क्या करूं मित्र है ना! और फिर क्या उसकी खरीदने की औकात है?"
"कितने उदार हो तुम!"
"उदार तो तुम हो नंदिता।"
नरेश की आवाज भाव-विभोर हो उठी। "नहीं तो मेरे जैसे को इतने स्नेह भरी मित्रता कैसे देती!"
"तुम्हारे जैसे को?" नंदिता ने भृकुटी सिकोड़ कर पूछा।

नरेश ने उसी दिन अपने पिता को पत्र में लिखा ....
"आपकी एक बात हमेशा सच होती रहती है कि मुझे परीक्षा में अच्छी डिवीजन नहीं मिलती। वैसे, यह बात सभी मानते हैं कि मेरा सामान्य ज्ञान बहुतों से अच्छा हैं। चूंकि मैं किताबी कीड़ा नहीं हूं। शायद, इसीलिए ऐसा है। यहां कोई नहीं मानेगा कि मैं वास्तव में ठूंठ हूं। इतना ठूंठ कि..... बंगाली सीखने बैठा पर लिपि इतनी टेढ़ी-मेढ़ी कि उसी में उलझ कर रह गया और उसे छोड़ बैठा, फिर भी मेरे मित्र मुझे बंगाली का पंडित मानते हैं। मुझे हंसी आती है उन पर। मां कैसी हैं? दुकान कैसी चल रही है? व्यापार मंदा ही लगता है। पिछले महीने आपने मुझे 25 रूपये कम भेजे थे। गुजारा कर रहा हूं। पिछले महिने से एक टयूशन भी मिल गयी है। आपकी कैसी तंदुरूस्ती है, उसमें मैं आपको ज्यादा मेहनत करने देना नहीं चाहता हूं।

अगले वर्ष तक मैं बी.ए. कर लूंगा। बस, इतनी ही देर है। इसके बाद मैं आपका बोझ हलका करने .... ।"
उसकी आंखें भर आयीं, हाथ रूक गया। उसे दो मिलों तथा चार मोटरों की याद हो आयी!

पत्र डाक में डालकर नरेश ने एक अजीब–सी तसल्ली महसूस की। ऐसी ही जैसी नंदिता के सान्निध्य से होती थी। यह सान्निध्य अब और ज्यादा मधुर हो गया था।

कभी–कभी कोई यह भी कह उठता था कि दोनों का विवाह हो जाए तो जान छूटे। पर विवाह कैसे हो सकता था। नरेश तो जैसे कुछ जानता–समझता ही नहीं था। 'सारी दुनिया समझती है तो फिर यह कैसे नहीं समझता?' नंदिता सोचती थी।
"कैसा भोला है।"
"तुम कुछ समझते क्यों नहीं?"
"क्या नहीं समझता?"
"जो सारी दुनिया समझती है वह।"
"कि .... "
"यह मुझसे नहीं कहा जायेगा।"
"तो किससे कहा जायेगा?"
"तुमसे, " कहकर नंदिता ने अचानक उसका हाथ थाम लिया। जो कुछ नरेश को अभी तक समझमें नहीं आया था, वह अचानक ही आ गया।
"नंदी, " वह सिर्फ इतना बोल सका।
"बोलते क्यों नहीं?"
"क्या बोलूं, तू तो बहुत भोली है।"
"भोले तो खुद हो। मन की बात कहने का साहस तक नहीं करते!" हालात ने नरेश को जैसे सावधान कर दिया हो। उसके मुख पर एक निर्णय, एक निश्चय की चमक थी, उसने कहा, कहूंगा, एक दिन जरूर कहूंगा।"

'कहूं? पर क्या कहूं? ऐसी भोली–भाली, फूल जैसी निर्दोष लड़की से, जो मुझे दो मिलों तथा चार मोटरों का मालिक और माइकेल मधुसुदन दत्त पर्यत बंगाली साहित्य का विद्वान समझती है। ऐसी श्रद्धामयी लड़की से भला क्या कहूं?' एक छोटी सी कोठरी में करवट बदलते हुए नरेश को नींद नहीं आ रही थी। अपने सहपाठियों की नजरों में उसने इस कोठरी को अपने चाचा का 'नेपियन–सी–रोड' का महल बना रखा था। किसी–किसी को तो उसने एक अट्टालिका को दूर से दिखाया तक भी था। पर चाचा का अभिमान तथा चाची की लड़ाकू वृत्ति की किलेबंदी करके उसने वहां सबका प्रवेश रोक रखा था। यह 'महल' जो हमेशा उसे गहरी नींद में सुला देता था, आज नींद के बजाय आंसुओं को उपहार दे रहा था। इस उपहार के पीछे उसको मेहनत करते हुए पिता तथा काया घिसती हुई मां दिखायी देती है। नन्हें से गांव की गंदी गलियां उभरती है।

उसमें क्या नंदिता रह सकती है? नामुमकिन, बिलकुल नामुमकिन। मैं नरेश घिया चाहे जितनी गपोड़ी होऊं, पर ऐसा अत्याचार कभी नहीं कर सकूंगा। तो कहना क्या चाहिए? नंदिता से?'

"अब तो ..... नंदी, " उसने कहना चाहा। नंदिता जैसे नींद से जागी हो। विस्मय उसके चेहरे पर था। वह सोच रही थी नरेश की इस आवाज में इतनी व्यथा क्यों हैं?
"तुमने एक दिन मुझसे कहा था कि मैं तुमसे कुछ कहूं।"
"हां, हां, " वह उत्साहपूर्वक बोाली,
"मैं तो इसी का इंतजार कर रही थी, हर रोज, हर घड़ी, हर पल।"
"मुझे तुमसे जो कहना है, वह कहूंगा, पर पहले एक सवाल पूछूं?"
"पूछो ना, नहीं क्यों?"
"तुम मेरी कितनी घनिष्ठ मित्र हो?"

"हूं ही।"
"पर फिर भी ... " नरेश अचकचाया, बोला, "क्या मैंने कभी कोई मर्यादा तोड़ी है? मैंने कभी भी तुम्हारा मित्र के अलावा किसी और तरीके से स्पर्श किया है? सच कहना।"
"नहीं किया। पर तुम ऐसे हो, इसी कारण तो, मैं क्या कहूं तुमको, "
"कैसी भोली हो, " उसने कहा —
"इतना गहरा संबंध होने पर भी मैंने ऐसा कुछ क्यों नहीं किया, इसका विचार तक तुमने नहीं किया।"
"इसमें विचार क्या करना। तुम इतने अच्छे हो कि .... ।"
"मनुष्य चाहे जितना अच्छा हो फिर भी वह ऐसा नहीं करेगा, नंदी।"
"तो फिर कौन नहीं करेगा?" नंदी ने छेड़ा।
"शादी-शुदा।" जैसे कब्र से नरेश की आवाज आयी।
"नरेश, " नंदिता चीख-सी पड़ी।
"शादी-शुदा।" नरेश ने उतने ही धीमे स्वर में दोबारा कहा। इसके पहले कि नंदिता उसे रोक कर कुछ पूछ सके, वह चला गया।

कंपन ज़रा ज़रा रजनी कुमार पंड्या

लड़के की कॉपी से एक कविता निकली। बतौर एक बाप के पढ़ने का मेरा फर्ज़। पढ़ा तो उस में किसी बेनाम लड़की के प्रति कुछ मुक्तक थे। इस जमाने में किसी को कविता बनानी नहीं पड़ती। फिल्म के गीत ही ये काम कर देते हैं। फिर भी कनक को क्या जरूरत पड़ी कविता करने की? लगता है, कुछ ज़्यादा ही डूब गया है आशिकी में। अभी तो मूंछ के चार डोरे फूटे हैं और आवाज की घांटी भी नहीं फूटी। तभी से यह? हकीकत में ज्यादा दोष लड़कियों का ही होता है। नज़र से नज़र वह मिलाए, आंखें पटपटाए और फिर सामने वाला आसामी तनिक घायल हो कि ये मायाएं दो-चार कड़े तीर उड़ा दे। फिर तो कविता, शेरोशायरी और ऐसा ही सब कुछ नरम मुलायम रूई जैसा उड़ता रहे और इसी तरह टांगागाड़ी जुड़ जाए। हमारे ज़माने में बिलकुल ऐसा नहीं था।

लड़के की कॉपी से एक पिचका हुआ फूल भी निकला। इस के अतिरिक्त तितली का एक पर, किसी ऐक्टर के हस्ताक्षर, किसी दोस्त का पता, फोन नंबर वह सब एक बारगी निकला। एक पन्ने पर गावस्कर के द्वारा किए गए रन की लिखी-काटी सूची। दूसरे पन्ने पर एस॰टी॰ के पास का नंबर और उस के नीचे भी दो बादाम जैसे दो दिलों को एक ही तीर से बींधे और भीतर से रक्त रिसता रहे ऐसी बूंदें। दरअसल यह सब उस उम्र की खासियत है यह भी सच है और यह भी सही है कि इससे कोई मुक्त नहीं।

लेकिन हमारे ज़माने में ऐसे फंडे नहीं थे। कनक ने घंटी बजाई तो मैने झटपट उसकी कॉपी बंद कर दी और सामने के शीशे में गहरा उतर गया होऊं, यूं उसके ड्रेसिंग टेबल पर ही चिपका रहा। उस ने दरवाजा खोला तो ड्रेसिंग टेबल पर पड़ी अपनी कॉपी देख कर उसे कुछ असुख-सा महसूस हुआ है यह मैं ने शीशे में देखा। लेकिन मैं भी कम नहीं। हम तो ऐसे देखते रहे गोया नोट बुक को देखा ही किसने हैं?

उसने झट से कॉपी उठाई, बगल में दबाई और जाने के लिए कदम उठाया तभी मैं शीशे से बाहर निकला, "कनक!"

वह अचकचाकर खड़ा रह गया।

"कहां चले? यूं आ के तुरंत?"
"फ्रेंड के घर", वह बोला, "पढ़ने के लिए।"
"कौन-सा फ्रेन्ड?"

मुंह पर आया सो नाम फेंक कर गच्छंती की उसकी मंशा। लेकिन हमने भी सिर के सारे के सारे सफेद बाल चुन थोड़ी न लिए थे? सब समझते हैं। लेकिन किसी को सीधा नोच कर खुला करने की अपनी आदत ही नहीं। फिर चाहे बेटा ही क्यों न हो।
"अपनी मम्मी से मिल कर जाना।"
"क्यों?"
"क्यों?"
अब क्यों और त्यों। ऐसे सवाल ही गैरज़रूरी होते हैं। यह तो वह भी समझ सकता है। मैंने 'क्यों' का जवाब दिया तो उस ने कॉपी को टेबल की दराज़ में ठूंस कर दराज़ को चाबी लगा दी और अंदर के कमरे में गया। मैं पुनः सोच में पड़ गया।

ज़माना बारीक है। किसी तीसरी के प्रेम में पड़े हुए जवान लड़के को सीधा यूं ही दूसरी को पसंद करने के लिए कहना हो तो उस के लिए भी होशियारी चाहिए, जो अपने पास न मिले। इस मामले में मुझे बीच बचाव करना चाहिए ऐसा विचार भी पैदा हो कर मर गया। विचार इसलिए मर गया कि दूर की सोचने पर यह समझ में आया कि औरतें जिस नज़ाकत से बात कर सकती है हम नहीं कर सकते। व्यापार में भले ही हम जो भी चालाकी कर लें, लेकिन ऐसे मामले में तो आखिरी फैसले पर मार ही खा जाएं। मान लो कि यह इकलौता बेटा कहे कि कॉपी में लिखी हुई इस लड़की के सिवा दूसरी नहीं चलेगी तो क्या हम सामने मुस्कुरा सकेंगे? अरे धौल-धपाट तक बात पहुंच जाए और यूं करने के बाद भी निपटे तो नहीं नहीं नहीं ही। अतः आखिर उसकी मम्मी के ज़िम्मे डाल दिया।

वह अंदर के कमरे में गया और मैं यहां वह प्रेम क्या चीज है इस सोच में पड़ गया। अपने को हुआ था या नहीं किसी दिन? याद्दाश्त पर बड़ा ज़ोर दिया, याद किया, खूब याद किया, देर लगी। पचास-साठ साल का अंतर पिछले पैरों काटें तो देर तो लगेगी ही न! न जाने कितनी बिन्दियां भाल-प्रदेश झलके-छलके और छुप गईं? शुरू-शुरू के दो-चार अफलातून थे। वे सब पंद्रह सत्रह की रही होंगी, और मैं बीसेक का, मुश्किल से।

छोटी-सी दुकान पर नौकरी करता था। कितनी पगार, लिखना यह भी तय नहीं। पढ़ सकते थे उतना भर पढ़ लिया। बाकी नौकरी तय करवा दी थी इसलिए करता था। साइकिल चलानी आती थी; यह अपनी योग्यता। इधर-उधर नज़र नहीं डालने की यह दूसरी योग्यता।

विचार यहां तक पहुंचा तभी अंदर से कनक आ गया। पीछे-पीछे उसकी मम्मी आई। ड्रेसिंग टेबल के आईने में वे दोनों मुझे दिखाई दिए कि तुरंत ही मैं, जो मन में दूर तक आगे निकल गया था, पीछे मुड़ गया। बोला, "क्यों?"
"कनक मान गया है", वह बोली, "तुम बाप-बेटे कल सवेरे निकल जाओ।"

कनक की ओर मैं ने देखा लेकिन उसने नहीं देखा। खीझ में हो तो मेरी बला से। अपने को तो वह साथ आने के लिए रेडी हो गया यही नफा था। लड़की को देखेगा फिर तो नफा ही नफा है। मनहर गोविंद की लड़की में क्या कमी है? रूप, गुण, पढ़ाई, पैसा और गठन सब कुछ है।

कनक के ना कहने का कोई कारण नहीं। एक दफा यदि उस में वह भीग गया तो फिर नोटबुक वाली बेनाम लड़की के लिए लिखी सारी कविताएं उस के नाम ट्रांसफर हो जाएं, यह बात कठिन नहीं हो सकती है।

सवेरे हम निकले तो साथ ही लेकिन वह मुझ से बिलकुल अजनबी–सा चलता रहा। उस के बगल थैले में देखा तो वही नोटबुक। तो यह बात है! कच्ची बुद्धि करीब बीस एक साल तक रहती है। अभी इसे इक्कीसवां लगा है। वरना यह कूड़ा साथ में लेने का कोई कारण? पूछा तो बोला कि मेरी इम्पॉर्टन्ट क्वेश्चन्स और श्योर सजेशन्स की नोटबुक है। रास्ते में पढ़ने के लिए रख ली है। हालांकि मैं जानता था कि अंदर कौन से क्वेश्चन्स और कौनसे सजेशन्स हैं और किस तरह के इम्पॉर्टन्ट हैं, लेकिन उसकी मम्मी के साथ मैं ने बोली की थी कि जहां तक हो सके ऐसा व्यवहार करूंगा कि मैं इस लड़के के बारे में कुछ जानता ही नहीं। वरना हो सकता है कि कहीं ऐसा हो कि इस का दिमाग फिर जाए और यह प्लेटफॉर्म से ही वापस लौट जाए!
इसलिए मैंने कहा, "अच्छा"।

बाकी लड़की जो मुझे इस वक्त याद आई वह थी परागी। उस के साथ कोई प्रेम जैसी चीज़ अपने पास नहीं मिलेगी। बात सिर्फ इतनी कि हमारे घर में मैं चौदह साल का हुआ तब से कुछ भनभन हुआ करती थी कि उस के साथ मेरी सगाई होने वाली है। उस वक्त एक दफा उसे देख लेने को मन किया था, सो ज्यों का त्यों बना रहा। मौका ढूंढ़ रहा था तभी मिल गया। एक दोस्त के बड़े भाई की साली लगती थी वह। परागी, परागी नाम उस के मुंह से बार–बार सुनता और फिर वह नाम भी ऐसा कि किसी का न हो इसलिए मैंने जब दोस्त से पूछा कि यह जो परागी परागी होता है वह मगन भगवान की लड़की तो नहीं? यदि वही हो तो जिस के साथ मेरा रिश्ता जोड़ने की बातचीत चलती है, वही है। अपने को एक बार अकेले में देखने को मिल सकती है?

एकांत में देखने को मिले इसके लिए मैं दोस्त से इतनी दफ़ा बोलता रहा कि कुछ दिन तो उसने मेरे साथ बोलना ही छोड़ दिया। उस वक्त यह हाल था। इस कनक की तरह ऐसा नहीं कि नोटबुक में कविता बविता लिखी है और तितली का पंख जुटाया है और दिल–बिल खींच कर खून–बून निकाला है। कनक नोटबुक ले कर स्टेशन पर इस तरह घूमता था जैसे मैं हड़प लेने वाला होऊं। बचकानापन ही है, उसके सिवा और क्या?
गाड़ी चलने के बाद मेरे मन में सरसराहट हुई, "अरे भई, क्या है इस में इतना कि इस कदर चिपकाए रहता है?"
पहले तो वह चौंक गया। लेकिन फिर गंभीर हो गया। बोला, "सच बताऊं पापा, इस में मेरी अपनी फ्रेन्ड पर लिखी कविताएं हैं।"
"फ्रेन्ड?" गोया मैं कुछ जानता ही नहीं। कहने की क्या जरूरत?
"गर्लफ्रेन्ड," वह आंखें नचाता हो इस अंदाज में बोला, "बड़ी स्वीट लड़की है, पापा ..."

मैंने उसकी मम्मी के साथ बोली की थी कि बात नहीं छेड़ूंगा। लेकिन अब जबकि भाई श्री खुद ही बात की गुत्थी छोड़ रहे हैं तो मुझे अपनी बोबड़ी बंद रखने की कोई वजह हो सकती है? पूछ ही डाला, "लव–बव का कोई लफड़ा तो नहीं हैं न, बेटे?"
हंस दिया वह। मंद मुस्कान से ज्यादा। बच्चे की तरह बांकी मुस्कान के साथ वह बोला, "हो भी तो क्या पापा?"
"क्यों?"
"आप मुझे उस के साथ मैरेज करने देंगे?" वह बोला, "मम्मी बता रही थी कि करने ही नहीं देंगे।"

हद हो गई इस लड़के की। ऐसा पूछा जाता है? परागी के साथ मेरी सगाई की बात करीब नब्बे प्रतिशत निश्चित थी फिर भी मैं ने कभी अपने बाप से यह पूछा था कि सगाई कब करने वाले हो? अरे, उस विचार से ही अपनी नस फट जाती और बात से बाप की नस फट जाती। वैसे मन तो यही करता कि पूछ, पूछ। क्योंकि परागी मुझे अच्छी लगती थीं। यूं तो नाम से ही अच्छी लगने लगी थी लेकिन बाद में जब एक विवाह–प्रसंग में हम आमने–सामने आ गए तभी तय कर लिया था कि शादी करनी होगी तो इस सूरत के साथ ही। बात दरअसल यूं बनी कि मैं और मेरा दोस्त चले जा रहे थे और देखा तो सामने से एक मक्खन का पिंड–सा चला आ रहा है। आसपास दो–चार सहेलियां भी थीं। लेकिन वह सबसे अलग उभर आती थी। ताज़ा–ताज़ा कमल। यूं लगे जैसे तालाब से नहा कर सीधी चली आ रही हो। मुझे देख कर क्या पता किसी सहेली ने उस के बाजू पर चुटकी ली हो या भगवान जाने; पर वह एकदम धीमी पड़ गई। सामने देखा–अनदेखा किया और पुतलियां झुक गई। उसकी सहेलियां भी कैसी कि आसपास इधर–उधर हो गई। बावरी–

बावरी सी हो कर वह आसपास देखने लगी। उस वक्त मैं ने देखा तो मेरा भी दोस्त अंतर्धान! हमें मिलाने की यह साजिश। उस का मुंह लाल-लाल हो आया। आंखों में नज़र करो तो बिलकुल तराशी हुई लगें। बार-बार पलकों के पलकने से एक पैमाने पर घूमती रहें।

मुझे खुशी, संकोच, छाती धकधक — सब एक साथ हो आया था — मुझे याद है।

वह भी खड़ी रह गई थी, वहीं पर। मैं आगे चला। उसके नज़दीक आया तो लगा गोया सुख का ढेर यहीं हैं। यहां होने का सुख यानी दुनिया भर का सब से बड़ा सुख।
"कैसी हो?" बिलकुल आहिस्ता सांस में बोलना हो, यूं मैं।
चिड़िया की चोंच की तरह गुलाबी ओठों में कुछ कंपन हुआ लेकिन कोई शब्द अंदर से फड़फड़ा कर बाहर आ पड़े उस से पहले ही बाहर यकायक शहनाई के सुर शुरू हो गए। औरतों के झुंड की इस ओर आने की पदध्वनि सुनाई दी। परागी कुछ कांप उठी और तुरंत ही सावधान हो गई।
"आप जाइए यहां से।" वह बोली, "बाद में ...बाद में मिलिए।" बोलते-बोलते उसे लगा कि कुछ महापाप हो गया हो जैसे। वह ऊपर-तले होने वाली छाती पर हाथ लगा कर बोली, "हाय मां, अब क्या होगा?"

लेकिन कुछ हुआ नहीं। मैं आगे निकल गया। थोड़ा-सा कंपन तो मुझ में भी व्याप्त गया होगा। बर्फ की तरह क्षण के सुख का गट्ठर पिघलने लगा। बाहर निकल कर जा कर देखता हूं तो समूची दुनिया ही बदल गई थी। ढोली ढोल पीट रहा था, ब्राह्मण श्लोक बोल रहे थे। औरतें बैठी-थकी आवाज में गीत गा रही थीं और गली में कोने पर जूठी पत्तलों का ढेर पड़ा था। गाय वहां खड़ी हो कर नथुने फड़का रही थी। सब कुछ बड़ा मामूली लग रहा था। मेरे मतलब का उस में कुछ नहीं था। मैं इन सबसे दूर, अलग जरा ऊपर उठ गया था। छलक-छलक हो रहा था अंदर ही अंदर। दोस्त ने आ कर पीछे से पीठ पर मुक्का लगाया। कान के पास किसी ने पटाखा फोड़ा हो, इस तरह मैं सहम गया।

ऐसा होता था उस वक्त, चालीस साल पहले। खूब याद किया तो पूरा टूकड़ा ज्यों का त्यों निकल आया।

"पापा ...", कनक से पूछा, " किस विचार में खो गए?"
"कुछ नहीं, यह तो ..." मैं ने कहा, "अपनी मैरिज की बात तुम ने खुद निकाली इसलिए सोच रहा था कि हम जिस कन्या को देखने जा रहे हैं वह यदि मन में जंचे तो फिर ज्यादा खींच तान मत करना। हां कर देना।"

उसकी मुस्कान भी मज़ाक जैसी -या मुझे ही ऐसा लगा हो। चालू गाड़ी में ज्यादा क्या कहना? वरना अपना दिमाग तेज़। कुछ नहीं बोला वह और आंखें बंद कर सोच में पड़ गया। पहली बार मुझे यह महसूस हुआ कि इसे रेज़र से रोज़-रोज़ की मूंछे उतार लेनी चाहिए। यूं तो आदमी देवदास लगे।
कुछ बात तो करनी चाहिए न? पूछा, "वह है कौन?"
हाथों की दाब और आंखें खोल कर मेरे सामने देखा, "कौन?"
"यह जो तुम बता रहे थे वही तुम्हारी गर्लफ्रेन्ड!" गलत नहीं कहा जाएगा। उस के गालों पर कुछ शर्म तो झलक आई । हमारे ज़माने में हम जिस तरह शर्म में गड़ जाते थे वैसा नहीं। हमारे ज़माने में तो अपने पिता जी के साथ ऐसे डायलॉग कभी होते ही नहीं थे। यदि डायलॉग हो सकता तो मैं ज़रूर कह देता कि हमारी परागी के साथ ही जमने दो — और आज लगता है कि कहा होता तो शायद हो भी जाता। ओहो, ओहो! तो फिर बात कहां करनी? बिल्कुल उधेड़ लिया था उसने अपने को। जहां-तहां भीड़ में मैं उसे ही चुनता फिरता। और मिले नहीं तो न मिलने के लिए उस पर खीझ भी आ जाती। एक दफा स्कूल जाती हुई लड़कियों के झुंड के पीछे-पीछे दो-तीन गलियों तक आया और उन में से लंबी झूलती चोटी वाली जो हैं वही परागी — यूं नज़र को मनाता रहा। लेकिन निकली कोई और ही। उस वक्त भी उस पर खीझ चढ़ी। उस झुंड में वह क्यों नहीं थीं? होना चाहिए न? यह बात मैंने अपने दोस्त से कही तो वह बोला कि परागी तो दूसरे स्कूल में पढ़ती है। वह इस रोड से कैसे निकलती? यह बात भला अपने को कैसे मालूम होती? मैं

काई उसे पूछने थोड़ी न गया था कि, भई तू किस स्कूल में पढ़ती है? कब जाती है? किस-किस से मिलती है? रास्ते में मैं फव्वारे के पास मिलूं तो टेढ़ी नज़रों से भी मेरे सामने देख लेगी या नहीं? लेकिन एक बार फेस टु फेस हो तो पूछूं न? जहां चेहरा ही दुबारा मुश्किल से देखने को मिला वहां दूसरी बात कैसे की जाए?'

दुबारा चेहरा देखने को मिला वह भी मुश्किल से। गुरूकुल के मैदान में गांव के तमाम स्कूलों का कोई समारंभ जैसा था। दोस्त ने बताया कि उस में परागी तो आएगी, आएगी और आएगी ही। उस में आना अनिवार्य होता है। इस संजोग का तो अपने को लाभ लेना ही है, यूं अस्सी मिनट में मन में गांठ लगा ली।
गाड़ी रूकी तो कनक ने पूछा, "पापा, आप फिर सोच में पड़ गए?"
"ना ... ना," मैं ने कहा, "यह तो ज़रा यूं ही नींद-सी लग रही थी।"

वह उतर कर नमकीन ले आया। पानी के गिलास भर लाया। हमने नाश्ता भी किया लेकिन चुपचाप। आखिर उस के मन में ही जो हलचल मची हुई थी सो उसी ने पूछा, "पापा, आप कुछ कह रहे थे न?"
"क्या?"
"कि मेरी वह स्वीट गर्ल फ्रेन्ड ..."
"तू शर्माने लगा तो मैं ने पूछना छोड़ दिया। फिर सुस्ताने लगा।"

वह आंखों में चमक भर के बोला, "उस में तो ऐसा है पापा कि चोरी नहीं। हमारा पूरा कॉलेज जानता है कि उस के लिए मुझे ऐसा है।"
मुझे कुछ याद आ गया, "लेकिन वह खुद जानती है या नहीं?"
"जानती ही होगी न?"
"जानती होगी के माने? तुम्हारी कभी बात नहीं हुई?"
"ना" वह बोला, "बात तो नहीं हुई, एक बार फेस टु फेस मिले थे उतना ही ... लेकिन उस में वह समझ नहीं सकती?"
काफी, काफी दूर से पटाखे की आवाज़ आ रही हो यूं मेरे मन में एक शब्द फूटा ः "लड़की ..."
मैं प्रकट रूप से बोला, "लड़की की जात का कुछ कहा नहीं जाता। लेकिन बात हुए बगैर किस तरह जाने? तुझे बात कर लेनी चाहिए न!' उस के बाद मेरे शब्द तड़ातड़ फूटे, "बात कर ही लेनी चाहिए — यह कोई पहले का ज़माना थोड़े ही है। आजकल तो कितना अच्छा है कि लड़के-लड़कियां साथ पढ़ते हैं ... एक दूसरे के साथ बातें करते हैं और ..."
"लेकिन ...," उसने कहा, "लड़कियां आज भी शर्माती हैं।"

बात सही होगी। परागी के साथ दो शब्द बोलने के लिए अपने राम ने जितने प्रपंच किए थे उसकी फेहरिस्त बड़ी लंबी है। स्कूल के समारोह के समय गुरूकुल के पिछले भाग में मिलने की बात मैंने मन ही मन तय कर ली थी। उस में भी एक पुराना आम का पेड़ मैंने मन ही मन सजा लिया। ज़्यादा कोई अनुमान नहीं बस इतना ही पूछना था कि, "मैं तुझे अच्छा लगता हूं?" दोस्त से कह दिया था कि तुम्हारा तो उस के घर आना-जाना है। यूं इतना मिलने का कुछ जमा दो तो उपकार। कोई न जाने ऐसे कह देना। लेकिन दोस्त भी ऐसे दिमाग का कि कहने के बाद आठ दिन तक झांक कर देखा तक नहीं। यहां मेरी जान जाती थी। परागी के स्कूल के मार्ग पर सुबह-शाम हाथ में हरकारे की डाक हो यूं खड़ा रह जाता। उसे आते-जाते देखता। उस का ध्यान जाता तो वह नीचे नज़र करके और लड़कियों के साथ निकल जाती। मुझे तो उस से इतना ही पूछना था कि, "तू तो मुझे विद्या की कसम इत्ती अच्छी लगती है कि बात नहीं, लेकिन मैं तुझे अच्छा लगता हूं?" यदि इतनी बात का जवाब 'हां' में मिले तो यह भी पूछना था कि, "हमारी सगाई की बातचीत चल रही है, वह तेरे घर में कहां तक पहुंची?"

इतनी बात करने के लिए गुरूकुल के पुराने आम के पेड़ के पास मुझ से मिलाने के लिए दोस्त से कहा था तो वह मुझे लटका कर आठवें दिन आया और बोला कि, "कह दिया है।" मैंने पूछा कि "क्या?" तो बोला कि, "उस में रिपीट क्यों करवाता है? तू ने कहा था वही कह दिया है।" मैंने पूछा कि, "हां कही या ना?" तो पूछता है, "किस बात की?" मैंने कहा कि, "मूरख, मिलने की — मिलने की हां कही या ना?' जवाब में वह बोला नहीं पर हंसोड़ की तरह,

अपने को खीझ चढ़े यूं हंस दिया। हंसते-हंसते दूर चला गया और वहां खड़े-खड़े पेन्सिल की नोक निकालने लगा। बाद के चार दिन तो कैसे गुज़रे वह मेरा मन जानता है। परागी ने मिलने की हां कही होगी या ना? लड़की की जात है। डरपोक होती है। न भी आए। हालांकि मन कहता था कि आएगी, आएगी ज़रूर।

समारोह के दिन सबेरे से गुरूकुल के पिछवाड़े के मैदान में हेरा-फेरी करता रहा। न जाने क्यों जी मचल रहा था! सेठ के पास से छुट्टी ले कर सबेरे से ही निकल गया था लेकिन यूं लगता था जैसे नौकरी में था ही नहीं। होना भी नहीं चाहिए। सब से अलग-थलग फिरता और बार-बार नज़र पुराने आम के तने के पास डोरे की तरह लिपटती रहती। ऐसा होता था। इस वक्त याद आ रहा है।

यकायक ज़ंजीर खींची गई और गाड़ी रूक कर खड़ी हो गई। बिलकुल वीराना-सा था तो भी सब नीचे उतरने लगे। कनक उतरे तो मुझे अच्छा न लगे। अतः उसे बिठाए रखने के लिए ही मैं ने पूछा, "मिले हो या नहीं किसीं दिन?"
"यूं तो एक बार एक नाटक में हमें एक साथ उतरना था।" वह बोला और फिर विचारों में बह गया। लेकिन तभी गाड़ी हिचकोले के साथ चली। कोई बोला कि किसी ने यूं ही बिना किसी वजह ज़ंजीर खींची थी। चालू गाड़ी को व्यर्थ ही हिचकोले खाने पड़े। फिर से कनक मेरे सामने देख कर बोला, "पापा, सच बताऊं? मुझे और उसे एक ही डायलॉग एक साथ बोलना था। लेकिन बात यह हुई कि वह मेरे सामने आई और मैं डायलॉग भूल गया। वह अपना डायलॉग बोल कर चली गई और मेरे बाद बोलने की जिस की बारी थी वह लड़का भी अपना डायलॉग बोल कर चला गया। में स्टेज पर रहा लेकिन कुछ बोल नहीं सका। उसी में घपला हो गया।"
"ऐसा हो जाता है, कई बार!" मैंने उसे आश्वासन देने के हिसाब से कहा।

मैं तो साढ़े पांच बजे से पुराने आम के पेड़ के पास पहुंच गया था। बेवजह पहले से ही मन में दहशत पैदा हो गई थीं कि परागी नहीं आएगी। और कमबख़्त बुरी कल्पना सच बनने के लिए हमेशा आगे दौड़ती रहती है। अपने को इस बात का खूब अनुभव है। पौने छह, पौने छह और पांच, छह में पांच कम और छह भी बज गए। झाड़ू की तरह आंखें घुमा-घुमाकर थक गया। साढ़े छह बज गए। कहीं दिखाई न दी। थोड़ी-सी ठंड, थोड़ी-थोड़ी हवा। सात बजे और आम के पत्ते खड़कने लगे। लेकिन सब कुछ खाली लग रहा था। फीका और नीरस। बिलकुल मरियल। बिलकुल रंग विहीन।

साढ़े सात बजे एक बूढ़ा आया। चपरासी के सिवा कौन हो सकता है? मुझ से पूछा, कौन है, यहां क्यों खड़ा है? मैं क्या जवाब देता? उसने मुझे मैदान से बाहर निकाल दिया। मुझे यह भरोसा करना अच्छा लगा कि यदि पौने आठ तक रहने दिया होता तो शायद परागी आ भी जाती।

निकल कर समारोह में जुड़ गया। लड़कियों का गरबा नृत्य चल रह था। एक-एक चेहरा देख लिया। कहीं परागी? कहीं परागी नहीं थी। बाहर निकला तो वह दोस्त मिल गया।

"क्यों?" उसने पूछा, "खूब राह देखी न?" फिर उपहास के अंदाज़ में बोला, "कैसे आती? आज दोपहर को उस को मामा आ कर ले गए।"

फिर पता चला कि बड़ी साज़िश चल रही थी। मामा ने अपने साले का लड़का उस के लिए तय किया था। दिखाने ले गए थे। सवाल एक ही कि बिलकुल यूं ही चली गई होगी? किसी तरह की हां-ना नहीं की होगी? फिर मुझे ही दूकान में बैठे-बैठे पुनः विचार आया कि ये सारे सवाल ही बचकाना थे। जिन का जवाब न कह 'ना' में ही आता था। पहली बात तो यह कि हमें और उसे क्या? प्रेम-व्रेम था? बात-बात हुई थी? सगाई की बात जारी थी। हुई नहीं थी, होने वाली थी। यह बात अलग है। रूबरू भी तो ज्यादा मिले नहीं थे। मामले में था कुछ? कि अंदर ही अंदर कुलबलाते रहें? यदि एकाध बार मिले होते तो भी बात व्यावहारिक लगती।

"कनक!" मुझसे अनायास कनक को पूछा गया, "उस नाटक वाले मामले के बाद तू मिला या नहीं कभी उससे?"
"नहीं मिला, मिलूंगा कभी।"

मिल लिए अब! न जाने वह 'कभी' कब आए? किसे पता? 'कभी' पचास साल के बाद भी आ सकता है। दोस्त खबर लाया था कि परागी की सगाई हो गई। सुना तब मैं जूनागढ़ के पार्सल की लिस्ट बना रहा था। उसे पूरा किए बिना उठा नहीं जा सकता था। पूरा करके पान खाने गया तभी पूरी बात सुनी। सोडा पीने का मन न जाने क्यों हो आया। सोडा अच्छी चीज़ है। उस से मुंह का फीकापन दूर हो जाता है। वह सब रास आ गया दो-तीन साल में। अपनी भी सगाई हो गई। ठाठ-बाट में पड़ गए। नौकरी का नशा दिमाग पर सवार हो गया। धंधा शुरू किया तो उसका और भी डबल स्ट्रांग नशा चढ़ा। पांच साल-सात साल-दस साल-शादी, संसार और बच्चे। पैसे पैदा किए — उसका भी नशा कुछ ऐसा-वैसा थोड़ी न रहता है!

बीच-बीच में परागी के समाचार मिल जाते थे। पति के साथ पटती नहीं थी। पीटता था खूब उसे। किस का दोष है! उसने दूसरी बीवी की, यह समाचार भी किसी ने दिया। उसका छोटा भाई मेरे पास वाली दूकान में गुमाश्तागीरी करता था। उसी ने एक दफा बताया था कि बहन घर आ गई है और अब उसे वापस भेजना नहीं हैं।

उसी शाम मैं गुरूकुल के मैदान से छोटे रास्त पर मंदिर जा रहा था। मैदान के फाटक में दाखिल होते ही दूर तक नज़र दौड़ गई। यूं भी हर रोज़ पुराने आम के पेड़ से टकराने की एक क्रमिक आदत-सी पड़ गई थी। उस दिन भी नज़र दौड़ा दी तो शाम के हलके धुंधलके में दूर से एक सफेद धब्बा-सा दिखाई दिया। ज़रा दस-पंद्रह कदम पार किए तो दिखाई पड़ा कि कोई सफेद साड़ी में आम के तने के पास पीठ करके खड़ा था। कमर के नीचे से फूली हुई कोई औरत है यह तो तुरंत समझ में आ गया था लेकिन परागी है यह तो बिलकुल पास जाने पर ही पता चला। लंबे, काले बाल कहां गए? अरे! एक छोटा-सा जूड़ा लटकता था। साड़ी सफेद, लेकिन उतर कर गर्दन तक आ गई थी इसलिए मालूम पड़ा कि अच्छी-खासी सफेदी छंट गई थी बालों पर। शरीर स्थूल। न जाने क्यों, पगडंडी की ओर पीठ करके आम के ठूंठे तने को अपलक आंखों से देखती हुई खड़ी थी। मानो उसके सामने खड़े हो कर उसका ध्यान धर रही हो। मैंने गला खंखारा तो उसने चौंक कर पीछे देखा। मुझे पहचान तो लिया होगा ऐसा लगता है, क्योंकि आंखों में ज़रा-सी ठंडी मुस्कान की फुसफुसाहट-सी हुई। लेकिन वह तो एक ही पल। फिर गंभीर हो गई।

किसी ने ज़ंजीर खींच कर गाड़ी को रोक दिया हो यूं। मैं भी रूक कर खड़ा रह गया। बोलूं। बोलूं, मन किया। पर क्या बोलूं? बोलने का सवाल ही कभी कहां पैदा हुआ था हमारे बीच? 'कैसे हो' पूछना भी नसीब नहीं हुआ। मुंह में शब्द बनते-बनते रह गया। नज़रों में पहचान जगी और फिर व्यवहार बनते-बनते रह गई। एक आध पल मैं रूका। ज़रा-सा मुंह मुस्का दिया और कंपन-सा लगा। तुरंत आगे निकल गया। कोई पीछे से धक्का मारता हो, चला रहा हो इस कदर तेज़ी से मैं चलने लगा। कोलाहल-कोलाहल-कोलाहल हो गया मन में। लेकिन रूका नहीं। समझता था कि वह सब व्यर्थ है। मन व्यर्थ ही फुफुड़-फुफुड़ होता है। जिस के साथ सिर्फ एक बार ही सगाई की बात चली थी, और एक बार 'कैसे हो?' का व्यवहार हुआ था उसके लिए भला इतना सारा कोलाहल? चलते हुए बैल को आर घोंचने का काम व्यापारी का नहीं। कितने सुखी हैं हम। घर-बार, धंधा, आबरू, नौकर-चाकर, घर सम्हाले ऐसी पत्नी, जब कहो तब कन्या देखने के लिए चल पड़े ऐसा लड़का। माल-मिल्कियत क्या नहीं है अपने पास? एक हरकारे की पेढ़ी में काम करते थे उसमें से यह सब बसाया। कितना भोगा? तब कहीं सफल हुए। ज़िंदगी में सफल हुए। कभी भी किसी चीज़ का गम अपने को रहा नहीं, डंक रहा नहीं। फिर भी यह पुराने आम के ठूंठ के पास से निकलते समय खटका क्यों होता है, क्यों? कोई कारण है भी? डंक जैसा क्यों लगता है? कारण? यूं ही।

शीघ्रता से मंदिर में जा कर एक हाथ में टोपी उतारी, ज़ोर से घंटा बजाया तो इतने ज़ोर से बजा कि सब विस्मय से देखते रह गए। कानों में घंटी की कंपन हुई तो ज़ोर से आंखें बंद कर के भगवान की स्तुति में ओंठ फड़फड़ाने लगे। फिर पीछे हारमोनियम ले कर भजन गाने के लिए बैठे हुए भगत से कहा, "आप अपना चालू कीजिए।" मैं कुछ कांप उठा था। ऐसा हुआ था तब।

"कनक!" विचारों से बाहर निकल कर मैं ने कहा, "हम जब तुम्हारी उम्र के थे तो हमें भी किसी के साथ बात करना अच्छा लगता था इसकी ना नहीं, लेकिन यूं पढ़ाई या धंधे की बलि दे कर तो कुछ भी नहीं; समझे!'

मुझे लगता है, आजकल के लड़के उलटी खोपड़ी के होते हैं। एक कान से सुन कर तत्काल दूसरे कान से निकाल दें। कनक भी उन से अलग नहीं। इतना-इतना कहने के बावजूद वह चालू गाड़ी में उस नोटबुक को निकाल कर पढ़ने लगा। क्या कहना? जैसे ही उसने कॉपी खोली कि भीतर से तितली का कटा हुआ पंख नीचे सरक गया और हवा के थपेड़े के साथ खिड़की से बाहर उड़ गया। वह खड़ा हो गया और आंखें फाड़ फाड़ कर खिड़की से बाहर झांकने लगा।

न जाने क्या सूझा कि मैंने भी उठकर खिड़की से बाहर गर्दन निकाल कर देखा। लेकिन सरपट भागती गाड़ी के बाहर उड़ जाने वाली पंख जैसी चीज़ यूं भला फिर से देखने को मिल सकती है? वह तो गई सो गई ही। मैं भी लड़के के साथ लड़का हो गया सो देखने को मन हुआ। वरना ऐसे कंपन की मैं भला परवाह क्यों करू?

कल कहां जाओगी पदमा सचदेव

सुबह की पहली किरण की तरह वो मेरे आँगन में छन्न से उतरी थी। उतरते ही टूटकर बिखर गयी थी। और उसके बिखरते ही सारे आँगन में पीली-सी चमकदार रोशनी कोने-कोने तक फैल गयी थी। खिलखिलाकर जब वो सिमटती तो रोशनी का एक घना बिंदु आँगन के बीचोबीच लरजने लगता और उसकी बेबाक हँसी से आँगन के जूही के फूल खुलकर अपनी खुशबू बिखेरने लगते। उसका नाम था प्रीत। मैं उसे प्रीतो कहती थी।

हुआ यूँ कि मेरी एक बड़ी पुरानी सहेली अपने घर जा रही थी। मेरे पति विदेश गये थे। घर वैसे भी काटने को दौड़ रहा था। सो जब मेरी सहेली ने ये प्रस्ताव रखा कि प्रीतो को कुछ दिन मैं घर में रख लूँ तो मैंने फौरन हाँ कर दी। मेरी सहेली का दायाँ हाथ थी प्रीतो, ये मैं जानती थी। उसके किंडर गार्डन स्कूल के बच्चे उसे तीतो कहकर स्कूल में घुसते और फिर वो उनकी प्रीत आँटी हो जाती।

प्रीतो को प्रीत कहलवाने का शौक था। स्कूल से लेकर तकिये के गिलाफ तक का काम प्रीतो के सुपुर्द था। पर जब छुट्टियों में मैडम घर जाने लगी तो प्रीतो को साथ ले जाना उसकी बनिया बुद्धि को ठीक न लगा।

मेरी ये सहेली बचपन से ही दबंग थी। एक बार गोलगप्पे वाले से उसका झगड़ा हुआ और मैडम की चप्पल की मार से वो भाग गया था। तब हम सब गोलगप्पों के खोमचे पर टूट पड़ने को ही थे कि मैडम खोमचे वाले की जगह बैठकर प्लेटें सजा-सजा कर सबको देने लगी। आनन-फानन में गोलगप्पे हवा हो गये। तब उसने इमली के पानी की तुर्शी से सी-सी करते हुए बताया, "मुआ मुझ अकेली को देखकर आँख मार रहा था। मैंने देसी जूती से वो पिटाई की कि भाग गया।" तब से हम उसे मैडम ही कहते थे। उसका असली नाम भूल ही गये। पर मैडम को कोई न भूला सका। उसके प्रस्ताव पर मैं थोड़ी नाखुश भी थी पर सोचा प्रीतो की रौनक रहेगी। दो दिन पहले ही मैडम प्रीतो को लेकर मेर घर आ गयी थी। उसको कई किस्म के भाषण पिलाने के बाद जब मैडम ट्रेन पर बैठी तो प्रीतो जो उसका राई-रत्ती सँभालकर देती रही थी, थककर चूर हो चुकी थी।

आते ही जब दो सैरीडौन खाकर वो सो गयी तो मैंने भी उससे कुछ पूछना ठीक न समझा। दूसरे दिन अभी सुबह न हुई थी पर घर में चहलकदमी की अपरिचित आवाजें आनी शुरू हो गयी थीं। उन्हें तो मैं किसी तरह से सहती ही पर जब बाथरूम का पानी धुआँधार बहने की आवाज आयी तो हिम्मत ने जवाब दे दिया। लोहे की बाल्टी में पूरे खुले नल के

गिरते पानी से अधिक शोर शायद कोई नहीं कर सकता। बिस्तर में आँखें मीचे-मीचे मैं जोर से चिल्लायी -
"प्री .... तो ... "
"जी मैडम," वो जैसे सर पर ही खड़ी थी। "खबरदार जो तुमने मुझे मैडम कहा," मैं झल्लाकर उस पर बरस पड़ी तो वो मासूमियत से बोली, "तो फिर क्या कहूँ मैडमजी।"
"पहले ये नल बन्द करो। और तुम मुझे दीदी कह सकती हो।"

वो मुझसे कब आकर लिपट गयी मैं ये जान ही न पायी। दीदी, दीदी कहकर उसने सारा घर गुँजा दिया। और अपनी इस उदारता से मैं घमण्ड से फूल उठी। फिर उसके अतीत की चंद पोटलियाँ पलभर में ही मेरे सामने बिखरी पड़ी थीं।

प्रीतो अकेली बेटी थी। तीन-चार भाइयों की अकेली बहन। पर उसका बाप जो बढ़ई से ज्यादा शराबी था, उसने इसके जरा-सा बड़ा होते ही इसे नम्बरदार के बेटे को ब्याह दिया। उसे पुराना दमा था। इस अन्याय का विरोध कौन करता। उसके भाई शराबी बाप की मार खा-खाकर दौड़ने की उम्र आते ही घर से भाग गये थे। माँ घर की दीवारों जैसी ही एक दीवार थी।

भगवान की करनी। सुहागरात के दिन ही सप्तपदी में अग्नि का धुआँ पी-पी कर दूल्हे महाशय को दमे का ऐसा दौरा पड़ा कि उसे हस्पताल ले जाना पड़ा। सुहाग शैया पर बैठी-बैठी प्रीतो सोयी रही। किसी ने उधर झाँका भी नहीं। सुबह लोगों ने कहा, कुलच्छनी ने आते ही पति पर वार कर दिया। पता नहीं नम्बरदार के इस नाम का क्या होगा। इसका पाँव तो जानलेवा है। तभी हमारी मैडम वहाँ पहुँच गयी और शौहर के मरने से पहले ही उसे घर ले आयी। सारे गाँव के मुकाबले में वो अकेली ही थी। पर दबंग ऐसी कि उसे देखते ही नम्बरदार हुक्का छोड़ उठ खड़ा हो। इसी दबंगता की वजह से आज तक उसकी शादी न हो पायी थी। ऐसी ख्याति थी कि पुरोहित भी उसकी जन्मपत्री लेकर कहीं जाने को राजी न होता। सो कुँआरी ही रह गयी। प्रीतो की आँखों में तैरते सपने मैडम ने बड़ी आसानी से पोंछ डाले और शहर में आकर बच्चों का किंडर गार्डन खोल लिया। प्रीतो को जो सहारा मिला तो उसने अपना सारा मन बच्चों में ही लगा लिया। मैडम उसे प्यार भी करती है पर मजाल है जो कभी पता चलने दे।

प्रीतो, जिसने शादी से सुहाग सनी भाँवरों में शरमा-शरमाकर पाँव रखे, अग्नि के आगे कस्मे-वादे करते समय पिघलाती रही, वो प्रीतो कब तक अनुशासन में रहेगी इसका भय मुझे बराबर लग रहा था। मेरे घर में आते ही जरा-सी सहानुभूति उसकी आँखों में फिर से सपनों के सन्देशे बुनने लगी। सारा काम हँसते-हँसते निपटा लेती। और सारा दिन कोई छः बार कंघी करके महाउबाऊ हेयर स्टाइल बनाती रहती। बिन्दी लगाने का उसे बड़ा ही चाव था। मैंने एक दिन कहा, "प्रीतो, तू बिन्दी लगाकर मिटा क्यूँ देती है?"
उदास होकर बोली, "वो जो मर गया है। पर दीदी, मेरा मन बिन्दी लगाने को करता है।" मैंने कहा, "उससे तेरा क्या वास्ता है? ये कोई शादी थोड़े ही थी।"
वो उत्साहित होकर बोली, "यही तो मैं कहती हूँ पर मैडम हमेशा टोक देती है। कहती हैं, लाल बिन्दी सिर्फ सुहागिनें लगा सकती है।"
"तुम काली बिन्दी लगाया करो।"
"हाँ दीदी, काली बिन्दी तो लगा ही सकती हूँ। और अब उसे मरे एक साल तो हो ही गया है। अब उसका प्रेत मुझे तंग नहीं कर सकता।" ये कहकर वो खिलखिलाकर हँस पड़ी। इतनी हँसी कि उसकी आँखें आँसुओं से भीग गयीं।

नाक सुकड़कर वो अपने आँसुओं को पोंछते-पोंछते कहने लगी, "दीदी, अगर वो जिन्दा रहता तो मैं गाँव कभी न छोड़ती। शादी से पहले एक बार उसने रास्ते में मेरा हाथ पकड़कर कहा था, "कसम खा प्रीतो, मुझे कभी छोड़कर न जाओगी।"
मैंने अपने सबसे मीठे आम के दरख्त की कसम खाकर कहा था, "कभी नहीं।"
तभी किसी के कदमों की आहट हुई थी और उसने मेरा हाथ छोड़ दिया था। उसके घर वाले कहते हैं, "हमें पता था ये

ज्यादा दिन न रहेगा। हमने तो शादी इसलिए करवा दी थी कि प्रेत बनकर हमें तंग न करे।" मेरा गला उन्होंने काटना था सो काट दिया।"

मैंने कहा, "प्रीतो, तू तो अभी 20 की भी नहीं हुई, ऐसी बातें क्यों करती है? तेरी किसी भी बात से नहीं लगता तेरी शादी हो चुकी है। ये जोग तो तुमने मैडम की संगति में लिया है जानबूझकर। इसे छोड़ना ही होगा।"
"दीदी, पति को लेकर जो सपने मैं बुना करती थी उनका राजकुमार ये तो न था। वो सपने बड़ी बेरहमी के साथ मेरी आँखों में से पोंछ दिये गये। अब उस नयी स्लेट पर कोई-न-कोई रोज आकर मिट जाता है। कोई मूरत बनती ही नहीं।"
मैंने उसे बड़े प्यार से पूछा, "तुम्हें कोई अच्छा लगता है प्रीतो।"

"नहीं, पर जी चाहता है मैं किसी को अच्छी लगूँ। हाथ-पाँव में मेहंदी, माँग में सिंदूर, लाल जोड़ा और सुरमई आँखें। इनके साथ अगर सुहाग होता है तो मेरा भी हुआ था। पर सुहाग तो पति के साथ होता है। और वो तो मैंने देखा नहीं।"
"प्रीतो, मैडम का किंडर गार्डन तू ही तो सँभालती है। अगर तुझे कोई अच्छा लगे तो क्या सब छोड़ जायेगी?"
"पता नहीं दीदी।"
"पर मैडम क्या ये बात कभी सह पायेगी?"
"यही तो बात है, मैडम का मुझ पर पूरा भरोसा है। इसी से मुझे डर लगता है कि कहीं कोई अच्छा न लगे। मैडम तो मैडम, बच्चों के माँ-बाप भी मुझी पर भरोसा करते हैं। मैडम को तो सबके नाम भी नहीं आते। और फिर अगर एक दिन अपने हाथ से बनाकर न खिलाऊँ तो मैडम खाती ही नहीं। कभी-कभी मेरा मन नहीं करता तो भी बनाती हूँ। किसी को भूखा रखना पाप है न दीदी।"

मैंने उसकी तरफ देखा। जी चाहा इसे कहूँ, तू भी तो भूखी है प्रीतो। पर मैडम आकर मेरे दिमाग की इस नस को दबा गयी और मैं मौन हो गयी।

दो महीने कब निकल गये पता ही न चला। बस एक दिन मैडम आयी और प्रीतो को लेकर चली गयी। जाती बार प्रीतो ने चोरी से मुझसे कहा था, "दीदी, मुझे भूल न जाना। मैं तो न आ पाऊँगी पर आप आना। मुझे बुलाओगी न दीदी।" मैंने उसके हाथ अपने हाथों में लिये और अपने आँसू किसी तरह उससे छुपाकर उसे हौसला दिया। फिर गृहस्थी के ताने-बाने को सुलझाती मैं प्रीतो की उलझनों को भूल-सी गयी।

एक दिन भरी दोपहरी में मैं सोने जा रही थी तो मैडम आ धमकी। पहली ही साँस में उसने पूछा, "यहाँ प्रीतो आयी है?"

मैं जड़वत खड़ी रही, कुछ उत्तर न सूझा। जवान-जहान लड़की आखिर कहाँ गयी। मुझे चुप देखकर मैडम बोली, "उसे आग लगी है ये तो मैं जान गयी थी। बस गलती एक ही हुई कि उसे मैं सब्जी लेने अकेली भेजती रही। सब्जी की टोकरी में छुपाकर बिन्दी ले जाती थी। उस मरघट के पास जाकर लगाती थी। क्या आग है बिन्दी लगाने की। जब भी कलमुँही आती देर लगाकर आती। फिर कपड़े इस्तरी करते वक्त, सब्जी काटते वक्त या चपातियाँ सेंकते वक्त कैसे-कैसे तो शरमाकर मुस्कुराती थी पट्ठी। मुझे क्या पता था इसे क्या मौत पड़ी है। नहीं तो उड़ने से पहले ही पर काटकर फेंक न देती। मुझे तो डर लग रहा था कहीं पागल न हो जाये। लक्षण सब वही थे। कुछ दिन पहले एक बच्चे की माँ ने न बताया होता तो मुझे कहाँ पता चलना था। कोई मुआ दरजी है। सब्जी वाले की दुकान के पास, उसी के साथ भागी होगी राँड। उसी के साथ आँख मटक्का चल रहा था। एक बार मिले तो पुलिस में देकर छुट्टी पाऊँ। इन्स्पेक्टर तिवारी के दोनों बच्चे मेरे ही स्कूल में है।"

मैंने उसकी बातों का परनाला रोकते हुए कहा, "मैडम, तुम रूखी-सूखी लकड़ी हो। अगर वो नागरबेल कहीं सहारा ढूँढ़ती है तो जाने दो उसे। उसे खुशी ढूँढ़ लेने दो।

बिफरकर मैड़म चिल्लायी, "ओह, तो ये आग तुम्हारी लगायी हुई है। मुझे पहले ही समझ लेना चाहिए था कि मेरी ट्रेनिंग में कहाँ गलती हुई है। न तुम्हारे घर उसे रखती न ये नौबत आती।"
अब मुझे भी ताव आ गया। मैंने भी चिल्लाकर कहा, "ये आग मैंने नहीं लगायी पर ये आग मुझे ही लगानी चाहिए थी। तुम मेरी दोस्त हो। तुम्हारे पापों का प्रायश्चित्त मैं न करूँगी तो कौन करेगा। तुम क्या जानो पुरूष के प्यार के बगैर जिन्दगी कैसी रेगिस्तान-सी होती है। फेरों की मारी को तुमने अपने अनुशासन के डण्डे से साधकर रखा है। तुम जल्लाद हो तोषी, तुम इन्सान नहीं हो। तुमने मुहब्बत की जिन्दगी नहीं देखी। कभी देखो तो जानोगी तुमने अब तक क्या खोया है।" मैडम झल्लाकर बोली –
"मुझे फरेब नहीं खाना है मिसेज आदित्य वर्मा। आप घर में रखकर देखिये, अगर तुम्हारे पालतू आदित्य को भी न झटका दे दे तो मेरा नाम भी तोषी नहीं। दिन-रात उसकी इशारेबाजियाँ क्या मेरी नजरों से नहीं गुजरतीं। अगर इस स्कूल की मुसीबत न होती तो कब की भेज देती उसी गाँव में जहाँ से कसाइयों के हाथ से इसे छुड़ाकर लायी थी।"
"शादी करवा दो उसकी।" मैंने कहा।
"हाँ, यही तो करना चाहिए था। और फिर तू भी तो करवा सकती है।"
मैंने कहा, "वो तुम्हारी जिम्मेदारी है तोषी, मैं तो खाली शादी में आ जाऊँगी। चलो चाये पियें। पानी खौल रहा होगा।"
तोषी बोली, "तुम मेरा कलेजा और जलाना चाहती हो।" मैंने प्यार से उसका हाथ पकड़ा, "चलो मैडम, तुम्हें रूह अफजा पिलाती हूँ।" उसके बाद उसका जी थोड़ा हल्का हुआ तो मैंने कहा, "मैडम, उसकी शादी कर दो। लड़की जवान और भावुकता की मारी है। उसके हालात में एक बार अपने-आपको खड़ा करो और सोचो।"
मैडम बोली, "मैं कोई अच्छा लड़का देखकर कुछ कर पाती इसके पहले ही लगता है वो भाग गयी है। आज दूसरा दिन है। तोबा-तोबा, अभी तो शाम की क्लासों के लिए बड़े बच्चे आते होंगे। लो मैं चली।"

मैडम को गये कई दिन हो गये। उससे प्रीतो के बारे में पूछने का हौसला मैं न जुटा पायी। फिर सब भूल-भुला गयी। एक दिन शाम के वक्त मैंने दरवाजा खोला तो प्रीतो सामने खड़ी थी। पीछे एक लम्बा-तगड़ा खूबसूरत-सा लड़का।

शराब से वीर-बहूटी उसकी आँखें जैसे मेरे भीतर कुछ कंपा-सा गयीं। बिखरे बाल और दम्भ से भरे चेहरे पर मस्तक उसने मेरी अभ्यर्थना में जरा-सा झुका भर दिया। प्रीतो ने कहा, "यही दीदी है।" मैं स्नेह से दोनों को अंदर ले आयी। कमरे में दोनों को बिठाकर थोड़ा-सा मुस्कुरायी भी। चाय का पानी चढ़ाने जैसे ही रसोईघर में गयी, प्रीतो पीछे-पीछे आ गयी।
हँसकर बोली, "कैसा है?"
मैंने कहा, "अच्छा।"
वो हँसी, फिर बोली, "शराब तो रात को पीता है। आँखें हमेशा लाल रहती हैं।" होठों के कई बल सँवारकर वो हँसने लगी। हँसते-हँसते उसकी भरी आँखों को नजरअंदाज करके मैंने कहा, "मैडम को मिली?"
प्रीतो ने नीची नज़र करके कहा, "गयी थी। उसने निकाल दिया। और कहा दोबारा यहाँ मत आना। प्रकाश, यही आदमी बड़ा गुस्सा हुआ।" थोड़ा ठहरकर बोली, "दीदी, मुझे पुरानी धोतियाँ देना। ये एक ही धोती है। मैडम की थी।"

मैंने उसे धोतियों के साथ शगुन के रूपये भी दिये और प्यार से कहा, "प्रीतो, मैं हूँ, कभी उन्नीस-बीस हो तो याद रखना।" प्रीतो मेरे सीने से लगकर रो पड़ी। मुझे मालूम था वो गलती कर चुकी है। ये आदमी पति जैसा तो नहीं लग रहा। मैंने उसे भी जाते समय शगुन दिया। पता नहीं क्या हुआ उसने मेरे पाँव छुए। मुझे लगा बेटियाँ ऐसी ही विदा होती हैं।

फिर कुछ दिन बाद मैडम का फोन आया। बगैर भूमिका बाँधे उसने कहा, "क्या दोस्ती निबाह रही हो मिसेज आदित्य वर्मा। कल तुम्हारी वही साड़ी पहने प्रीतो मिली थी जो हमने साथ-साथ कॉलेज के मेले से खरीदी थी। कमाल किया तुमने, साड़ी दी तो धुँआ तक न निकाला कि वो आयी थी। देखना कहीं साड़ी से कभी आदित्य को भुलावा न हो।" ये कहकर उसने ठक्क से फोन बंद कर दिया।

आदित्य, मैं चौंकी। ये मैडम कितनी संगदिल है। उसके दूसरे ही दिन प्रीतो फिर आयी, पर अकेली। आते ही मेरे पीछे-पीछे रसोईघर में आकर बोली, "मुझे बैंगन की पकौडियाँ बना दोगी?" मैंने उसे भरपूर नजर से देखा। वो शरमायी और कहने लगी, "अभी तो तीन-चार महीने हैं। आज वो नासिक गया है तभी आ सकी हूँ। मुझे कुछ पैसे भी दोगी न। वो तो खाली राशन लाकर रख देता है। एक भी पैसा हाथ में नहीं देता। बाहर से ताला लगाकर दुकान पर जाता है। कभी भूने चने खाने को मन करता है। पैसे रात को उसकी पैंट से गिर जाते हैं तो ले लेती हूँ।" फिर अचानक खुश होकर बोली, "वहाँ एक खिड़की है जिसमें से कूदकर मैं कभी-कभी निकल जाती हूँ। पर एक दिन पड़ोसिन ने उसे बता दिया था। उस रात उसने मुझे बहुत मारा।"

मैंने उसकी ओर देखे बिना पूछा, "कोई शादी का कागज है तुम्हारे पास?"
बोली, "नहीं, शादी तो मंदिर में हुई थी।"

पैसे लेकर प्रीतो चली गयी। तीन-चार बरस उसका कोई पता न चला। एक दिन मैडम ही कहीं से खबर लायी थी कि उसका पति उसे बहुत मारता है। एक दिन देवर ने छुड़ाने की कोशिश की थी सो उसे भी मारा और प्रीतो को घर से निकाल दिया। वो तो पड़ोसियों ने बीच-बचाव करके फिर मेल करा दिया। मैं थोड़ी दुःखी हुई, फिर सोचा बच्चे हैं, बच्चों के सहारे औरतें रावण के साथ भी रह लेती हैं। कल बड़े हो जायेंगे। उनके साथ प्रीतो भी बड़ी हो जायेगी।

वक्त बढ़ता रहा। रोज सुबह भी होती, शाम भी। बच्चे स्कूल जाते, घर आते। आदित्य भी और मैं भी जिन्दगी के ऐसे अभिन्न अंग बन चुके थे कि उसी रोज के ढर्रे में जरा भी व्यवधान आता तो बुरा लगता। अपनी छोटी-सी दुनिया में पूरी दुनिया दिखायी देती। न वहाँ कहीं प्रीतो होती न उसका वह मरघट पति।

इसी तरह एक शाम आयी। साथ लायी कुछ मेहमान। आदित्य बाजार से कुछ सामान लाने गये थे। तभी दरवाजे की घंटी बजी। दरवाजा खोला तो एक अजनबी औरत अपने फूल-से दो बच्चों को थामे खड़ी थी। मैंने सोचा किसी का पता पूछना चाहती है। मैंने उसे सवालिया निगाहों से देखा। वो मुस्कुरायी। होंठ मुरझाये से थे तो भी मुस्कुराहट पहचान लेने में मुझे ज्यादा देर न लगी। मैंने कहा, "प्रीतो" - वो बच्चों की उँगलियाँ छुड़ाकर यूँ लिपटी जैसे इस भरी दुनिया में उसे पहिचानने वाली सिर्फ मैं अकेली थी।

मैंने उसे छुड़ाते हुए कहा, "प्रीतो, घर में मेहमान हैं। आओ, अंदर चलो।"

उसे बिठाकर मैंने बच्चों को दूध और बिस्कुट दिये। उन्हें खाता छोड़कर प्रीतो मेरे पीछे-पीछे आ गयी। बगैर भूमिका बाँधे उसने कहा —
"दीदी, वो चला गया है। दुबई। घर भी किसी और को दे गया। सिर्फ आज रात मुझे रह लेने दो।"
मैंने कहा, "प्रीतो, ये मेहमान आज भी आये हैं। तुम्हें कहाँ सुलाऊँगी। फिर बच्चे भी हैं।"
प्रीतो ने कहा, "इन्हें लेकर मैं बरामदे में सो जाऊँगी। कल सवेरे यहीं मैंने किसी को मिलना है। वो मेरा कोई इन्तजाम करने वाले हैं। मैडम मुझे किसी आश्रम में भेजना चाहती है। बस कुछ दिन की बात है।"
मेरा माथा ठनका। मैंने कहा, "तुम मैडम के घर क्यों नहीं गयीं?"
"वो कभी भी नहीं रखेगी दीदी। और फिर मैं आश्रम नहीं जाना चाहती।"
"पर क्यों?"

"अगर कभी इनका बाप आया तो?" मैंने कहा, "अगर उसने आना होता तो जाता ही क्यों?"
उसने कहा, "बस कुछ दिन इंतज़ार करूँगी। कुछ दिन की बात है।"

मेरी आँखों के आगे आदित्य का चेहरा घूम गया। मैडम की कही हुई बात भी याद आयी। जो उन्होंने कहा था वो भी मुझे याद था। एक रात उनकी मर्जी के बगैर भी रख सकती थी पर प्रीतो को ये पूछने का साहस उसमें न था कि कल कहाँ जाओगी? ये मैं जानती थी सिवाय मैडम के उसे कोई आश्रम जाने को राजी न कर सकेगा। यही एक लम्हा था, अगर मैं कमजोर पड़ जाती तो उसके जाने का कल ना जाने कब आता। मैंने अपने अंदर के इन्सान का गला दबाया और कहा, "नहीं प्रीतो, यहाँ रहना मुमकिन नहीं हैं। ये लोग हमारे जेठ की लड़की देखने आये हैं। लड़की कल दिल्ली से आयेगी। ऐसे नाजुक रिश्तों के दौरान मैं घर में कोई अनहोनी नहीं कर सकूँगी। तुम पैसे लो। अगर कल सवेरे यहाँ किसी को मिलना है तो टैक्सी में आ जाना। अब तुम जाओ।" मैंने उसके दोनों बच्चों को ऊँगली से लगाया। दरवाजे के बाहर जाकर चौकीदार से टैक्सी मँगवायी और बच्चों के साथ प्रीतो को बैठते देखा। उसकी पसीने से तर हथेली में कुछ नोट खोंस दिये। टैक्सी को जाने का इंतजार किये बगैर घर आकर दरवाजा बन्द कर लिया।

ये दरवाजा मैंने प्रीतो के लिए बंद किया था या अपने लिए ये न जान पाई। रात-भर मुझे चौराहों के ख्वाब आते रहे। फिर कई दिन मैं दीवारों से पूछती रही, "कल कहाँ जाओगी?"

फुटबॉल पदमा सचदेव

कोई दस बरस हुए होंगे। उन दिनों मेरा तबादला श्रीनगर हुआ था। जम्मू के स्कूलों में गर्मियों की छुट्टियां चल रही थीं। मेरी पत्नी और मेरे दोनों बेटे भी मेरे साथ श्रीनगर आए हुए थे। उन्हीं दिनों मेरे बेटे का, जो छठी कक्षा का छात्र था, जन्मदिन आ गया। एक दिन पहले मैंने उससे पूछा, तुम्हें अपने जन्मदिन पर क्या चाहिए? उसने एकदम कहा, "पापा बैट और बॉल।"

यह सुनते ही चौथी कक्षा के छात्र मेरे छोटे बेटे ने कहा, "मुझे भी बैट और बॉल चाहिए।"
"अच्छा अच्छा, कल शाम तुम दोनों को बाज़ार ले चलूंगा," मैंने वादा किया।

श्रीनगर में यह मेरी पहली पोस्टिंग थी। मैं दुकानों और बाज़ारों के बारे में अधिक जानता न था। दूसरे दिन मैंने अपने बचपन के दोस्त मदन से खेल के समान वाली दुकानों के बारे में पूछताछ की। उसने कहा, "वो तो बिलकुल पास में ही दुकान है। बडशाह चौक से मायसोमा बाज़ार में घुसते ही दाहिनी हाथ की दूसरी गली में अमीन की खेलों के सामान की दुकान है। तुमने कौन-सा टेस्ट मैच के लिए सामान लेना है! बच्चों के लिए वहां सभी कुछ मिल जाता है।"

फिर वह थोड़ा-सा रुका और हंसते हुए कहने लगा, "तुम्हें याद है वो मुहम्मद अमीन? जब हम नवीं या दसवीं के छात्र थे तो परेड ग्राउंड में उसका कोई भी मैच नहीं छोड़ते थे।"

मैं याद करने लगा, वह फिर बोला, "यार तुम तो फुटबॉल खेलते थे। तुम कहते नहीं थे एक दिन मैं भी अमीन की तरह सिर्फ़ जम्मू-कश्मीर का ही नहीं, सारे हिंदोस्तान का टॉप का खिलाड़ी बन कर दिखाऊंगा! कुछ याद आया?"
मुझे सभी कुछ याद आ गया। मैं आज भी फुटबॉल को और अमीन को अपने ख़यालों से अलग नहीं कर पाया था। औसत कद का चौड़ा भारी-सा अमीन लेफ्ट आउट पोज़ीशन पर खेलते हुए जब गेंद के पीछे भागता था तो सारे दर्शकों में शोर की एक लहर उठ जाती थी। सभी में एक जोश एक उम्मीद उभरती थी कि अब ज़रूर कुछ न कुछ होगा। वो जब फुटबॉल को ले कर दूसरी तरफ़ के खिलाड़ियों को चकमा दे कर उनमें से तीर की तरह निकलता था तो मेरे अपने रोएं

खड़े हो जाते थे। दिल तेज़ी से धड़कने लगता और छाती में छलांगे लगाने लगता था और सांस रुकती-सी प्रतीत होती थी। और कभी जो वो गोल कर देता तो सिर्फ़ मैं ही नहीं, सब लोग ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगते थे और फिर लगातार शोर और तालियां...हमारी टीम के बाक़ी के खिलाड़ी कभी उसे गले लगाते कभी कंधों पर उठा लेते।

स्कूल में भी लेफ़्ट आउट के स्थान पर खेलता था और सिर्फ़ सोते में ही नहीं, जागते हुए भी स्वप्न देखते मैं बड़ा होकर अमीन की तरह फुटबॉल को पांव से ठेलते-ठेलते उसके साथ दौड़ते लोगों के शोर और प्रशंसा से भरी आवाज़ों में दूसरी टीम के खिलाड़ियों से बॉल निकाल कर एक अंतिम ज़ोरदार किक मार कर फुटबॉल को गोल के भीतर डाल देता था...

फिर ग्यारहवीं क्लास में आते-आते पढ़ाई के कारण फुटबॉल छूट गया। इंजीनियरिंग की सीट पर नज़र थी, वो मिल भी गई। इंजीनियरिंग कॉलेज में भी फुटबॉल खेला पर फिर दोबारा कभी वो नवीं-दसवीं क्लास में आने वाला फुटबॉल का नशा मेरे दिमाग़ में कभी नहीं आया। अब तो फुटबॉल को किक लगाए भी पता नहीं कितने बरस बीत गए हैं।

"अरे कुछ याद आया कि नहीं? मदन अमीन के बारे में पूछ रहा था। क्या सोच रहा है?" उसने मुझे देखकर कहा। मैंने कहा, "क्या अमीन भी भूलने की चीज़ है!..."ये उत्तर दे कर मेरे मन में एक लहर-सी उठी, मेरे दिलो-दिमाग़ पर एक बड़ी सुहानी किक-सी लगा गई।

दूसरे दिन मैं अपने दोनों बच्चों को लेकर माईसोमा बाज़ार में गली में घुस कर अमीन की दुकान ढूंढ रहा था। गली तो यही बताई थी मदन ने, कहीं मैं ग़लत गली में तो नहीं आ गया! सोचता हुआ मैं गली के सिरे से वापस हो लिया। जब मैं गली के बीचोंबीच पहुंचा तो मेरी नज़र एक दुकान के बाहर लटके हुए दो फुसफुसे और पिचके हुए फुटबॉल और एक बैट पर पड़ी। वो मैले से फुटबॉल और छोटा बैट वहां यों लटक रहे थे जैसे उनका उस दुकान के साथ कोई संबंध ही न हो। या जैसे किसी ने कई साल पहले उन्हें लोगों की पहुंच से दूर टांग दिया हो और फिर भूल गया हो या फिर कहीं मर खप गया हो...

यह अमीन की दुकान तो नहीं हो सकती, यही सोच कर मैं आगे बढ़ता गया। दुकान के पास पहुंच कर मैंने एक बार फिर सरसरी नज़र से देखा। बाहर कई मौसमों और बरसों की मार खाए पुराने मटमैले-से बोर्ड पर फीके से सुर्ख़ रंग के लफ़्ज़ों में लिखा हुआ था, "अमीन स्पोर्टस स्टोर"।

मेरा मन अजीब-से भारीपन के साथ भर आया। "पापा चलिए न, देर हो रही है। यहां कितना गंदा है," मेरा छोटा बेटा मेरी बांह पकड़ कर हिलाता हुआ कह रहा था। मैंने भी देखा, काले से कीचड़ के साथ भरी गली की नालियों में से गंदा पानी निकल कर अजीब-सी बदबू फैला रहा था।

मैंने एक बार फिर दुकान की तरफ़ देखा। सामने एक तरफ़ मैली चिपचिपी प्लाई के काउंटर पर प्लास्टिक के मर्तबान में टॉफियां, सस्ते चॉकलेट, च्यूंगम आदि रखे थे। भीतर नज़र गई तो मुझे शेल्फ़ पर सजे कुछ खिलौने भी नज़र आए। काउंटर के पीछे कोई व्यक्ति अख़बार पढ़ रहा था।

"आओ बच्चो, यहां देख लेते हैं, नहीं तो फिर किसी और दुकान पर चलेंगे।" यह कहते-कहते मैंने दुकान की सीढ़ियों पर कदम बढ़ाए। मेरे पीछे-पीछे मेरे बच्चे बेमन से आ गए। दुकानदार अख़बार पीछे फेंक कर खड़ा हो गया। मुझसे नज़र मिला कर कहने लगा, "आइए जी, बताइए क्या ख़िदमत करूं?"
"बैट बॉल।" मेरा छोटा बेटा तपाक से बोला।
"अभी दिखाता हूं...आजकल तो सभी क्रिकेट के शौकीन हैं..." कह कर वो दुकान के पिछले हिस्से में चला गया जहां एक कोने में कई बैट दीवार के सहारे टिके हुए थे। दुकानदार ने ख़ाकी रंग का पुराना-सा पर साफ़ खान सूट पहिना हुआ था। उसके पांव में नॉयलान की चप्पलें थीं। यों लगता था जैसे उसने चार-पांच दिन से शेव नहीं किया था। दाढ़ी के

काफ़ी बाल सफ़ेद थे। उसका आधा सिर गंजा था। मैं मन में सोच रहा था क्या यही अमीन है? नहीं यह नहीं हो सकता। वक़्त भी आदमी को इतना नहीं बदल सकता!

वह जब मैच खेलता था उसके बाद मैं उसके आगे-पीछे घूमता रहता था और उसे कितनी ही बार देखा था। एकदम करीब से...पर अब तो उसे देखे भी 24-25 साल हो गए हैं। कद-काठी तो वही है, हो सकता है उसका भाई हो...मैं सोचता जा रहा था।

"ये लीजिए, साइज़ देख लीजिए," यह कह कर उसने तीन-चार बैट काउंटर पर रख दिए। दोनों बच्चे बैटों पर झपट पड़े और एक-एक बैट को पकड़-पकड़ कर आपस में खुसर-फुसर करने लगे।
मैंने पूछ ही लिया, "माफ़ कीजिए, क्या आप पुराने फुटबॉलर अमीन साहेब तो नहीं हैं?"
"मैं ही अमीन हूं, फ़रमाइए!"
मुझे कोई झटका नहीं लगा। अब मैं हर हालत के लिए तैयार था। मैंने कहा, "दरअसल आप मुझे नहीं जानते, पर स्कूल के दिनों में मैं आपका हर मैच देखता था। 1975 में रेल्वेज़ के साथ जम्मू-कश्मीर का जो मैच हुआ था वो तो मैं कभी भूल ही नहीं सकता।"
अमीन का चेहरा दमकने लगा। "मैंने उस मैच में तीन गोल किए थे, तीनों फ़ील्ड से पहले हाफ़ में। हम दो गोल पीछे थे। वल्लाह क्या मैच था..." कहता-कहता वो रुक गया।
"आप बैठिए न - वो आपके पीछे स्टूल पड़ा है," उसने स्टूल की तरफ़ इशारा किया। मैंने देखा मेरे बेटे अब खुद ही पिछले कोने में जा कर बैट वाले हिस्से में बैट चुन रहे थे।
"अमीन चाचा, एक डेढ़ रुपए वाली कॉपी और दो पेंसिल दीजिए," एक कश्मीरी बच्चा दुकान पर चढ़ कर सामान मांग रहा था।

मैंने देखा काउंटर के पीछे शेल्फ़ पर कॉपियां पेंसिल और एक मर्तबान में सस्ते से बॉल पैन रखे हुए थे। बच्चे ने चार रुपए दिए। अमीन ने सामान उसे पकड़ा कर पूछा, "कुछ और चाहिए?"
"बचे हुए पैसों से चॉकलेट और टॉफियां दे दें।"
"अच्छा," कहते हुए अमीन ने एक मर्तबान में से टॉफियां निकाल कर काउंटर पर रखी फिर गिनने लगा।
"ये लो, तीन और दो - पांच।"
बच्चा सामान लेकर चला गया। गली में जाते हुए मैं उसे देखता रहा।
फिर अमीन ने मुझसे नज़र मिलाई। वो थोड़ा-सा शशोपंज में था। मुझे देख कर कहने लगा, "सिर्फ़ खेलों का सामान इस गली में बेच कर घर नहीं चल सकता - क्या करें, घर का खर्चा चलाने के लिए ये सभी कुछ रखना पड़ता है।"

मुझे बड़ा अजीब-सा लग रहा था। वह अमीन जिसके साथ कितने ही लोग और लड़के हाथ मिलाने के लिए होड़ लगाते थे, आज वह उन्हीं हाथों से कुछ पैसों की टॉफियां गिन रहा था।

मैं अब दुकान के पिछले हिस्से में, जहां मेरे दोनों बेटे बैट देख चुन रहे थे, पहुंच गया और उनकी मदद करने लगा। फिर दो बैट पसंद करके मैं काउंटर पर गया और पूछा, "ये दोनों ठीक है न?"
उसने बच्चों से पूछा, "बेटा बॉल लेदर का चाहिए या कार्क का?"
उत्तर मैंने दिया, "लेदर के बॉल ही ठीक रहेंगे। विकेटे लेंगे। एक सैट विकेटों का भी दे दीजिए।"
मेरे छोटे बेटे ने कहा, "मैं विकेटकीपर वाले दस्ताने भी लूंगा।"
"चलो ठीक है, आप इसके अलावा दो जोड़ी बैटिंग वाले दस्ताने और दो जोड़ी लेग पैड भी दे दें। दोनों के पास पूरा-पूरा सेट हो जाएगा," मैंने अमीन से कहा।
दोनों बच्चे खुशी से झूम उठे, "ये बिलकुल ठीक है पापा!"
"हमारे बच्चों में क्रिकेट का कितना शौक हे! फुटबॉल में तो बच्चों की दिलचस्पी ही ख़त्म होती जा रही है," कहता हुआ अमीन पीछे सामान लेने चला गया।

अब तक अमीन का वो ऊंचा स्थान जो मेरी सोच में था काफ़ी नीचे आ चुका था। मैं अब उसे गुज़रे वक़्त का एक खिलाड़ी जो अब एक छोटा-सा दुकानदार था उसी तरह देख रहा था। पुराने कपड़ों में, पांव में नायलॉन की चप्पल पहने, बैट, कॉपियां, टॉफ़ियां बेचता अमीन...दुकान पर टॉफियां गिनता अमीन...शुक्र है मैं अमीन होने से बच गया। अब अमीन हमारा सारा सामान पैक कर रहा था। मैंने वक़्त गुज़ारने के लिए पूछा, "मैंने तो सुना था आप बंगाल की किसी टीम में चले गए हैं?"
"हां, दो-तीन साल मैं क्लब में भी खेला। एक प्राइवेट फ़र्म में नौकरी भी मिल गई। मैं सिर्फ़ फ़र्म की टीम में खेलता था - और कुछ न करता था। फिर हमेशा की तरह नये लड़के नये ज़ोर-शोर के साथ पुराने खिलाड़ियों को पीछे धकेलते हुए आगे आ जाते हैं। अब हम पुराने हो गए। तब हम भी अपने आप बाहर हो गए। नौकरी के साथ जो कुछ और भी इतना प्यारा था वो भी जाता रहा। खेल गया, नौकरी गई, पैसे गए, शोहरत भी चली गई..." वो बोलते-बोलते उदास हो गया। फिर कहने लगा, "शुक्र है ये बुजुर्गों की पुरानी दुकान थी तो गुज़ारा भर हो जाता है। दो बेटियां हैं, एक बेटा है। चलो, जैसी अल्लाह की मर्ज़ी!"

उसने मेरा सामान पैक किया फिर बोला, "आप ज़रा रुकिए, मैं अभी आया।..." यह कह कर वो भीतर से भी कहीं और भीतर चला गया। जब वह बाहर आया तो उसके हाथ में एक फुटबॉल था। उसने उसमें हवा भरी और फिर हाथ से उसे फ़र्श पर टप्प से उछाल कर जांचने लगा। एक-दो-तीन। मुझे लगा वह हमें भूल कर खुद फुटबॉल खेलने लगा है। फिर उसने फुटबॉल को ऊपर उछाल कर कैच किया और हाथ में पकड़ लिया फिर हंस कर बोला, "यह बिलकुल ठीक है।" अब वो फुटबॉल को हाथ में लेकर साफ़ कर रहा था। फिर भी तसल्ली न हुई तो वह अपनी कमीज़ के अगले हिस्से के कोने के साथ बड़े प्यार से फुटबॉल रगड़ने लगा जैसे पॉलिश कर रहा हो।

जब वो साफ़ कर चुका तब उसके हाथों में काला सफ़ेद रंग-बिरंगा फुटबॉल सच में बड़ा चमक रहा था।
"यह फुटबॉल बच्चों के लिए मेरी तरफ़ से..." कहते हुए उसने फुटबॉल मेरे हाथ में पकड़ा दिया।
वह कह रहा था, "आपके घर में पड़ा रहेगा तो बच्चे कभी-कभार इसके साथ भी ज़रूर खेलेंगे।"
मैंने कहा, "आप मेहरबानी करके इसके भी पैसे लगाइए।"
"मैंने कहा न ये मेरी ओर से है। बाकी सामान के पूरे पैसे लूंगा..." यह कह कर वह सामान का बिल बनाने लगा। पर बीच-बीच में बोलता जा रहा था, "आजकल फुटबॉल कोई छोटा खेल नहीं है साहेब। खिलाड़ी अच्छा हो तो सब कुछ है- पैसा है, इज़्ज़त है, शोहरत है, नाम है।" कहते-कहते वो थोड़ी देर के लिए चुप हो गया। फिर कहने लगा, "आप मेरी ओर न देखें। हमारी बात अलग थी। हमारा वक़्त दूसरा था। उस वक़्त खेल में पैसे न थे। हम वो हैं जिन्हें वक़्त और हालात ने एक ही किक के साथ यहां पहुंचा दिया। ये लीजिए आपका बिल..." उसने बिल मेरे आगे कर दिया। मैंने पैसे देते हुए यों ही उससे पूछा, "आप अकेले ही दुकान पर बैठते हैं, मुश्किल तो नहीं आती? आपका बेटा क्या कर रहा है?" उसके मुंह पर एक रौनक-सी आ गई। कहने लगा, "आपने फुटबॉल में शौकत का नाम तो सुना ही होगा? कलकत्ते के स्पोर्टिंग क्लब की तरफ़ से खेलता है। वो मेरा बेटा है। सारे ही क्लब उसे अपनी तरफ़ खींचने की कोशिश कर रहे हैं। उसे पैसे का लालच भी देते हैं पर वो अपने ही क्लब में टिका हुआ है। मुझे पूरा यकीन है कि वो हिंदोस्तान की अगली लाइन में स्ट्राइकर होगा। जर्मनी का कोच उसे छह महीने के लिए अपने साथ जर्मनी ले गया है। वह पिछले ही महीने गया है। वो भी मेरी तरह फारवर्ड लाइन में लेफ़्ट आउट की पोज़िशन पर खेलता है।"

मेरे बच्चों ने जैसे-तैसे अपना सामान उठा लिया था। पैसे दे कर बचा हुआ एक लिफ़ाफ़ा मैंने भी उठा लिया और उसे अलविदा कहा।

हमारी दोनों आंखें मिल कर एक-दूसरे के भीतर झांक रही थीं। शायद उसी वक़्त हम दोनों मुस्कुरा भी रहे थे। मैंने अपने आप अपना दायां हाथ सामान से मुक्त करके उसकी तरफ़ बढ़ाया। उसने बड़ी ग़र्मजोशी से अपना तगड़ा मगर नर्म हाथ आगे मिलाते हुए कहा, "अच्छा, खुदा हाफ़िज़!"

छुई मुई

आण्डाल प्रियदर्शिनी

"अनु ....दादी को हाथ मत लगाना ... ।

बच्ची की पीठ पर पड़ी धौल पद्मावती के तन में गहरायी से उतर गयी – "कम्बख्त कितनी बार कहा है ...दादी के करीब मत जाओ ....उन्हें मत छुओ ....उनके ऊपर मत लेटो ....खोपड़ी में कुछ जाए तब न ... ज़िद... ज़िद....तीन वर्ष की है पर ज़िद तो देखो .... ।"

कोध का आवेग बच्ची के सिर पर एक घूंसे के रूप में पड़कर ही थमा। दर्द से छटपटाती अनु चीखती हुई रोने लगी। पद्मावती घबरा गयीं। उनका मानना था कि बच्चों को बेतरह पीटना, घूंसा मारना आदि पााशविक कृत्य हैं। वे कहतीं, "बच्चे फूल के समान होते हैं। खुशबू बिखेरते हैं। मन को विभोर करनेवाला सुनाद होते हैं। बुजुर्गों से ज़ादा पवित्र और शुद्ध आत्मावाले। बच्चों के देखकर ही कम से कम बुजुर्ग सुधर जाएं इसीलिए इन छोटे देवताओं को ईश्वर ने धरती पर भेजा है। कौन समझता है इसे...हूं... ।

ये देखो रेवती का भड़कता गुस्सा ....अनु की कैसी दुर्गति बना रहा है। पद्मावती के मन में पद्मावती के मन में दुख का आवेग उमड़ने लगा।

मेरी खातिर बेचारी कोमल जान मार खा रही है। गलती तो मेरी है न। हे भगवान!..." होठों को भींचकर मुंह बंद कर रूलाई रोकते हुए उसने ईश्वर से विनती की। अनु ज़ोर से रोने में असमर्थ हिचकी लेती रही।

"हुश ... आवाज़.... नहीं आनी चाहिये....आंख में एक बूंद आंसू न आए....ले इसे खा ले....नीचे मत गिराना... नो क्रायिंग।" रेवती बड़बडाई और कटोरी में दही भात और चम्मच अनु के हाथ में पकड़ा दिया। भर्राए गले और आंखों में रूलाई को भीतर ही रोकते हुए, अनु कटोरी हाथ में लेकर स्वयं ही डायनिंग टेबुल के पास जा, कुर्सी खींच बैठ गयी और चम्मच से भात ले बड़ी मुश्किल से खाने लगी।

बेबस लाचार आंसू बहाती पद्मावती के मन में बच्ची को गोद मे बिठा कर चिड़िया की कहानी सुनाते हुए उसके कोमल मुंह में भात डालने की इच्छा बलवती हो उठी।
आपाद मस्तक तन तड़प उठा।
– छू नहीं सकती।
– छू देंगी तो प्रलय मच जायेगा।
– ज्वालामुखी फट़ पड़ेगा।
– घर युध्दस्थल में बदल जायेगा।
क्या करूं ? क्या करूं ? पद्मावती कर ही क्या सकती थी ? अनु ने खाना खत्म कर लिया। सिंक में कटोरी डाल, हाथ मूंह धो लिया। " गो टू बेड ..... अनु ....स्लीप।" रेवती का आदेश सुनायी पड़ा।

अनु बैठक में एक कोने में लुढ़क गयी और बैठक के अन्तिम छोर पर बने छोटे कमरे में बैठी दादी को तरसाती निगाहों से निहारती रही।
अनु के लिये तो दादी ही सब कुछ थी।

सुबह आंखे खुलते ही – – –
"दादी, अनु जग गयी हैं – –।" भोर की उजली मुस्कान सहित कहती।
"दांत साफ कर दो दादी – – –"
"मुंह कुल्ला करा दो दादी – – –"

"खाना खिला दो दादी –"
"गोद में बिठा लो दादी।"
इस प्रकार दादी की छाया बन उनसे चिपकी रहती थी। सोते समय तो दादी का साथ उसे अवश्य ही चाहिये था। दादी की नरम गोद में लेटी हुई – – – उनकी उंगली थामे – – एक ओर करवट ले "गाना सुनाओ दादी – – –।"कहकर गाना सुनते हुए पल भर में सो जाती। ऐसा सबकुछ पहले होता था। अब नहीं होता । अब तो, पद्मावती को उस छोटे कमरे से बाहर आने की इजाजत नहीं थी और अनु को भीतर जाने की मनाही थी।

उस कमरे के बाहर भी किवाड़ था। बाहर निकलना हो तो वहीं से जाना पड़ता। कमरे में ही गुसलखाना, स्नानगृह, खाने की प्लेट, कॉफी के लिये गिलास, पानी का नल, दरी, तकिया, चादर, छोटा रेडियो और पोर्टेबल टी वी लगा दिया था।

उस कमरे का किवाड़ बाहर सिटऑऊट में खुलता था। अपने कपड़े खुद धोकर सुखाने पड़ते थे। स्टूल पर बैठे सड़क की चहल–पहल देख सकती थी। जो चाहे करने की आज़ादी थी। परन्तु कमरे से बाहर निकल इस तरफ आने पर प्रतिबंध था। सुबह से लेकर रात सोने तक यह आठ फीट लम्बा कमरा ही सब कुछ था।

केवल घर ही नहीं, परन्तु जीवन भी कारागार बन गया था। महरी भी कमरा झाड़ने पोंछने नहीं आती थी। बाहर के किसी व्यक्ति को देखे बिना महीनों गुजर जाते। मानव–स्पर्श के लिए तरसते हुए कई दिन बीत जाते, अब तो स्पर्श की अनुभूति ही मिट सी गई थी।

छप – – छप – – छप – – अनु के अंगुठा चूसने की आवाज़ कानों में पड़ी। पद्मावती का मन भर आया। मन हुआ कि जा कर उस नारियल के पौधे को गोद में सुलाकर उसके कटे छोटे बाल सहला दूं। रोएं समान कोमल एड़ियों को गोद में रख धीरे–धीरे सहला दूं, उस कोमल लता को भींच कर सोने का मन चाहा पर – – – पर यह कैसे संभव होता? लगा दुःख से छाती फट जायेगी और पद्मावती वेदना से छटपटाने लगी।

"मेरी पोती है अनु – – मैं उसे छूना चाहती हूं – –। पर उसकी छटपटाहट रेवती के कानों में नही पड़ी। स्पीकर फोन पर अमेरिका की लाईन – – –

"हूं – – मैं बोल रही हूं – –।"
"अनु ठीक तो है ना ? मां – –"
"मां की दयनीय स्थिति के बारे में तो मैंने लिखा था– –।"
"हूं – –हूं – – पढ़ा था – – विश्वास ही नहीं होता – – –दुर्भाग्य – –"
"दुर्भाग्य – – – या कपट – – बदबू आती हैं – –आई कांट मॅनेज एनी मोर " मैं उसे अब बर्दाश्त नहीं कर सकती।"
"प्लीज डार्लिग – – चार महिने में मैं आ जाउंगा....और समस्या का हल ढूंढ दूंगा।

"हूं।"
"मां है क्या?.... फोन उन्हें दो न?"
"चुप रहिये...कहने को कुछ नहीं है...बंद कीजिये फोन", रेवती क्रोध से फुफकारती हुई बच्ची को गोद में लिये बेडरूम में गयी और ज़ोर से किवाड़ बंद कर दिया।

दुबारा बाहर आयी।

"वैसे ही मेरी कोई सहेली घर नहीं आना चाहती....."होम" में जाकर रहने को कहती हूं तो मानती नहीं हैं ....क्या आप भी चाहती हैं कि हम लोग भी यह कष्ट भुगतें?" "क्यों ...? यह बदला लेने की प्रवृत्ति क्यों? मैं दूसरा घर ढूंढ लेती

हूं....आप इस घर में खुशी से रहिये ...कल मैं ही चली जाती हूं यही एक रास्ता है .... ।" दीवारों और हवाओं को सुनाते हुए रेवती बड़बड़ाने लगी।

उसकी चिढ़ भी हाल में ही बढ़ी थी। पहले तो दोनो बड़े प्रेम से रहती थीं। "सास बहू जैसे थोड़ी रहती हैं? अपनी बेटी से भी शायद कोई इतना प्यार करता होगा।" लोग उन दोनो के बारे में ऐसा कहते थे। पता नहीं किसकी नज़र लग गयी। पहले दोनो साथ साथ घर सजाती थीं। नये नये पकवान बनाती थीं। रेवती की कायनेटिक हौण्डा पर बैठ पार्क, मंदिर, प्रदर्शनी, समुद्रतट आदि सभी स्थलों की सैर करने जातीं।

"क्लब की मीटिंग छे बजे खत्म होगी। वहीं रहियेगा... मैं पिक अप कर लूंगी।" रेवती अपनी सास से कहती और ठीक छे बजे पहुंच भी जाती थी।

"होटल चलकर कश्मीरी नान खाएं सासू मां?"
"हां क्यों नहीं?"
"मां मैं आइसक्रीम लूंगी .... ।" तीनों अन्नानगर के चतुरा रूफ गार्डन जाते। बजाय जल्दी जल्दी खाना खाने के पौना घंटा बैठ आराम से खाते पीते। घर लौटने पर पैर फैला कर सुस्ताते, टी वी देखते, संगीत सुनते, कैरम खेलते, खूब मज़ा लेने के बाद बारह बजे के करीब सोने जाते।

ये बातें ....पिछले जनम की लगती हैं पद्मावती को अब।

छे महीने पहले शुरू हुई थी दुर्दशा की यह कहानी। नारी निकेतन की संचालिका ने उत्साहपूर्वक कहा था, "हमारा यह संगठन बहुत मशहूर हो गया है ...आप लोग जानती हैं न?" हां...हां... पत्रिका में फोटो देखी थी और इसके बारे में पढ़ा भी था।...जिन जिन लोगों ने जोश में काम शुरू किया सब किसी न किसी बहाने पीछे हट गयीं। परन्तु पद्मावती बोली, "कोई बात नहीं...मेरा बेटा विदेश जा रहा है...मेरे पास वक्त बहुत है.... मैं करूंगी...इन लोगों की मदद ईश्वर की सेवा करना होगा... ।"

उसने सच्ची निष्ठा से इन लोगों की सेवा

की उनका शरीर पोंछना, कपडे बदलना, कहानी सुनाना, भय दूर भगाना, फूल काढ़ना आदि सिखाते हुए जब उनकी मदद करने लगी, तभी समस्या शुरू हुई।

आश्रम से घर लौटने पर बहू कहती – – "जाईये – – जाकर साबुनसे अच्छी तरह नहाकर आईये, करीब आनेपर उबकाई आती हैं – – ।"

"क्यों बेटी रेवती – – मदर टेरेसा ने क्या क्या नहीं किया – – इनकी मदद करनेवालों को ईश्वर फूल समान सुरक्षा करते हैं। चिंता न कर – –।"

कहकर हंस देती। पर सब बेकार – – सब काल्पनिक हो गया। सच तो कुछ और ही हो गया। विश्वास टूट–फूट गया – –।"

यह आठ फीट लम्बा कमरा उसका सब कुछ बनकर रह गया। अब जब तक उसकी अंतिम किया नहीं होती तब तक यहीं रहना है – – इस तरह के ख्यालों के कारण दुःख और तीव्र हो गया और इस दुःख के सागर में डूबते–उतराते वे सो गई। थाली में रखा भात पड़ा पड़ा सूख कर कड़ा हो गया।

सिट–आऊट में बैठे–बैठे बाहर का नज़ारा देख रही थी पद्मावती। सुबह की धूप, सड़क पर तेजी से भागती गाडियां – – बिना रूके तेज रफ्तार से भागते लोग – – तेजी से भागती भीड़ – – – इनमें किसी को यह बीमारी लगी होगी? मेरी तरह इनका हृदय भी विदीर्ण हुआ होगा? क्या अकेलापन के सूने सागर में ये भी मेरी तरह डूबे उतराये होंगे? पद्मावती ने सोचा।

बगल के फ्लैट में रहने वाला भी तो कोई नहीं आता। उसकी ओर देख मुस्कुराते भी तो नहीं वो लोग। क्या मुस्कुराने से भी कोई बीमारी फैलती हैं? पद्मावती को लगा जैसे सारा संसार सूना – – सूखा और उज़ाड़ हो गया – –। मित्र–भाव मिट गया है। अकेलापन – – – अकेलेपन की आग, जी को भी जलकर भस्म कर रही हैं – – अपना कोई नहीं हैं। चारो ओर लोगों की भीड़ है पर अपना कहनेवाला – – आत्मीय कोई भी नहीं हैं – – अकेलापन ही साथी है – – । सवेरा होते ही रेवती भी अनु को लेकर चली जाती है।

रेवती ने अनु को क्रच में भर्ती कर दिया हैं।

"आपको उसकी देखभाल करने की जरूरत नहीं हैं – – – मैं स्वयं ही छोड़ भी आऊंगी और ले भी आऊंगी।" एक दिन बेलगाम जुबां से उसने ये शब्द उच्चारित किये थे। "मेरी बेटी के लिये आपको कुछ करने की जरूरत नहीं हैं – – – उसे हाथ नहीं लगायें तो वही काफी हैं – – आपकी शुक्रगुजार रहूंगी।" घाव पर शूल चुभोते से लगे रेवती के शब्द।

बच्ची है – – –वहा तो नासमझ हैं – – पर बुजुर्गो की अक्ल भी क्या मारी गयी हैं?

"बच्ची की आपको जरा भी परवाह होती – – तो क्या आप उसे छू कर बातें करती – – ?"

नरक की आग में उन्हे भून रही थी बहू। क्या करूं? सोचने लगी पद्मावती – – अगर मैं घर से बाहर निकलकर न जाऊं तो खुद घर छोड़ देने की धमकी दे रही हैं बहू – – शायद मुझे ही चले जाना चाहिये? रेवती तो कम से कम खुश हो जायेगी। चार महिनें में मेरा बेटा आ जायेगा। क्या तब तक स्थिति टाली नहीं जा सकती – –।"

तने कम समय में कोहनी, घुटने, यहां वहां – – हर जगह नसें फूलने लगी थी और गांठ पडने लगी थी। उंगलियों के पोर सुन्न पडने लगे थे। कान का बाहरी हिस्सा फूल कर हाथी के कान जैसा हो गया था। पद्मावती का रंग तो वैसे ही गोरा था पर इस वक्त उस पर एक विशिष्ट चमक आ गयी थी।' स्किन बायोप्सी' टेस्ट की रिपोर्ट आज आनेवाली थी। शाम तीन बजे चर्मरोग विशेषज्ञ डॉ टराजन जी से मिलना होगा। बेकार बैठे–बैठे जब चिढ़ होने लगी तो पद्मावती डॉक्टर के पास चल पड़ी। उपरी मंजिल से एक सफेद मारूति कार जिसका स्टीरियों उंची आवाज में बज रहा था। कबूतर समान फिसलती हुई कार के पास आ कर रूक गयी। इस संकरी गली में गाडियों का आना–जाना लगा रहता हैं। "अरे ! – – यह तो मालती की गाड़ी हैं।"

"हूं – – बिलकुल उसी की हैं। गाड़ी से मालती के साथ ही महिला संघ की समस्त नारियां भी उतरी। शायद महिला की बैठक के लिये मुझे न्योता देने आयी? उनसे मिले अरसा गुजर गया – – ?
"मालती – – – " उत्सुकता भरी आवाज़ से पद्मावती ने पुकारा।
"मालती " – – सिर उठा कर उपर देखा।
"घर आओ न, बात करेंगे।" "हूं – – हूं – – आऊंगी।" आवाज में नफरत की झलक थी।
"मामी – – ठींक तो हो?" कोरस के रूप में आवाज उभरी। कई अर्थो का प्रतिरूप आवाज – – किवाड़ खोलकर इंतजार करना व्यर्थ गया। मक्खी–मच्छर भी नहीं फटका। ये लोग पहले झुण्ड में आते थे।

"मामी आपके घर की कॉफी पीने के बाद तो अड़तालीस घंटे कुछ और लेने की इच्छा नहीं होती – –"
आत्मियतासे हाथ थामकर रसोईघर में पहुंच जाते और कंधा थामकर पूछते रहते – – हो गया – – बन गया – –?

"मेरी बेटी के सिर पर हाथ फेर कर आशीर्वाद दीजिये मामी – – जल्दी शादी हो जायेगी।"
"आप हाथ से छू भर दीजिये मामी – – मेरा बेटा ठीक हो जायेगा।
"मेरे सिर पर हाथ रख कर मंत्र जपिये मामी – – – बड़ी उधेड़बुन में हूं – – – चैन चाहती हूं।"
ये नारियां पहले इस तरह की बातें किया करती थी।

पद्मावती की उंगलियां पहले बहुत पतली थी। फूल के समान कोमल और नरम, हाथ रूई के समान थे – – अब तो मुड़ने लगी थी, केवल उंगलियां ही नहीं वरन उसकी जिन्दगी भी। पद्मावती सबसे प्यार से मिलती – – अपनेपन से बातें करती और आत्मियता से पेश आती। मैं मां हूं – – धरती के सभी लोग मेरे बच्चे हैं। उनका व्यवहार सबके साथ इसी तरह का होता था।

अरी कन्नम्मा – – यह मेरी बेटी हैं? यहां आ बेटी – – उसके गाल सहलाती और नज़र उतारती। बच्चों की मदद करते समय उन्हें कताार में बिठाकर प्यारसे सहलाकर हाथ थामे पढ़ाती।

"ये बच्ची बहुत दुबली हैं – – साग खिलाओ।"
"ये लडकी जल्दी ही बड हो जायेगी।"
कितने लोगों का रोग उन्होंने अपने स्पर्श से दूर किया होगा।
"अरे सासू मां – – आप सब को छूती हैं – – – अछूत हो जायेगी – –" रेवती उन्हें छेड़ती।
मानव–मानव के बीच कैसा छूत! हम जैसे ही तो हैं वे लोग भी – – वही खून, मांसपेशियां, हड्डियां, सांस या भोजन – – हंसते हुए वह जवाब देती।

अब वे सभी बातें हास्यास्पद हो गयी हैं। सड़क पर चलो तो अन्य लोग कुछ हटकर ही चलते हैं। बस में बैठो तो कोई करीब नहीं बैठता – – अब जिन्दगी वास्तव में बिना लोगों के ही हो गयी हैं।
विलग रहना ही जिन्दगी बन जायेगी क्या?"
"अपने से विलग।"
"मित्रों से विलग।"
"देश से विलग।"
चुस्त जिन्दगी अब परायी सी लगती हैं? क्या इसे ही जिन्दगी से उखड़ना कहते हैं? क्या यही नरक हैं? अचानक ही आजतक मन को छू सकने वाला अकेलापन का दर्द हृदय को खरोंचने लगा – –

जिन्दगी से कोई लगाव, कोई रूचि नहीं रह गयी थी। लगता था जैसे निष्प्राण हो गयी हो।
कोई नहीं था! बैठकर बातें करनेवाला – – मिलकर हंसनेवाला – – हालचाल पूछनेवाला, कोई नहीं – – – कोई भी नहीं – –।
अनु को छुने का मन हो रहा था – – गोद में लिटाकर प्यार करने का मन हो रहा था – – पूरे घर में घूमने का मन हो रहा था – – सारे कमरों को छान मारने की इच्छा हो रही थी – – खूब स्वादिष्ट भोज्य पदार्थ बनाने का मन चाह रहा था – – । स्वछंद घूमने–फिरने का मन हो रहा था। स्वतंत्रता चाहिये – – इच्छानुसार जीने की स्वतंत्रता – – – हूं – – पर यह तो असंभव हैं – –

सीढियां उतरकर नीचे आयी। बाहर कोने में खड़ी रही। साढ़े चार बज रहे थे – – अनु के आने का समय हो गया था – – – आंखों में भरकर ले जाना चाहती थी – – अनु बड़ी हो कर प्रसिद्धि प्राप्त कर लेगी, तो क्या ये लोग उसे सुचित करेंगे? दादी को पोती के लिये कुछ देने देंगे? फूल की तरह विहंसती पोती को देखने देंगे? उसका माथा चूमने देंगे? नज़र उतारने देंगे?

"दादी – –"
कायनेटिक होंडा घर के सामने रूका।
"क्यूं दादी, धूप में क्यों खड़ी हो – – ?"
छोटी बच्ची के अबोध मन में उसके लिये कितनी चिन्ता – – "प्यारी मुन्नी – – – तुझे देखने के लिये ही तो खड़ी हूं – – ।" कहती हुई पास जा नज़र उतारने की इच्छा हुई।
"मत छुइये इसे – – ।" तूफानी वेग से रेवती ने अनु को अपनी ओर खींच लिया।
"चलो अनु – –" शेरनी की तरह रेवती गरजी।

"मैं होम में जा रही हूं।"
"सच, सच में!" रेवती ने संतुष्ट नज़र उसकी ओर फेरी।
"उफ् – – बला टली – – – अब जा कर चैन मिलेगा।" "अनु दादी को टाटा करो।"
"दादी कहीं – – बाहर जा रही हो क्या?"
"हां बेटी – –।"
"कब लौटोगी?"
"अब दादी नहीं आयेगी।" रेवती की आवाज में खुशी हिलोरें ले रही थी। सुनते ही अनु रोने लगी।
"हूं – – दादी चलिये मुझे – – तुम नहीं – – – मैं दादी के पास जाऊंगी – – ।"

हाथ छुड़ाकर जब अनु भागने को उद्धत हुई तो उसने उसे कसकर पकड़ लिया। "जल्दी से जाती क्यों नहीं? तमाशा करना हैं क्या? बच्ची को रूलाना है क्या? मरने तक आपकी यह हरकतें चैन नहीं लेने देंगी – – !"
अब और थोड़ी भी देर रहना उनके लिये मुश्किल हो गया।

हे भगवान! – – मेरी आवाज़ सुन रहे हो – –
कमरे से बाहर निकल बिल्ली की तरह पंजों पर चलने पर भी रेवती को शक हो जाता था।
"क्या आप सोफे पर बैठी थी। बदबू आ रही हैं।"
"रसोईघर में गयी थीं – – गंध आ रही हैं।"

अद्भुत जंजीरे – – – कभी न तोड़ सकनेवाली जंजीरे!" हे भगवान! अब सहा नहीं जाता – – –
मुझे शीघ्र बुला लो।" भगवान की मूर्ती के सामने यह करूण कंदन करती – – अकेलेपन की नारकीय वेदना – – – ताली बज़ाकर मज़ाक बनाती – – –। प्रेत की जिन्दगी भी इससे बेहतर होगी – –।

सड़क उसकी हंसी उड़ाने लगी। घर लौटने में चार बज गये। ' स्किन बायोप्सी ' टेस्ट पोजिटिव था। पद्मावती निष्प्राण शरीर लिये घिसटती हुई घर आयी। ऐसी सजा क्यों? पुत्र, बहू, पोती, समाजसेवा, जैसे छोटे से दायरे में निश्चिंत जी रही मुझे, रिश्तों की समाधि क्यों मिली? अब मैं इस घरमें नहीं रह सकती। घर छोड़ने का समय आ गया हैं। परिवार से अलग होना ही पड़ेगा।

"किसी को मत छुइयेगा – – – होम में जाना ही बेहतर होगा। इस चिठ्ठी को रख लीजिये। आज ही भर्ती हो जाइये।" डॉक्टर ने भी कह दिया।
अब चलना? चलना ही होगा – – – मानवीय गंध – – रिश्तों की गंध – – – पोती की गंध से दूर – – यह भी तो एक सुरक्षित प्राणमय कब्र ही हैं? प्राण निकलने के बाद जमीन के नीचे कब – – –
मन विचारों के सागर में गोते लगाने लगा। बुरे–बुरे ख्याल आने लगे – –

दो साडियां और दो ब्लाऊज थैले में ठूंस लिया।। अनु की फोटो मिल जाती तो मन निश्चिंत हो जाता – – फोटो तो छुने से अशुद्ध नहीं होगा न – – – बच्ची की फ्राक मिल जाती तो अच्छा रहता – – ।

मौत के समय पोती की सुगन्ध मिल जाती तो उसके साथ निश्चिंत हो मौत को गले लगा लेती।
जाने से पहले काश एक बार अनु को देख पाती! छू पाती – – ? चूम सकती – – – जन्म सार्थक हो जाता।

"मैं चलती हूं – – बच्ची का ख्याल रखना – – –" पद्मावती बिना पीछे मुड़े तेजी से आगे बढ़ गयी।
"दादी – – – दा – – दी – – दा – – दी – – मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी – – मुझे भी ले चलो दादी।" अनु की चीख बढ़ती गयी।
छी – – नादान – – चुप रह – – – दादी के पास जायेगी?
"हूं – – !"
"तुम चुप रहो – – मुझे छोड़ो – – तुम गंदी हो – – – मुझे दादी ही चाहिये – – ।"
मां के हाथ से अपना हाथ जबरदस्ती खींचकर छुड़ा लिया अनु ने। और दौड़ती हुई सड़क पर पहुंच गयी – – "दादी मैं भी आ रही हूं – – – ।"

रेवती चिल्लाई "अनु रूक जा – – गाड़ी आ रही हैं।"
हाथ में पकड़े थैले को झटक कर स्कुटर को स्टैण्ड पर खड़ा कर जब तक रेवती सड़क पर पहुंचती तब तक अनु सड़क पर दौड़ने लगी थी। उस तरफ से तेज रफ्तार से कार आ रही थी – –
"दादी – – अनु – – दादी – – ।"

करीब आते अनु के करूणामय कन्दन को सुन कर पद्मावती मुड़ी – –। अनु तूफानी वेग से आती कार को बिना देखें दौड़ती चली आ रही थी। स्थिति की गंभीरता समझ, झपटकर बच्ची को गेंद की तरह उठा कर उसने उछाल दिया, कार पद्मावती को रौंदती हुई तेज रफ्तार से गुजर गयी।

"अनु – – –अ – – नु –।" आसपास की हवा में पद्मावती की धीमी आवाज घुल गयी।
"दादी ।" लंगड़ाते हुए अनु वहां पहुंची – – खून से लथपथ दादी से लिपट – – – "मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी दादी – – मुझे भी ले चलो – – दादी – –। दादी का चेहरा अपनी ओर मोड़कर सुबकने लगी।
कितनी तड़प और छटपटाहट थी दादी के मन में इस पोती को छूने की। उस स्पर्श की गरमाहट का अनुभव कर, निश्चिंत मुस्कान बिखर गयी थी होठों पर – – ।

टूटा हुआ स्वर — लक्ष्मी रमणन

"प्रारंभ करें?"
"जी हां।"
"स!...प!...अ...!"
उनकी गुरू गंभीर और सुस्पष्ट वाणी मंदिर के घंटे की नाद-ध्वनि के सहज गूंज उठी। सभी स्वर उचित स्थान पर व्यक्त हुए। मैं स्वभाव से ही बहुत सकुचानेवाली थी उन दिनों। इसलिए जब संगीतज्ञ गुरूमूर्तिजी मुझे संगीत की शिक्षा देने के लिए आये तो बस उनकी वाणी सुनती रही, सिर उठाकर उन्हें देखने से डरती रही। पूरा-पूरा ध्यान उन्हीं की वाणी पर केंद्रित था। अचानक उन्होंने प्रश्न किया।
"कितने कीर्तन सीखे हैं तुमने?"
"जी! कुल पचास के करीब होंगे।"
"अच्छा! वर्णम?" (संगीत शिक्षा में प्रयोग का एक शब्द)
"बीस!"
"राग आभोगी का वर्णम जरा गाओ।"

बस! मैं घबरा गयी। एक ओर डर, दूसरी ओर लज्जा! मन व्यग्र हो उठा। 'अकेले कैसे गा सकूंगी?' सो भी अपरिचित व्यक्ति के सामने?
कक्षा में हमेशा हम सभी छात्राएं एक साथ सामूहिक रूप में ही गाती थीं। फिर भी तब कोई चारा न था। इसलिए जैसे-तैसे डरते हुए गाने लगी। भय और उलझन के कारण तीन जगह पर ताल गीत ठीक नहीं थी। इस पर गुरूमूर्तिजी 'रूद्रमूर्ति' बन गये। मुझे एकटक घूरने लगे। बस, मैं कांपने लगी। आवाज रूंध गयी।

सच कहूं तो बात यह कि उन दिनों संगीत सीखने में मुझे विशेष रूचि या लगन नहीं थी। जब मद्रास में थी, मैलापुर के एक घर के 'आउट हाउस' में कोई वृद्धा नारी संगीत पाठशाला चलाती रही। मां के आग्रह के कारण मुझे भरती होना पड़ा था।

दिल्ली आने के बाद 'गुरू परिवर्तन' हो गया।

एक वर्ष के बाद मां की दौड़धूप के परिणामस्वरूप सभा से गुरूमूर्तिजी को भेजा गया था।
खैर! ...
"किसने सिखाया! ताल बेताल है!"
" ..."
"ताल मिश्रचाघु बजाओ।"
" ..."
"नहीं मालूम! जाने दो! ताल 'रूपकम्' ही सही!"

मेरी आंखें सजल हो गयीं थीं। उन्होंने देख लिया तो गुस्से के साथ स्वयं जोर से हाथ फर्श पर ताल मारा ...टक, टक ...।
"यह है रूपकम्, समझीं।"
मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। सिर उठाकर उन्हें देखने का भी साहस नहीं हुआ।
"सुनो! स्थिति ऐसी है कि तुम्हारे लिए अब मुझे प्रारंभ से, याने सरलि वारिसै से संगीत-पाठ सिखाने पड़ेंगे।"
एकदम चौक पड़ी। कहां मेरे कीर्तन ...और यह सरलि वरिसै। बाप रे! मुझे रोना आया।
"सर!" धीरे-से मुंह खोला कि नहीं, वे बोल पड़े, "संगीत शास्त्र के लिए राग, भाव और ताल तीनों ही अपेक्षित हैं। 'रिद्म एंड बीट' दोनों अभिन्न और अन्योन्याश्रित होने पर ही संगीत की शोभा बढ़ती है। यह भी नहीं मालूम! बिना सही नींव रखे पचास कीर्तन सीखकर हवाई महल बनवाने का साहस किसने किया?"

गुरूमूर्तिजी चले गये। उनके जाने के बाद घर में तूफान उठा।
"मुझे इस गुरूजी से संगीत सीखना नहीं।" मैंने हठ ठान लिया। "कौन पुनः अ, आ, इ, ई, से ... 'सरलि वरिसै' से सीखे? नहीं ...मुझसे यह नहीं होगा।"
"उन्होंने यों ही मजाक किया होगा।"
पिताजी यों ही मजाक किया होगा।"
पिताजी ने गुरूमूर्तिजी का पक्ष लिया। "यही नहीं, तुम्हारे लिए भी तो अपनी गल्तियों को सुधार लेना अच्छा ही है।"
अब मां की बारी थी।
"तो क्या? ...इस विस्तार में ...इतनी गहराई में जाने की क्या आवश्यकता है? हमारी बेटी को तो रंगमंच पर संगीत कार्यक्रम थोड़े ही देना है। कल जब विवाह की बात उठेगी, तो चार गीत गाने होंगे? बस! इतना ज्ञान काफी है।"
"मुझे यह संगीत कला, अभ्यास, ब्याह कुछ नहीं चाहिए। मुझे चैन से रहने दें।"
"हां! हां! सदा सर्वदा हाथ में कहानी की कोई किताब लेकर चुपचाप बैठी रहो, वही चाहिए।" — मां को अच्छा संदर्भ मिला मुझे कोसने का।
लेकिन इधर मेरा हठ भी कमजोर नहीं हुआ।

आखिर ...
निर्णय हुआ कि पिताजी सभा के सचिव से फोन पर बात करेंगे। दूसरे किसी संगीतज्ञ का प्रबंध करने की प्रार्थना भी की जाएगी। सबको यह स्वीकार्य था।

अगले दिन पिताजी शाम को दफ्तर से सभा गये। जब वापस आये जरा देर हो चुकी थी। ऐसा समाचार लाये, जिसे सुनकर पहले तो मेरा मन किल्लोलें करने लगा। परंतु तुरंत अंतर्मन में एक वेदना ...कसक भी हुई।
पिताजी ने बताया, "पता चला कि गुरूमूर्तिजी का स्वभाव ही कुछ ऐसा है। जहां भी जाते, ऐसे ही शास्त्र, संप्रदाय, रूढ़ि आदि की बहस करते हैं। अंत में बात बिगाड़कर या खुद रूठकर चले जाते हैं। यह भी सुना कि इसके पहले भी उनके बारे में अनेक शिकायतें पहुंची थीं। और इन सबके कारण आज उन्हें सभा से ही निकाल दिया गया है।"

आत्मग्लानि से मैं अंदर ही अंदर कुढ़ती रही।
'जो लोग कर्तव्यपरायणता से पूरी निष्ठा और लगन के साथ कार्यरत होते हैं, उन सबकी क्या यही दुर्गति होगी?' सोचा। फिर भी मन जरा शांत हो रहा था यह सोचकर कि 'मेरी वजह से उन्हें सभा से निकाला नहीं गया।'

कुछ दिनों के बाद ...एक शाम को मैं घर में अकेली थी।

मां–बाप गणेशजी के मंदिर में प्रवचन–कार्यक्रम सुनने के लिए गये हुए थे।
दरवाजे पर घंटी बजी। दरवाजे के पास जाकर उसमें लगे छोटे 'लेंस' के सहारे उस पार देखा। गुरूमूर्तिजी खड़े थे। मैंने दरवाजा नहीं खोला। अंदर से ही जोर से कहा, "मां–बाप नहीं हैं।"
"बेटी! जरा दरवाजा खोलो! कुछ बातें करनी हैं।"
दरवाजा खोलकर मैं कुछ दूर जा खड़ी हुई। वे अंदर आये। कुछ झेंपते रहे।
"बैठिए।"
"थैंक्स!" कहते हुए वे बैठ गये।
"देखो बेटी!..."
"जी! मेरा नाम श्यामला है।"
"उस दिन जब आया था, तुम्हारा नाम तक नहीं पूछा। हूं...अगली ट्यूशन के लिए देर हो जाएगी — इसी जल्दबाजी में था। लेकिन, देखो! कोई भी इस पर गौर नहीं करता कि कितना सच्चा हूं। कितना कर्तव्यपरायण हूं। कर्मठ हूं!.. .हां, जमाना बहुत बदल गया है। आजकल तो सच बोलने के लिए भी दाम चुकाने की नौबत आ गयी है। पैसा लेकर राग 'कल्याणी' हो या राग'काम्वोदी' ...कुछ अंतर देखे बिना जो आगे बढ़ते हैं, उन संगीत–विद्वानों में मैं नहीं हूं। मेरे अपने सिद्धांत है। शुद्ध मन और शुद्ध कार्य का मैं पक्षधर हूं। मेरी यही अभिलाषा है कि लोग कह सकें कि "यह अमुक विद्वान की शिष्या है। इच्छा है कि मेरी एक विशिष्ट रीति हो। रसिक जब दूसरों से उस रीति को अलग रूप से पहचान सकें और कहें कि 'वह बहुत बढ़िया है।' एक यही आशा लिए जीता हूं कि शिष्यों से गुरूजी को गौरव बढ़े। ...आयी बात समझ में।"
"सुनो श्यामला! उस दिन मैंने जो कुछ कहा था, बुरा मत मानना! तुम रसोईघर में गाओ या भगवान की मूर्ति के समक्ष दीप जलाकर भजन–कीर्तन करो, गीत–गायन की परिपाटी का स्तर अच्छा होना चाहिए। त्यागराज भागवतर ने 'राग तोड़ी' में एक कीर्तन रचा है। उसका भावार्थ है ः
"निद्रा त्यागकर प्रातःकाल उठकर, तंबूरा बड़े प्यार से बजाते हुए सुस्वर, श्रुतिलय के साथ, पवित्र मन और श्रद्धाभक्ति के साथ, जो तुम्हारा रामकीर्तन करें, उन पर तुम्हारी अनुकंपा रहती है।"

आगे उन्होंने उक्त पंक्तियों को भावसहित गाकर सुनाया। कितना अच्छा गाते थे। जब गीत समाप्त हुआ, उनके नयन आर्द्र हो चले।

उसी समय बाहर कार रूकने की आवाज आई। माता-पिता जीने से ऊपर चढ़ आये।
"वाह! गुरूमूर्तिजी! आइए, आइए।"
"कल्याणी! देखो विद्वान के लिए कॉफी बनाकर ले आओ।"
पिताजी ने उनका स्वागत किया।
अतिथि-सत्कार में उनको कोई पराजित नहीं कर सकता।
"जी नहीं! मैं यह बताने आया हूं कि उस दिन भले कुछ सख्त कहा हो, लेकिन मुझे बुरा मत समझें।"
"गुरू महाशय को पूरा अधिकार है कि शिष्या से गलती होने पर सुधारें। इसमें बुरा मानने की क्या बात है?"
गुरूमूर्तिजी ने बड़ी कृतज्ञता के साथ उन्हें देखा!
"कल्याणी! पत्तल पर खाना परोस दो। ये यहीं खायेंगे।" -- पिताजी ने मां से कहा।
"जी नहीं।" — गुरूजी सकुचाते रहे।
"सुनें। मुझे भूख लगी है। दोनों खाते हुए आगे बातचीत करेंगे। आइए!"

दोनों भोजन करने के लिए उठे।

पांच मिनट में मां ने उनके लिए व्यंजन परोसे। गरमागरम सांबर, साग-सब्जी, टमाटर का रस्सम ... । गुरूमूर्तिजी शायद बहुत भूखे थे। जल्दी-जल्दी खाते रहे। भरपेट खाकर संतुष्ट हुए।

उठकर हाथ धोये। "अन्नदाता सुखी भव। आप दीर्घायु हों। अतिथि की भूख का अनुमान करके प्रेमपूर्वक आपने भोजन कराया, ऐसा करूणभाव आजकल दिल्ली में देखना बेहद आश्चर्य है।"
पिताजी का अट्टाहास गूंज उठा।
"श्यामला के लिए कल से ही आप ट्यूशन आरंभ कर दीजिए। सप्ताह में दो कक्षाएं लें, पर्याप्त होंगी। अपनी फीस बताएं। जो भी हो, वही दे दूंगा। अपनी जान-पहचान की दो-चार जगह आपके बारे में बताऊंगा। बात बन जाएगी। आप कहां रहते हैं?"
"मोतीबाग 'सी' दो में एक सर्वेंट रूम में हूं।"
"आप पता दीजिए! 'वायस ऑडिशन' के लिए आवेदन कीजिए। रेडियो में आधे घंटे का गीत कार्यक्रम अवश्य मिल जाएगा। मेरा एक मित्र है। वह इस दिशा में सहायता करेगा।"

नौकरी चली जाने से खाली हाथ जो थे, उन्हें एक ही दिन में सीढ़ियों के ऊपर चढा देने का प्रयास किया पिताजी ने। ऐसा लगा कि अत्यधिक प्रसन्नता के कारण गुरूमूर्तिजी रो पड़ेंगे।

मेरी ट्यूशन शुरू हुई।

उनकी आवाज सुमधुर और गंभीर थी। अनायास सभी स्वर लहरियां उचित स्थान पर सुस्वर गूंजते थे। स्पष्ट था कि ज्ञान और श्रम दोनों के तालमेल ने उनकी उन्नति में साथ दिया है। संगीत कला के प्रति तब मुझे कोई विशेष अभिरूचि नहीं थी। लेकिन उनके अधीन शिक्षाभ्यास प्रारंभ करने के बाद मैं श्रद्धा-भक्ति के साथ वह कला सीखने लगी। अब विशेष रूचि और निष्ठा भी होने लगी।

कुछ दिनों में रेडियो पर उनका पहला प्रोग्राम आया। उसी दिन शाम को हमारे घर आते समय वे सूजी हलवा की एक पोटली लाये। पिताजी को दी, "मां के हाथ का बनाया हुआ है। आपको देने के लिए अभी कुछ देर पहले बनाया गया। आप ही के प्रयत्न और प्रोत्साहन से यह कार्यक्रम संपन्न हुआ। नहीं जानता कि मैं अपनी कृतज्ञता किन शब्दों में और कैसे प्रकट करूं।" उनकी वाणी गद्‌गद् हो उठी।
"ऐसा मत कहें। आपमें क्षमता हैं। परिश्रमी हैं। आपकी विद्वत्ता के कारण ही यह अवसर मिला है। आपका भविष्य बहुत अच्छा और उज्ज्वल होगा। मुझे पूरा विश्वास है।"

पिताजी आत्मीयता के साथ विद्वान की प्रशंसा करने लगे। गुरूजी इससे अधिक प्रभावित और भावुक हो गये। कहा, "आपका आशीर्वाद हो, वही पर्याप्त है।"

आर्थिक दृष्टि से उनकी स्थिति शोचनीय थी। मुश्किल से घर-बार चलता था। कभी-कभार ट्यूशन की फीस अग्रिम के रूप में बहुत संकोच के साथ मांग लेते। कभी राशन का चावल, शक्कर आदि भी।

उनके घर में उनकी मां, पत्नी ललिता और तीन वर्ष की बिटिया थी। नवरात्रि का त्योहार आया। मां ने उन्हें एक दिन न्योता दिया।
"ललिता को इन दिनों में कभी हल्दी-कुंकुम के लिए साथ लाइए।"

गुरूजी की पत्नी उतने गौर वर्ण की नहीं थी, फिर भी चेहरा आकर्षक था।
"गीत गा सकती हो?" मां ने प्रश्न किया।
"विवाह के पहले गाया करती थी। फिर छोड़ दिया। सब भूल चुकी हूं।"
"समझी नहीं!"
"विवाह के पूर्व जब ये 'लड़की' देखने के लिए आये तो मैंने मरकतवल्ली का गीत गाया। उस गीत में कहीं गलती हो गयी तो क्रोध में दांत पीसने लगे। विवाह के बाद ससुराल आते समय मायके में ही श्रुतिबक्स ऊपर अटाली में छोड़कर चली आयी। संगीत कला का लक्ष्य आनंदप्राप्ति है। मुझे तब डर हो रहा था कि कहीं मेरे संगीत ज्ञान के कारण वैवाहिक जीवन में झगड़ा उत्पन्न न हो। और हां, ये तो सिद्ध गायक हैं ही। मुझे गीत गाने की क्या आवश्यकता है?" सहजभाव से हंसते हुए ललिता ने कहा।

पिताजी के प्रयत्नों से गुरूमूर्तिजी के लिए 'अंतर्राष्ट्रीय केन्द्र' में एक संगीत-कार्यक्रम का आयोजन किया गया।

जब तक मुहूर्त और सुअवसर न आये, तब तक ही चिंता और व्यग्रता। एक बार अवसर हाथ आये, फिर एक के बाद एक अवसर आते ही रहेंगे। है न बात सच? गुरूमूर्तिजी का संगीत कार्यक्रम सुनने के लिए ऋषिकेश से दक्षिण भारत के एक स्वामीजी आये थे। वे गुरूजी की कला और विद्वत्ता से इतने प्रभावित हुए कि उनसे संबंध जोड़ लिया। अपने आश्रम के प्रार्थना गीतों के लिए राग और लय मिलाकर उन्हें कैसेट में रेकॉर्ड करके सौंप देने की प्रार्थना की। यह गुरूत्तर दायित्व का कार्य गुरूजी ने अत्यंत श्रद्धा भक्ति से किया। बस, भाग्य चमकने लगा। फिर एक समारोह में एक जाने-माने राजनीतिज्ञ के हाथों उस कैसेट का विमोचन किया गया। यश और धन का मार्ग एक साथ खुल गया।

पहला कैसेट ही हजारों की संख्या में बिक गया। यह अपने आप में एक ऐतिहासिक घटना थी।

शादी के अवसरों पर संगीत-कार्यक्रम के लिए इन्हें निमंत्रण दिये जाने लगे। साथ ही दूरदर्शन से भी निमंत्रण मिला। इस तरह बहुत छोटी-सी कालावधि में ही वे अत्यंत प्रसिद्ध हो गये।

मेरी परीक्षाएं निकट आ रही थीं। इसलिए संगीत अभ्यास अस्थायी रूप से स्थगित किया गया।

अपनी शादी का निमंत्रण देने के लिए मोतीबाग की अपनी एक सहेली के घर मुझे खुद जाना पड़ा। वापसी पर गुरूजी के घर पर भी गयी। देखा, वहां एक नये किरायेदार थे। उनसे पता चला कि गुरूमूर्तिजी मुनिरका में एक नये घर में चले गये हैं। उन्होंने मुझे पता भी दिया।
मैंने बात वहीं नहीं छोड़ी।
पता खोजकर मुनिरका पहुंची।
गुरूमूर्तिजी की पत्नी से ही मिल पायी। उनके हाथों, गले और कानों पर सोने के आभूषण जाज्वल्यमान थे लेकिन मुंह की स्वाभाविक कांति और शोभा गायब! उसकी जगह शोकमुद्रा और रूखापन स्पष्ट था। नयनों में एक तरह की घबराहट

थी। बातचीत में थी वह आत्मीयता या सहजता नहीं थी। सहमते हुए बाते कीं। गैस, स्टोव, टेबल फैन, टेलीविजन आदि सभी सुविधाएं वहां पर थीं। घर में नयी रौनक थी।

मन की बात जबान पर आयी। मैंने कहा, "लगता है, गुरूजी की उन्नति बिजली की तेज गति से हो चुकी है। मैं बहुत खुश हूं।"
उन्होंने दीर्घ श्वास छोड़ा। थोड़ी देर के बाद कहने लगीं, "साथ ही कुछ अवांछनीय आदतों के शिकार भी बने हुए हैं। कल शराब के नशे में घर आये, एकदम हलचल मचा दी। असह्य वेदना हुई। क्या से क्या हो गये हैं? कैसी दुर्गति! अपनी बेटी से यों मारपीट की कि कुछ कहते नहीं बनता है। पता नहीं कब और कहां जाकर यह सब समाप्त होगा। मैं बहुत तंग आ गयी हूं।"
"चिंता मत कीजिए। सब ठीक हो जाएगा।"
"खाक ठीक होगा! मुझे अब कोई आशा नहीं। मन किसी पर विश्वास नहीं करता। श्यामला! तुम्हारे पिताजी को इनके प्रति अत्यंत श्रद्धा भक्ति है। तभी तुम्हारी शादी के सिलसिले में रिसेप्शन में इन्हें गायन की प्रार्थना करने के लिए यहां तक आये। आज वह जो कुछ हैं, यश और कीर्ति — तुम्हारे पिताजी द्वारा दिखाये गये मार्ग के कारण ही हैं। उन्हीं के प्रोत्साहन और सिफारिश के कारण ये इतना नाम कमा सके। धन, मौका सबके पीछे उन्हीं की कृपा है। उनके प्रति कृतज्ञ होना चाहिए है कि नहीं? लेकिन तुम्हें सुनकर आश्चर्य होगा कि ये अपने अहं के कारण उन्हें भूल चुके हैं। उनके मुंह पर ही साफ इन्कार कर दिया। कैसी धूर्तता? मुझे तो ऐसा हुआ कि धरती फट जाए और मैं वहीं समा जाऊं! छिः ऐसा भी कोई करता है? वे कितने बड़े व्यक्ति हैं; घर आकर इन्हें बुलाया! पर इनका यह दुर्व्यवहार! मैं कभी इन्हें क्षमा नहीं करूंगी। मैं हार गयी हूं। दिल टूट गया है। इन्हें क्या हो गया? क्यों मुझ पर ऐसा बीत रहा है? " कहते-कहते वे रो पड़ीं। गला रूंध गया।

पिताजी ने यह बात मुझे नहीं बतायी थी। जिस गुरूजी को महान संगीतज्ञ और विद्वान समझ रखा था, उन्हीं के हाथों उनकी वह छवि टूटे यह शायद पिताजी बर्दाश्त न कर सके। उन्हें भारी दुःख हुआ होगा और यह बात मन ही मन दबाकर चुप हो गये होंगे। मैंने यही सोचा।

मेरी शादी दिल्ली में ही संपन्न हुई। परंतु गुरूमूर्तिजी के घर से कोई नहीं आया।

कभी-कभार जान-पहचान के या परिचित लोगों का संबंध वैसे ही बीच में रूक जाता है जैसे कि रेलगाड़ी में यात्रा के दौरान उत्पन्न होनेवाला स्नेह-संबंध। यह बात भी वैसे ही भुला दी गयी।

कभी फुरसत मिलने पर गाने का मन होता तो गुरूजी की याद आती। गाने लगती तो उनकी मधुर आवाज स्मरण हो आती। दिल दुखने लगता।

मां ने एक बार एक चिट्ठी में उनके बारे में कुछ लिखा था। वे आजकल बड़े आदमी बन गये हैं। समाज में जाने-माने हो गये तो हमें पहचानते नहीं। शायद शर्म आती होगी! मधुरगीत के पांच-छःह कैसेट, हिंदी भजन के दो कैसेट उनके निकल चुके हैं। सुनने में आया कि उनका 'रेट' भी, ट्यूशन के लिए चार सौ रूपये से कम नहीं हैं। एक बार, अभी हाल ही में, एक शादी के रिसेप्शन में मैं और तुम्हारे पिताजी दोनों गये। उनका संगीत-कार्यक्रम था। बड़े चाव के साथ बैठे रहे। रात के सात बज चुकने पर भी वे मंच पर नहीं आये। बड़ी देर से जब आये, नशे में लड़खड़ाते रहे। सारा शरीर कांप रहा था। हमें बहुत दुःख हुआ। हमने घर की राह ली। बाद में मालूम हुआ कि गुरूजी ने विद्वान के हाथ से वायलन उठा लिया था और घुमाते हुए आक्रोश और अट्टहास के साथ खलबली मचा दी थी।'

यश अपने आप में एक नशा है। ...उस पर शराब के नशे की क्या जरूरत है?
कहीं पढ़े हुए ये वाक्य मुझे याद आये, "जिंदगी में सफलता से मैं घबराता हूं, क्योंकि वह मुझे भी परिवर्तित कर देगी।'

अंग्रेजी के एक–दो साप्ताहिक, मासिक पत्रिकाओं में गुरूमूर्तिजी की विद्वत्ता की आलोचना पढ़ने को मिली। साथ ही इतर समाचार भी ... ।

दो वर्षों के बाद छुट्टियों के दिन माता–पिता से मिलने पति और बच्चों के साथ मैं दिल्ली आयी।

कनॉट प्लेस का चक्कर काटे बिना दिल्ली घूम आने का मजा कैसे? हम सब एक दिन वहां गये। खरीद–फरोख्त के चक्कर में इधर–उधर बिखर गये।

पुस्तक की एक दूकान के सामने 'वे' खड़े थे। सर के बाल सफेद; मुंह पर झुर्रियां; आंखें काली और अंदर धंसी हुई । और साथ ही एकदम लाल!

एक क्षण के लिए दुविधा हुई, "बोलूं या नहीं?"
तुरंत ....
"जी! नमस्कार!"
"कौन? पहचान न पाया।" — खुरमुरी आवाज में प्रश्न किया। 'उनकी वह मधुर आवाज कहां चली गयी?'
"आपकी शिष्या श्यामला।"
"आहा! ला मिनिस्ट्री के श्री रामस्वामीजी की बेटी! माता–पिता कुशल तो हैं न?"
अप्रत्याशित, यह कुशल–क्षेम का प्रश्न मेरे लिए आश्चर्य की बात थी।
"हां जी! सब सकुशल हैं।"
"तुम कहां रहती हो?"
"जयपुर में।"
मेरी नजर उनकी गंदी धोती, कुरते पर टिकी थी।
"जी! क्या आपकी तबीयत खराब है?"
"नहीं! तबीयत तो ठीक हैं। लेकिन मन टूट गया है।" ...हमें आगे उन्नति करनी है। बढ़ना है। लेकिन अहं को बढ़ने नहीं देना है।' ललिता ने मुझे यही समझाने के लाख प्रयत्न किये। सब व्यर्थ। आखिर दम घुटकर रोगग्रस्त होकर वह चल बसी! उसके भी पहले ...प्यारी बेटी थी। एक दुर्घटना के कारण छह मास तक की खींचातानी रही ...और फिर सब खतम। बस अब साथ में मांजी हैं। पगली–सी हैं। हमें सुखी रहने के लिए तो यश और धन चाहिए न? लेकिन जब वे मिल जाते है तब चैन–सुख दूर चले जाते हैं। सुख–शांति के लिए लालायित होकर मन भटकने लगता है। लेकिन ...नहीं ... । मुझे कुछ भी समझ में नहीं आता। जब उस दिन की याद करता हूं जब सारे संसार को अपनी मुट्ठी में समझता रहा, बहुत ग्लानि होती है। क्या हो गया था मुझे। अहं? लज्जित होता हूं कि क्या ऐसा मदोन्मत्त व घमंडी था? बड़ी आत्मीयता और श्रद्धाभक्ति के साथ कत्तनुवारिकी गीत गाकर प्रसन्न होनेवाला 'गुरूमूर्ति' कभी का नष्ट हो चुका है। साथ ही और क्या–क्या नष्ट हो गये — यह हिसाब–किताब अभी पूरा न कर पाया हूं।

"संगीत–साम्राज्य के शासक सप्तस्वर हैं। आरोहण और अवरोहण में उन स्वरों को निर्दिष्ट स्थान पर ही ध्वनित होना है। अगर स्थानांतरण हो जाए और आरोहण के ऊपर अवरोहण के स्वर गायें जाएं तो असंगति है; अपस्वर हो जाएगा। है कि नहीं? वैसे ही मानव को चाहिए कि वह उन्नति, अवनति में समरस भाव और एक मन के साथ समाज में व्यवहार करे। स्थानांतरित स्वर की भांति अपने जीवन के अपस्वर का कारण स्वयं मैं ही हूं। आजकल संगीत कार्यक्रम, ट्यूशन कुछ नहीं हैं। आखिरी कैसेट जो निकला, उसकी बिक्री भी संतोषजनक नहीं। अपनी तबाही का कारण मैं ही हूं! सिर्फ मैं! उत्तरोत्तर उन्नति करते जाते समय सदा ऊंचाई की ओर ही नहीं, नीचे भी झुककर देखना है। नहीं तो मेरी तरह पांव फिसलकर गर्त में ...अधोगति की ओर ... । पिताजी से कहना कि एक दिन उनसे मिलने आऊंगा।" और गुरूमूर्तिजी विदा लेकर चले गये।
पीछे से तभी मेरे पति इस ओर आ रहे थे। नजदीक आने पर पूछा, "कौन हैं ये? जो अभी जा रहे हैं?"

"टूटा हुआ एक स्वर है।"
मेरे पति को यह बात समझ में नहीं आयी होगी।

गोर्की का पात्र — वी चंद्रशेखर

गोर्की की कहानी का अनुवाद कराकर दोगे न? वैसे तो आज रात कोई केस भी नहीं आनेवाला है। हमारे स्त्री-शक्ति संगठन की ओर से एक स्मारिका का विमोचन कराना चाहती हूँ। यह कहानी उसमें जरूर होनी चाहिए। प्लीज! ना मत कहना। दो कप चाय, तुम्हारे एकांत को भंग न करने का वादा करती हूँ, आफकोर्स, कृतज्ञतापूर्वक स्मारिका की एक प्रति पारिश्रमिक के तौर पर दे दूँगी।

उस रात को प्रसूति वार्ड में मैं एक हाउस सर्जन की हैसियत से ड्यूटी पर था। सरला ने गोर्की का कहानी-संग्रह, नोट बुक और कलम टेबिल पर इस तरह पटक दिए कि मानो सविनय आदेश दे रही हो। सरला मेरे साथ हाउस सर्जन कर रही थी। तब तक 'दास कापिटल' के मुख्य अंशों पर नर्स-छात्रों को दो घंटे भाषण देकर आई। अब वह मेरे साथ मुठभेड़ करने लगी।

सरला को देखता हूँ तो मुझे अचरज हो जाता है। बीस बरस भी अभी पार नहीं किए, पता नहीं उसे इतनी परिपक्वता कैसे आई? आम तौर पर इस उम्र की लड़कियाँ मधुर कल्पनाओं में भटकती हुई एक असहज और मायूस माहौल में जीती हैं।

लेकिन सरला ने इतनी छोटी उम्र में कालेज की छात्राओं को इकट्ठा कर 'स्त्री-संगठन' का आयोजन किया। वह हमेशा वर्ग-रहित समाज के बारे में सपने देखती रहती है। स्त्री समस्याओं पर परचियाँ और पुस्तकें छपाते हुए और खास मुद्दों पर जुलूस और धरना आयोजित करते हुए हमेशा व्यस्त रहती है। मुझे पलायनवादी कहकर पुकारती है और मेरी कहानियों को बिलकुल समय गुजारनेवाली सामग्री कहकर मजाक उड़ाती है। फिर भी सरला मेरी इकलौती अंतरंग सहेली है। हम दोनों मिलकर न कटनेवाली शामों को और जिन्दगी के उतार - चढ़ावों को नापते रहते हैं। जो भी हो अपनी स्मारिका की कहानी के लिए मुझे चुन लेना मैं अपने लिए बड़ी बात मानता हूँ।

रात को कोई आठ बजे एक औरत की प्रसूति हुई थी। तब से कोई काम नहीं था। ड्यूटी पर लगी गाइनाकालजिस्ट डाक्टर वसुंधरा जी भी कोई काम न रहने के कारण अस्पताल में चक्कर काटने के लिए चली गई। पी•जी• डाक्टर तथा सर्जन राधा पी•जी• के साथ 'उमराव जान' सेकेण्ड शो सिनेमा देखने चली गई। दोनों स्टाफ नर्स छात्र नर्सों के साथ घुल-मिलकर आपस में पुरानी यादों को बांटने लगीं।

गोर्की के कहानी-संग्रह पर हाथ लगाते ही न जाने क्यों मेरा शरीर रोमांचित हो उठा। जल-प्रपात की तरह प्रवाहमान साहित्यानुभूति को मैंने अंजुरी में भरने का प्रयास किया। उस स्तब्ध रात को पल पर भर के लिए आराम कर रहे सागर की तरह अस्पताल सो रहा था। छोटे बच्चों के अचानक नींद से जागकर रोने की आवाजों के सिवा मानव अस्तित्व से संबंधित और कोई चिह्न नजर नहीं आ रहा था। नोटबुक के अंदर पन्ने थके-हारे सफेद से एनीमिया पेशेंट की तरह फड़फड़ाने लगे।

अनुवाद करने वाली कहानी का नाम हैं - 'ए मैन इज बौर्न', जंगल के बीच में झुरमुटों के आड़ में प्रसव-पीड़ा से कराहती

हुई अकेली औरत को मदद करने वाले एक मुसाफिर की कहानी है वह। मुसाफिर को प्रसूति चिकित्सा के संबंध में ज्यादा जानकारी नहीं थी। फिर भी जो कुछ उसने जाना उसी के मुताबिक वह उस औरत को मदद करता है। उस माँ को बहुत शरम और नाराजगी होती है, फिर भी और कोई चारा भी तो नहीं था। दोनों के बीच में गहन मैत्री स्थापित हो जाती है। एक अपरिचित औरत जो जिन्दगी और मौत से लड़ रही थी, उससे स्पंदित होकर उस मुसाफिर ने जो साहसिक कार्य किया है वह अचंभे में डाल देता है। गर्भ से बाहर निकलनेवाले शिशु के सर को दोनों हाथों से पकड़कर सुरक्षित बाहर खींच लेना, समीप स्थित समुंदर के सच्चे मानवीय गुणों का प्रतीक है।

प्रसव के बाद वह थकी हारी उस माँ को चाय बनाकर पिलाता है, उसे अनुनय पूर्वक ढाढ़स दिलाता है, बच्चे को प्यार से पुचकारकर उसकी मुसकानों में प्राचीन-स्मृतियों की आहटें सुन लेता है। अंत में 'ए मैन इज बॉर्न' कहकर मुसाफिर सगर्व अपनी राह पकड़ लेता है। साधारण मानवों में मौजूद असाधारण गुणों को उजागर करना इस कहानी की विशेषता है। सिर्फ आठ पन्नों की सरहदों के बीच एक करूण रसार्द्रपूर्ण जीवन का आविष्कार किया है गोर्की ने। आम आदमियों में छिपे हुए मानवीय गुणों की पहचानना और उसे व्यापक पृष्ठभूमि पर दर्शाना गोर्की ज्यादा पसंद करते हैं। इस कहानी का अनुवाद करने के लिए अंग्रजी और तेलुगु भाषा का ज्ञान पर्याप्त नहीं है, मानवता की भाषा का भी ज्ञान होना जरूरी है।

अचानक वार्ड के बाहर के शोरगुल से मेरा ध्यान बँट गया। स्टाफ नर्स जोर-जोर से चिल्लाते हुए आई। 'डाक्टर साब! सर्वनाश हो गया। ताड़िकोण्डा से एक मरीज आई है। लगता है उसके पेट में बच्चा पल्टी खा गया है। तुरंत आपरेशन करना है। डाक्टर वसुंधरा जी न ड्यूटी रूप में हैं न घर पर। अस्पताल में कहीं भी उनका अता-पता नहीं हैं। पी॰जी॰ डाक्टर राधा जी अपने मित्र के साथ सिनेमा देखने चली गई। अब क्या करना है, कुछ समझ में नहीं आ रहा है। बच्चा और जच्चा दोनों की जान खतरे में हैं।' नर्स बहुत घबरा रही थी। सरला चेहरा लटकाए खड़ी है। 'अब कैसे निपटाया जाय इस मुसीबत को? राधाजी भी नहीं हैं। मरीज की हालत बहुत नाजुक है। तुरंत आपरेशन करने की जरूरत है। अभी वह बेहोश होनेवाली है। हम तो अभी छात्र ही हैं। अब तक ढंग से औजार पकड़ने का तरीका भी नहीं जानते। आँखों के सामने एक मरीज का इस तरह प्राण खो बैठना, हमारे लिए बड़ी बुरी बात होगी।' सरला भी काफी परेशान थी।

इस अस्पताल में ऐसे हादसे बहुत साधारण-सी बात हैं, फिर भी देखते-देखते ऐसा हो जाना हमें बड़ा अपराध सा लग रहा था। दो चार मिनटों तक चिंतित हो जाने के बाद मैंने साहसपूर्ण निर्णय ले लिया। अभी-अभी पढ़ी गई गोर्की की कहानी याद आ गई। एक मामूली मुसाफिर ने उस औरत की जो सेवा की, मन में कौंधने लगी। निस्सहाय स्थिति में एक मुसाफिर ने प्रसूति करानेवाली दाई की भूमिका निभाई। गोर्की की कहानी से प्रेरणा लेकर में आपरेशन करने के लिए तैयार हो गया।

'सिस्टर! पेशेंट को आपरेशन थियेटर में ले आइए। आपरेशन मैं करूँगा। ऐसे सैंकड़ों केस मैंने मैडम की बगल में खड़े होकर देखे हैं। इस हालत में इससे बढ़कर और कोई चारा नहीं है। जो भी होगा, उसकी जिम्मेदारी मैं अपने ऊपर ले लूँगा। आप जल्दी चलिए। एनस्थेसिस्ट को फोन कीजिए।' स्टाफ नर्स ने मेरी तरफ ऐसे देखा मानों ठीक से ग्लव्स पहनना भी न जाननेवाला यह लड़का आपरेशन कैसे कर पाएगा? लेकिन उसने भी जाना कि उस वक्त इससे बेहतर और कोई रास्ता नहीं था। नर्स पेशेंट को आपरेशन के लिए तैयार करने के लिए चली गई।

राजू! यह कैसा पागलपन है? यदि पेशेंट को कुछ हो जाए तो?' सशंकित मेरी तरफ देखते हुए सरला ने पूछा। 'चारों तरफ फैले अंधकार को देखते हुए उदास हो जाने के बजाय साहस कर एक छोटा सा दीप जलाना उत्तम है, – ये बातें तुम्हारी ही हैं न? कहकर मैं थियटर की तरफ चल पड़ा।

आपरेशन थियेटर में पाँव धरते ही मेरे अंदर विचित्र परिवर्तन आया। अकसर चाहे वह वार्ड हो या क्लास रूम, अचानक एक कविता का दौर मेरे अंदर प्रवेश कर एक ज्वाला की तरह मुझ पर हावी होकर मुझे एक ट्रांस में फेंक दिया करता

था। लेकिन उस वक्त मेरे मन पर कविता का प्रभाव नहीं रहा। सभी आवेगों को भूलकर एक सुशिक्षित सैनिक–सा बदल गया।

हाथ धोकर, ग्लव्स पहनकर आपरेशन टेबुल के पास चला गया। तब तक एनस्थिसिस्ट भी आ पहुँचा था। मरीज सभी भावनाओं से दूर बेहोश पड़ी हुई थी। 'मरीज के रिश्तेदार तंग कर रहे हैं। सरला जी को एक बार बाहर भेजिएगा।' घबराते हुए एक स्टुडेंट नर्स अंदर आ गई।

'आपरेशन के पहले मरीज का मर्द आवश्यक खून देने के लिए तैयार था लेकिन अब वह मुकर कर कह रहा है कि मैं पैसा दे देता हूँ, कहीं से खून मंगवाइए। क्या मिनटों में पैंसों से खून मिल जाता है? वह भी पाजिटिव बी ब्लड।' नर्स कुड़कुड़ाने लगी।

'मैं बाहर जाकर देखती हूँ, माजरा क्या है, तुम अपना काम संभालो।' सरला प्यार से मेरे कंधे पर थपकी देकर चली गई।

मैंने निचले वाले पेट के ऊपर और नाभी के नीचे एक पतली लकीर–सा चीरा लगाया। न जाने क्यों मेरे हाथ कांप गए। सैंकड़ों बार ऐसे आपरेशन करते हुए देख चुका हूँ। फिर भी अजीब–सा डर, सारे शरीर में फैल गया। सारा बदन पसीने से सराबोर हो गया।

चमड़े के नीचेवाली तहों को अलग कर, उभरने वाले खून को पैडों के सहारे रोकने का प्रयत्न करते हुए गर्भाशय को पहचान लिया। अंदर शिशु को बाहर खींच लिया। वह शिशु लड़का था। बच्चे को नर्स के हाथों में थमा दिया। उसने बच्चे को संभाला। मेरे अंदर जो कंपन और डर था, पता नहीं वह कब गायब हो गया था। सीधे लक्ष्य की तरफ बढ़ने वाले सैनिक की तरह आगे चल पड़ा। बाकी काम मुस्तैदी से पूरा कर हाथ धोने के लिए तैयार हुआ ही था कि पीछे से दो मुलायम हाथ मेरे कंधों पर थपकियाँ देने लगे और मेरे गाल का मृदुल ओंठों ने चुंबन किया। मैंने समझा कि वह शायद सरला होगी। मुड़कर देखता हूँ तो डाक्टर वसुंधरा मैडम थीं।

'आई ऐम प्राउड आफ यू माई बॉय! तुमने ऐसा आपरेशन किया कि मानो बरसों से तुम्हें अनुभव हो। कीप इट अप! जब तुम गर्भाशय खोल रहे थे तभी मैं आई थी। तुम्हें डिस्टर्ब करना नहीं चाहती थी, इसलिए पीछे खड़ी रह गई । तुम्हें बहुत बहुत मुबारक। जो तुमने मुझे इस हादसे से बचा लिया। यदि सही समय पर चिकित्सा न मिलने के कारण मरीज को कुछ हो जाता तो अस्पताल का गौरव मिट्टी में मिल जाता। जो साहस तुमने किया है, बड़ा रोमांचक है। इस घटना को मैं, बरसों याद रखूँगी।' मैडम ने मेरी तारीफ की।

आपरेशन थियेटर से बाहर निकलते हुए मुझे इतनी खुशी हुई कि व्यक्त करने के लिए भाषा की कमी महसूस हो रही है। ऐसे समय में सरला का वहाँ न होने और उसके मुँह से तारीफ न सुन पाने की वजह से मुझे थोड़ा अफसोस हुआ।

बड़ी खुशी से मैंने ड्यटी रूम में प्रवेश किया। कमरे में बेड पर लेटी हुई सरला। 'कांग्रेट्स! सिस्टर अभी बता कर गई कि आपरेशन सक्सेस रहा है। मैं बहुत कमजोर महसूस कर रही थी, इसलिए तुम्हारा साथ नहीं दे पाई। मरीज के रिश्तेदार ने खून देने से इन्कार कर दिया था। इस आपरेशन के लिए खून की जितनी जरूरत होती है मुझे मालूम है। मेरा भी खून बी पाजिटिव है .... ' सरला हंसते हुए कह रही थी। लेकिन मेरी आँखों में आँसू भर आए। कितना त्याग। जब मैंने गोर्की की कहानी पढ़ी तब उस कहानी के चरित्रों की भलमनसाहत और त्याग ने मुझे विस्मित कर दिया था। ऐसे बहुत थोड़े ही लोगों के रहने के कारण ही इस सड़ी–गली, धोखेबाज दुनिया में हम जी रहे हैं। मुझे लगा जैसे सरला ही सच्चे मायने में गोर्की का जीता–जागता चरित्र है।

चांदी का जूता

बालशौरि रेड्डी

संयोग की बात थी कि मैं जिस दिन अपने वकील शिवराम के घर पहुंचा। उसी दिन मेरे मित्र के पुत्र की वर्षगांठ धूमधाम से मनाई जा रही थी। भोज में निमंत्रित व्यक्तियों में वेंकेटश्वर राव को देख कर मेरी बांछे खिल गईं। उसी समय देखता क्या हूं एकदम उछल कर वह मुझसे गले मिला।

दूसरे दिन प्रातः मित्र का न्यौता पाकर नाश्ता करने उसके घर पहुंचा। सर्वप्रथम विलायती व कीमती अलसेशियन सोनी ने हमारा स्वागत इस तरह किया मानों वह यह जानती हो कि मैं उसके मालिक का अभिन्न मित्र हूं।

बाथरूम से सर पोंछते हुए वेंकेटश्वर राव सीधे बैठक में आ पहुंचा पंखा चलाया। अखबार हाथ में थमा कर कपड़े पहनने के लिए शयनकक्ष में चला गया। बैठक इस तरह सजाई गई थी मानों फिल्मी शूटिंग करने के लिए अभी अभी तैयार किया गया सेट हो। मैं मन ही मन अपने मित्र की पत्नी की अंलकारप्रियता का अभिनंदन करने लगा ।

साथ ही उससे अपनी घरवाली की तुलना करने लगा । दीवारों पर सुप्रसिद्ध कलाकारों की पेंटिगें सुशोभित थीं । सारी बैठक एकदम साफ सुथरी और मनमोहक थी । मैं सोचने लगा कि हॉस्टल में रहते वेंकेटश्वर राव कैसा लापरवाह रहा करता था । आज उसकी रूचि में ऐसा भारी परिवर्तन क्योंकर हुआ | वह सदा अपनी चीज़ें अस्त–व्यस्त रख छोड़ता था । उन्हें करीने से सजाने की उसकी आदत ही न थी। मैं चिढ़ कर उसे लाख समझा देता किन्तु उसकी लापरवाही में कोई परिवर्तन न देखकर हार मान चुका था ।कभी–कभी कहा करता था "यार तुम्हारी घरवाली ही शायद तुम्हें बदल सकेगी ।"अचानक मुझे स्मरण आया राव में तो कोई परिवर्तन न हुआ होगा ।उसकी श्रीमती रमा की कला होगी । "वाह रमा तो सौन्दर्य की आराधिका होगी ।

"भाई साहब नमस्ते शायद आप रास्ता भूल गए हैं जो हमारे घर आए ।" रमा एक सांस में कह गई। मैंने ब्लिट्ज़ को तिपाई पर रखते हुए दृष्टि उठाई तो देखता क्या हूं सामने हाथ जोड़े हंसमुख रमा खड़ी है।मैंने उठ कर अभिवादन का प्रत्युत्तर दिया ।तभी रमा पूछ बैठी "आप सुरेश की शादी में क्यों नहीं आए? हमने तो आपका बहुत इन्तज़ार किया।"

"क्या सुरेश की शादी हो गई ? मुझे न्यौता कहां मिला जो चला आता । निमत्रंण पत्र तो भेजा नहीं उलटे मुझ पर दोषारोपण कर रही हो । वाह उलटा चोर कोतवाल को डांटे ।"
"आप क्या कह रहे हैं ? हमने पहली किश्त में ही आपके नाम पोस्ट कर दिया था ।"
"हो सकता है रमा जी, पर मुझे मिलता तब न मैं आता । सच कह रहा हूं मेरे नाम कोई निमंत्रण नहीं आया ।" मैंने अपनी तरफ से पूरी सफाई देने की कोशिश की ।

शायद रमा के तर्क के सामने मैं हार बैठता तभी वेंकटेश्वर राय ने प्रवेश करके मेरी रक्षा की।

रमा नाश्ते का प्रबन्ध करने भीतर चली गई । थोड़ी देर बाद भीतर से बुलावा आया । भोजनालय में गुड़िया जैसी सुन्दर कन्या तश्तरियों में मिठाइयां सजा रही थी । वेंकटेश्वर राव ने अपनी बहू का परिचय कराया..... "यह सीमा.... मेरी पुत्र वधू ' जानते हो इसने एम.ए. प्रथम श्रेणी में किया है । विश्वविद्यालय भर में यह प्रथम आई । इसे स्वर्ण पदक भी प्राप्त हुआ है । फिर राव ने अपनी पुत्र वधू से कहा " बेटी चाचा को ज़रा वह पदक तो दिखलाओ।"

सीमा को शायद पदक दिखाना पसन्द न था । वह सर झुकाए चाय के प्याले मेज़ पर लगा रही थी । रमा दौड़ कर बैठक में गई। अलमारी से पदक लाकर उसने मेरे हाथ में थमा दिया।

"भैया हमारी बिरादरी में आज तक किसी ने स्वर्णपदक प्राप्त नहीं किया ।हमारी सीमा पर हमें गर्व है । यह तो रात दिन पढ़ती है । पी. एच. डी. भी कर रही है । कहती है कि मैं डी. लिट् भी करूंगी । मुझे डर है कि रात-दिन जागने पर बहू की तबियत कहीं बिगड़ न जाए । मैं लाख समझाती हूं कि बहू तुम आराम करो लेकिन हमारी बात सुनती ही नहीं । रसोई बनाती है खाना परोसती है ससुर की सेवा करती है साथ ही कॉलेज में पढ़ाती भी है ।"

"भाभी तब कोई रसोइया क्यों नहीं रख लेतीं ? कमाने वाली बहू से काम लेना तो ठीक नहीं है । लोग क्या सोचेंगे ?"
"मैं भी यही सोचती हूं लेकिन अपने हाथ का खाना ही अच्छा लगता है । काम भी क्या है. चार जने हैं । आखिर हमारा भी तो समय कटना चाहिए । काम करने से तबियत भी अच्छी रहती है ।"
"रमा झूठ बोलने की भी हद होती है । ये पराये थोड़े ही हैं ।

यार असली बात यह है कि रमा रसोइए के पीछे खर्च करना बेकार मानती है । मैंने एक दो नौकर रखे भी पर कोई न कोई बहाना बना कर इसने भगा दिया ।"
"तुम सारा दोष मुझ पर मढ़ते हो । तुम्हीं ने तो एक दिन नौकर को किसी काम का नहीं बताया इसलिए मैंने हटा दिया ।वरना मेरा क्या जाता है । कमानेवाले तुम हो और खर्चने वाले भी तुम्हीं हो । मैं आराम से बैठ जाती । मुझे क्या पड़ा है हाथ जलाने को " रमा खीज उठी ।

मैंने बीच बचाव के ख्याल से समझाया "अपना काम खुद करने में बुरा क्या है । भाभी का समय भी कटेगा और तुम लोगों को बढ़िया खाना भी मिलेगा । जब वह स्वयं खाना बनाने को तैयार हैं तो तुम रोकने की क्यों सोचते हो ।"

" अगर वह खुद बना ले तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है मगर बेचारी बहू से सारा दिन काम लेती है ।उसे पढ़ने की फुसरत नहीं मिलती ।जब वह छह सौ रूपए मासिक कमा कर लाती है तो उसमें से एक सौ रूपए रसोइए के पीछे खर्च करने में क्या हर्ज़ है । अगर अशिक्षित बहू घर आती तो क्या होता । मेरे भाई के घर के हालात जानते हो ? पचास हज़ार रूपए लेकर मैट्रिक पास बहू को घर लाए। वह रानी की तरह बैठी रहती है । परोसने तक का काम नहीं करती। कोई छोटा मोटा काम बता दे तो कहती है "मेरे पिता जी ने इसलिए पचास हज़ार रूपए नहीं दिए हैं कि मैं आपके घर बेगारी करूं ।वे रूपए बैंक में जमा कर दो ।जो ब्याज मिले उससे नौकर रख लो।"

आखिर मेरी बहू तो एसी नहीं । बेचारी अपना एक भी मिनट आराम करने में नहीं बिताती। समझो कि यह हमारी खुशकिस्मती थी कि ऐसी बहू हमें मिली ।"
पति को बहू की तारीफ़ के पुल बाधंते देख रमा से रहा नहीं गया।
वह तनकर बोली "हम ही चाकरी करने के लिए पैदा हो गई हैं न ।मेरे बाप दादे जमींदार थे। हमारे मायके में नौकर चाकर गाड़ी सब कुछ थी। लेकिन मैं यहां क्या भोग रही हूं।" बात बढ़ते देख मैं वेंकेटश्वर राव के साथ उठ कर बैठक में आ गया। वेंकेटश्वर राव ने सिगरेट का केस आगे बढ़ाते हुए कहा "यार मैं जानता हूं तुमने सिगरेट पीना छोड़ दिया पर मेरी कसम
तुम एक सिगरेट तो पी लो। ना मत कहो वरना मुझे दुख होगा।"

मैं उस हालत में राव को अप्रसन्न नहीं करना चाहता था। सिगरेट जलाकर कश लेते हुए सोचने लगा। नाहक राव के घर में क्यों तनाव आ गया। राव ने ऐश ट्रे लाकर तिपाई पर रखा। मेरी उत्सुकता जगी। वह चांदी का बना था। उलटे जूते की आकृति का था। इस किस्म का ऐश ट्रे मैंने पहली ही बार देखा था। पूछा "यार तुमने इसे कहां से खरीदा।"

राव दार्शनिक की भांति गंभीर हो गया। फीकी मुस्कान उसके चेहरे पर खिल उठी।
"दोस्त मैं तुमसे क्यों छिपाऊं ? यह ऐश ट्रे मेरे थोथे आदर्शों का उपहास करने वाला अविस्मरणीय चिह्न है। तुम जानते हो हमने कॉलेज में पढ़ते समय शपथ ली थी कि हम भूलकर भी दहेज न लेगें।यह भी जानते हो हमने अपने विवाह के समय इसका पालन भी किया। पर क्या बताऊं जब मेरे पुत्र सुरेश के विवाह का प्रश्न उठा तब मैंने बिना दहेज के एक

मित्र की कन्या का रिश्ता पक्का किया।

मेरी श्रीमती को वह रिश्ता पसन्द नहीं आया। कई अच्छे परिवारों की लड़कियों के पिताओं ने मेरे घर की अनेक बार परिक्माएं कीं किन्तु देवी रमा उन भक्तों की दक्षिणा पर प्रसन्न नहीं हुई। आखिर मैंने यह रिश्ता तय किया। रमा ने सीमा को देखा। पसन्द भी किया। रिश्ता पक्का भी हो गया ।निमन्त्रणपत्र भी छपे।

विवाह के केवल पन्द्रह दिन रह गये थे। रमा सोच रही थी कि सीमा के पिता सिविल सप्लाई अफ़सर हैं उसने दोनो हाथों खूब कमाया होगा। बिना मांगे हज़ारों की दक्षिणा मिल जाएगी। आखिर न मालूम कैसे उसके कानों में भनक पड़ी कि सीमा के पिता बड़े भद्र पुरूष हैं। प्रतिष्ठित भी हैं पर ईमानदार हैं। उन्होंने कभी रिश्वत नहीं ली है इसलिए यह विवाह ठाठ से तो करेगे किंतु दहेज में एक पैसा न देंगे। जब सुन्दर सुशील एवं योग्य कन्या को हम 'कन्यादान' की रस्म अदा कर सौंपते हैं तो दक्षिणा क्यों चुकाएं।

मैंने भी कभी सीमा के पिता से दहेज की मागं नहीं की थी। रमा मुझ पर दबाब डालने लगी कि मैं सीमा के पिता से दहेज की रक्म की बात पक्की कर लूं। आखिर मैं विवश हो गया। झिझकते हुए मैंने सीमा के पिता के कानों में यह बात डाल दी। मैंने सिर्फ इतना ही कहा "भाई साहब कई लोग दो लाख रूपयों के दहेज का लोभ दिखाते मेरे घर आए लेकिन मैंने उन सभी रिश्तों को ठुकरा दिया। मैं सिर्फ लड़की को योग्य सुशील और सुन्दर देखना चाहता था। मेरी श्रीमती कुछ और सोचती है। मैं यही कहूंगा कि हम दोनों परिवारों की प्रतिष्ठा को ध्यान में रखते हुए उचित रकम अवश्य दें ।"

ये शब्द कहकर मैं घर लौट आया। वह भले मानुस थे मुझ पर नाराज़ भी नहीं हुए। लेकिन मैंने घर लौटकर रमा को सूचना दी कि अच्छी ख़ासी रकम दहेज में मिल जाएगी तुम फिक्र मत करो। विवाह के दिन तक रोज़ वह मुझे तंग करती रही कि तुमने यह क्यों नहीं कहा कि पचास हज़ार रूपयों का दहेज मिलने पर ही हम आपकी कन्या को ब्याहेंगे। मैंने एक सप्ताह बाद सुना कि सीमा के पिता ने राइस मिलर्स ऐसोसिएशन के सदस्यों को अपने घर बुलाया था। राइस मिलर्स ऐसोसिएशन ने कन्या को एक बहुत बड़ा चांदी का बरतन भेंट किया। वही बरतन हमें दहेज में प्राप्त हुआ।

मेरी श्रीमती ने विवाह सम्पन्न होते ही वह बरतन लेकर कमरे में सुरिक्षत रख दिया। मुझे अलग बुलाकर बरतन का ढक्कन खोल दिय । उसकी आंखे विस्मय से चमक उठीं। नोटों के बंडलों से वह बरतन भरा हुआ था। रमा ने सारे बंडल ज़मीन पर उड़ेल दिए। उसने कुल मिलाकर साठ हज़ार एक सौ सोलह रूपए थे। रमा सीमा के पिता की उदारता की प्रशंसा करती रही। वे सभी नोट एकदम नए थे। मुझे तो डर लगा कि कहीं ये जाली नोट तो नहीं।

रमा रूपयों के बंडल एक बक्स में सजाने लगी। मैंने बरतन में हाथ डाला तो कोई चीज़ हाथ लगी वह "चांदी का जूता" था। मेरे समधी ने वह जूता मेरे सिर पर नहीं दिल पर मारा था।"

आज सोमवार है परशुप्रधान

इडा याद करने लगी कि आज कौन सा दिन है, टीवी के मनोरंजक दृश्यों से लग रहा था आज रविवार है। अच्छा सा रविवार है, फिर उसे लगा आज सोमवार है और हेरेश से मिलना है। हेरेश की याद आते ही इडा को सोमवार से ही बोरियत सी होने लगी। कितना पियक्कड़ है हेरेश, रातभर व्हिस्की की कितनी ही बोतलें खाली करता है। और फिर बातें करता है ज़मीन आसमान की। जैसे सारी रात उसी की है और किसी की तो है ही नहीं। जैसे फिर वह विद्यार्थी न हो कर किसी रईस का इकलौता वारिस हो। जैसे उसके साथ डॉलर की बोरियां हो। उसका बहुत अच्छा बैंक बैलेंस हो।

वह बोरियत से खुसुर-फुसुर करता है – 'इडा! मैं इस सेमिस्टर के बाद यहां नहीं रहनेवाला। कितना छोटा और तंग है यह शहर। शायद न्यूयार्क नहीं तो वाशिंग्टन डी सी जाऊंगा। वहां से डॉक्टरेट भी आसानी से किया जा सकता है।' पर अपनी बुद्धि और ज्ञान से बहुत परे था वह।

इडा कमरे को निहारती है। दीवाल में पुता हुआ पीला रंग कितना ज़्यादा पीला है। इडा को सख्त पीले रंग से चिढ़ है। ज़्यादा नमक, ज़्यादा चीनी...उफ् कितना बोर... कमरे का पर्दा भी उतना ही पुराना। परदे की आड़ी धारियां इडा को कैसे डराती हैं, मानो वे धारियां सांप का फन बनकर उठती हों। कभी कभी रातों में वह डर जाती है व चिल्लाती भी है। इडा को अब पूरी तरह समझ में आ गया – आज सोमवार है, पक्का सोमवार ही है।

हां आज सोमवार ही है, और आज की रात बलिष्ठ हेरेश के नाम है। महीने में चार सोमवार की रातों को हेरेश का साथ देने पर इडा निर्णय करती है – हेरेश के साथ हुए समझौते को रद्द कर देगी। हेरेश से स्पष्ट कह देगी 'मुझे भी तो एक दिन की फुरसत चाहिए हेरेश। तुम और कोई गर्लफ्रेंड ढूंढ़ो और मुझे छुट्टी दो।

'तुम्हें छुट्टी दूं इडा! नामुमकिन। बिलकुल असंभव। बल्कि तुम्हारे डॉलर बढ़वाने हैं तो निसंकोच कहो! मैं तो तैयार ही हूं न?'
'ऐसा नहीं है हेरेश! बहुत वर्षों से स्वास्थ्य ठीक नहीं है। लगता है यह काम अब छोड़ दूं। लेकिन परिस्थितियां, विवशताएं भी कुछ होती हैं हेरेश। मैं कर नहीं पा रही हूं। लेकिन छोड़ने का प्रयास जरूर करूंगी।' इडा उसे समझाने की कोशिश करती है। कभी-कभी देर होने पर हेरेश स्वयं ही गाड़ी लेकर उसे लेने आ पहुंचता था। फिर लगातार कॉलबेल बजाता था, क्या करती वह? खुद दरवाजा खोलने को विवश हो जाती और वही एक किस्म की दुर्गन्ध के साथ रात बिताने को बाध्य हो जाती।

टेलिफोन की घंटी बजने लगी। रिसीवर उठाने को मन नहीं करता। संभव है हेरेश कहता हो, आज दस बजते ही मेरे यहां आ जाओ इडा। मैंने दो चार कैन बीयर ठीक कर रखे हैं। क्यों न दिन भर अपने आपको बीयर से बदल दें। फिर टेलिफोन की घंटी बन्द होने का नाम नहीं ले रही। इडा रिसीवर उठाती है। सौभाग्य से रांग नंबर है। वह घड़ी की तरफ नज़र डालती है। दस बजने को है। शाम का अपाइंटमेन्ट सारा दिन खराब कर देता है। अन्य दिनों में उसे ऐसा महसूस नहीं होता रविवार जोन्स के यहां, मंगलवार रॉबर्ट के यहां, फिर शुक्रवार जैक्सन के यहां। सबसे अच्छा तो शुक्रवार ही है। एक तो वीकएंड, उपर से खुशमिजाज जैक्सन। जैक्सन का व्यक्तित्व ही कितना मनमोहक व प्रभावशाली है। जिसकी हेरेश से किसी भी अंश में तुलना नहीं की जा सकती। जैक्सन का नाम याद आते ही इडा की निरुत्साहित इच्छाएं जाग उठीं। पोखर में कहीं नई मछलियां कुलबुलाई सी लगती हैं। अब इडा को बहुत दूर अपने घर की याद सता रही है। जहां पिताजी की चिट्ठियों के हरफों को याद करते ही इडा को कुछ भी अच्छा नहीं लगता – तुझे घर की फिक्र करने की जरूरत नहीं है। सिर्फ अपने स्वास्थ्य का खयाल कर। तेरी जॉब क्या है व कॉलेज में पढ़ाई कैसी चल रही है? हमें कुछ मालूम नहीं, जिससे हम दुविधाग्रस्त हैं – इडा अनुभव करती है ये हर्फ बढ़ रहे हैं या बड़े हो रहे हैं। उसे लगता है इन्हीं हरफों के तले दब कर कहीं वह अकाल ही मर न जाए। इडा क्या जॉब करती है इस छोटे से शहर में? उसके जॉब को किस तरह से परिभाषित किया जाए? इडा को मालूम नहीं। वह कह भी नहीं सकती। इडा इस शहर में क्या करती है व कैसे जी रही है? उसे लगता है वह जी रही है निरूद्देश्य, अर्थविहीन जीवन व प्रयोजनहीन जीवन।

आज दिन भर का काम याद करने लगी इडा। सारे अपाइंटमेंट व काम भूलकर दिन यूं फिसल जाता है। फिर आती है काली रात – वही हेरेश की रात। वह घबरा जाती है, हेरेश की रात से। उसने हेरेश को सलाह न दी हो ऐसा नहीं है – 'हेरेश तुम किसी से शादी क्यों नहीं कर लेते? 35 बरस की उमर क्या छोटी है? अब सिर्फ 5 बरस हैं हेरेश, तुम अपना जीवन साथी ढूंढ़ो! तुम तो 17-18 साल के किशोर लगते हो, कुछ तो कहो, क्यों गुस्सा करते हो?'
'तुम गलत हो इडा! अभी शादी करके मैं क्या बूढ़ा हो जाऊं? क्या तुम मुझे बूढ़ा देखना चाहोगी? क्या है शादी में? एक साधारण सत्य जिसे स्वीकार भी किया जा सकता है, अस्वीकार भी।' हेरेश हर बात को हंसी में टाल देता।

इधर इडा को हर सोमवार को शरीर भारी पड़ता है। मितली सी होती है। कमरा घूम रहा सा प्रतीत होता है। बहुत महीनों से सम्हाले हुए निर्णय को उगलने को मन करता है – 'मैं आज नहीं आऊंगी हेरेश। मुझे माफ करना।'

वह पूछ सकता है 'सिर्फ मेरे यहां नहीं आओगी या जॉब ही छोड़ दोगी?'
'पहली बात तो तुम्हारे यहां नहीं आऊंगी। जॉब छोड़ने के बारे में अभी नहीं सोचा है।'
'यह सिर्फ तुम्हारा विचार है इडा, निर्णय नहीं। अभी क्या वजह है निराश होने की?' हेरेश फिर हंसी में ही टाल देता है। इडा के हृदय के शूलों को उसने कभी समझने की कोशिश ही नहीं की, न ही तैयार है।

हर किस्म के लोगों से व्यवहार करना सचमुच ही मुश्किल काम है। यह सिर्फ नादानी है, अपने आपको खत्म करना। हर पुरुष के प्यार करने व चाहत रखने का एक समय होता है। जब वह वक्त गुजर जाता है या यूं कहें जब किनारा टूट जाता है तो फिर कुछ नहीं होने वाला। आकाश में हवाई जहाज निरन्तर उड़ रहे हैं। किसी भी हवाईजहाज ने अब तक इडा को कहीं उड़ाकर दूर नहीं फेंका। किसी जहाज ने भ्रमण के लिए कहीं नहीं बहाया। कितना छोटा है उसका बैंक बैंलेंस। हर महीने उसे बढ़ाने का संकल्प भी जॉब छोड़ने जैसा हास्यास्पद हो गया है। कभी कास्मेटिक्स का हाहाकार तो कभी कपड़ों की ज़िद। कभी दवाइयां सारे बज़ट को तोड़मरोड़ देती हैं। फिर कमरे के एक कोने में बीयर की एक बोतल को खोलकर सारे सत्य को भूल जाना अच्छा लगता है इडा को। लोगों के मुखड़ों को कहीं दूर फेंक देने को जी करता है।

अपना घर है कहीं दूर, प्यार करने वाले मां बाप हैं – इस बात को भूलकर एकाकी सोचने को जी करता है उसका। मगर सप्ताह के पूरे दिनों से बंधी हुई है वह। वे दिन उसकी जिन्दगी को रूटीन बनाए हुए हैं। यह रूटीन जिन्दगी, दीवाल पर टंगा है यह जिन्दगी का रूटीन, इम्तहान के रूटीन माफिक ः

रविवार – जॉन्स
सोमवार – हेरेश
मंगलवार – रॉबर्ट
बुधवार – ग्रीन
गुरुवार – जेम्स
शुक्रवार –जैक्सन
शनिवार – सिल

क्यों बाहर नहीं निकल सकती इस बाड़े से इडा? ब्रेकफास्ट का समय खत्म हो चला है और लन्च के लिए नज़दीकी ड्रग हाउस तक जाना जरूरी है। फिर माथे पर सोमवार घुसकर उसे भारी बना डालता है। हेरेश का रुखा व्यवहार आकर उसको ठण्डा बना डालता है। काश अभी फोन करके मैं बीमार हूं, नहीं आ सकती, कह सकती पर बहुत जिद्दी है वह। हफ्ते में एक बार ही तो है, मैं तो नहीं मानता बोलकर गाड़ी लेकर आ धमका तो? फिर फोन करने का कोई मतलब नहीं। दस सेन्ट खर्च करने का कोई औचित्य नहीं। इडा खुद से निस्पृह सी हो जाती है। कैसे काटेगी यह लम्बा दिन? पार्क तक जाए? उधर भी खर्चा ही है। कमरे के बाहर कदम रखते ही डॉलरों के पग बनाते हुए चलना पड़ता है। दिन पर दिन भाव आसमान छू रहे हैं। इस बढ़ती महंगाई में जीना दूभर हो गया है। कमरे में ही झूलकर कितना वक्त काटा जा सकता है? यह शहर भी सठिया गया है। इडा जाएगी कहां? कौन सी जगह बाकी है? सेन्ट्रल पार्क में भी कितना झूला जाए? दर्जनों आदमियों के दर्जनों सवाल, जवाब देते देते परेशान। जिधर देखो आदामियों की भीड़। ऐसी झल्लाहट किसी दिन नहीं होती, बगैर सोमवार के, नीरस सोमवार।

लन्च का वक्त भी खत्म हो चला है। इडा को भूख नहीं है। गाड़ी लेकर निरुद्देश्य चलूं तो कितनी देर चलूं? कितनी दूर चलूं? किस हाईवे तक पहुंचकर लौटूं? जिधर देखो सड़कों के जाल बिछे हुए लगते हैं। कौन सा रास्ता उसे कितनी देर तक कहां तक ले जा सकता है? कहीं कोई दुर्घटना हो गई तो? कहीं कोई संभावना नहीं दिखती सिवाय रात का इन्तज़ार करने के, दिल को मोम सा पिघलाकर। बाहर जाऊं? फिर मन को सपनों के नंगे तार छू रहे हैं। इडा फोन लगाती है।

उधर हेरेश ही है। वह बोल भी न पाई थी कि उधर से हेरेश की आवाज़ उसको हिलाकर रख लेती है – 'फ़ुरसत हो तो अभी आ जाओ इडा, क्यों शामका इन्तज़ार करती हो? मैं तुम्हारे ही लिए बगैर कॉलेज गए बैठा हूं। तुम अभी आओ।'
'मेरी तबीयत आज... ।'
फोन में बात को बीच में ही टोककर बोलने की आवाज़ आती है – 'अकेले रहने से कैसे तबीयत अच्छी रहेगी? इधर आ जाओ, सब ठीक हो जाएगा। नाइट क्लब भी जाना है न थोड़ी देर के लिए... ।
'कह तो रही हूं..मेरी तबीयत ठीक नहीं... ।'
'नो नो तुरन्त आ जाओ।' हेरेश फोन काट देता है। अब इडा सोच रही है, इस शहर से उसे मुक्ति नहीं है। इस सोमवार से भी उसकी मुक्ति नहीं है। उसे न चाहते हुए भी जाना है। उसके न चाहने से भी सोमवार आ ही जाता है। न चाहते हुए भी उसे हेरेश के साथ रात बितानी है। हेरेश! हेरेश!! हेरेश!!! इडा बाथरुम में घुस जाती है।

यादों की अनुभूतियां

कमला सरूप

आहर ठंडी हवा के झोंके चल रहे थे और खिड़की खोलने का दिल नहीं कर रहा था। बाहर घना कुहरा छाया हुआ था और अंधेरा होने ही जा रहा था। इसलिए खिड़की से दिखनेवाली खुली व चौड़ी सड़क भी नज़र नहीं आ रही थी। पहले तो शाम होने पर भी काफ़ी लोग चहलकदमी करते दिख जाते थे। पर शायद दिसंबर की शाम होने से लोगों की चहलकदमी बहुत कम हो गई थी। लोग एक्का दुक्का ही दिखाई दे रहे थे।

"मैं जा रहा हूं।"
तुम्हारे उद्घोष से मैं चौंक गई। वैसे तुम जा रहे हो। खुशी दिल की गहराइयों से हो तो उसकी महत्ता और भी बढ़ जाती है। तुम बोल रहे हो और मैं याद कर रही हूं, कैसे हमारे बीते हुए दिन इस खाली सड़क जैसे उदास–उदास हैं।
"लोग अपनी–अपनी जीवन शैली अपनाते है पर ग़ौरतलब बात यह है कि तमाम लोगों की जीवन शैली प्रेम में आधारित होनी चाहिए।" एक दिन अचानक रास्ते में मुलाकात होने पर तुमने ये बातें कही थीं। पास ही की दुकान पर चाय पीने के लिए चलने पर तुमने कहा–
"समझीं, लोगों के रिश्ते को ऊंचे मायने में परिभाषित करना चाहिए, ऐसी मान्यता है मेरी।" तुम्हारे सवाल का जवाब तो मुझे नहीं मिला पर मुझे लगा तुम निश्चित ही एक धार पकड़ रहे हो। यह सचमुच अच्छी बात थी, ऐसा महसूस किया मैंने।

"जीवन हमारी परिभाषा अनुसार तो चलने से रहा – आज साफ दिखाई देता है मनुष्य का जीवन भीषण कठिनाइयों से गुज़र रहा है।" मैंने चाय की पहली चुस्की से भी पहले कहा था।

तुम हंसे थे। मुझे यह लग रहा था कि तुम मुझसे सहमत नहीं हो। यह निश्चय ही मेरे लिए खुशी की बात तो नहीं थी पर मैंने अपने चेहरे पर दुःख की परछाइयां आने नहीं दीं क्योंकि मुझे मालूम था, तुम्हारे संग यह छोटी व महत्वपूर्ण मुलाकात, नाहक बर्बाद नहीं करनी थी मुझे।
"हर परिस्थिति में खुश होने के लिए, धैर्य चाहिए।" तुम बोले थे।
"हां, हर दुःख व विपत्ति में धीरज ही तो सहारा है।" मैंने भी अपनी जमी हुई भावनाएं उंडेल दीं।
"पर एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि हर परिस्थिति का मतलब यह नहीं होना चाहिए कि जिसे झेला न जा सके।" मैं बोलती रही थी। तुमने बातें जारी रखने के लिए एक–एक कप और चाय पीने का प्रस्ताव रखा और फिर हम दूसरा कप चाय पीने लग गए।
"ठंड में चाय पीने का मज़ा ही कुछ और है। है न?" मैं हंस दी थी तुम्हारे सवाल पर। मैंने कहा,

"अब चलें, अंधेरा बढ़ने लगा है।" हम वहां से उठने लगे और तुम्हारा चलना मैं स्तब्ध देखती रही। मेरे पास तुम्हारे अनेक सवालों के जवाब नहीं थे।

उसी तरह हमारी अगली मुलाकात अचानक ही एक व्यस्त घर से बहुत दूर शहर की सड़क पर हुई थी। वास्तव में मुझे कभी यकीन नहीं था कि हमारी मुलाकात उस शहर में भी हो सकती है। "मैं घूमने के लिए आया हूं" बिन पूछे ही तुम कह गए थे। "मैं भी घूमने ही आई हूं।" मैंने भी तुम्हारे सुर में सुर मिलाया था। "फिर एक साथ घूमने चलें?" तुम्हारा प्रस्ताव को मैं नहीं ठुकरा सकी थी और कैसे हम दोनों हाथ में हाथ लिए घूमे थे।

मैं अब याद कर रही हूं, कैसे शामको तुम मेरे लिए गुरांस के फूलों का गुच्छा ले आए थे और साथ में शुभकामना कार्ड भी। मैं वैसे भी झूम उठी थी और सच कहूं, तुम्हारा दिया हुआ कार्ड व सूखे हुए ही सही वे गुरांस के फूल, अब भी कमरे भर सजाकर रखे हैं मैंने। शायद वो कार्ड व फूल ही आखिरी उपहार थे मेरे लिए तुम्हारे तरफ़ से।

दूसरे दिन सवेरे ही हम साथ–साथ घूमने निकल गए थे। शायद वही आखिरी सुबह थी हमारे साथ की। उसके बाद बहुत वर्षो तक हमारी मुलाकात नहीं हुई थी। सवेरे की ओस, हाथ भर गुरांस के फूल और मीठी सी ठंडी हवा के साथ हमने कैसे तीन घंटे लंबा रास्ता पार किया, पता ही नहीं चला था।
"मैं चाहता हूं, इस सुबह जैसा ताज़गी भरा और इन गुरांस के फूल जैसा सुंदर हो तुम्हारा जीवन।" तुम कवि की तरह बोलने लगे थे और मैं आहिस्ता–आहिस्ता मंद–मंद हवा में चलने लगी थी।
"उस उगते हुए चांद को देखो तो।" होटल की छत पर पैर रखते ही तुम चिल्ला उठे थे। मैंने देखा आधी रात में कैसे चांद उजाले और सुख का प्रतीक बनकर झिलमिला रहा था।
"देखो, यह जीवन तो क्षणभंगुर है। मगर यह चांद हमारे मर जाने के बाद भी इसी तरह चमकता रहेगा और मनुष्य को शांति व शीतलता प्रदान करता रहेगा।" तुम भावुक हो चले थे और कैसे मैं चमकते हुए चांद को निहारती ही रह गई थी। मुझे पता ही नहीं चला। मेरी आंखें नम हो चली थीं और तुमने मेरे आंसू पोंछ दिए थे। फिर मालूम पड़ा मैं रो रही थी। तुम्हारे हाथों का स्पर्श सच कहूं तो अब भी महसूस कर रही हूं।

"ओहो, एक दिन तो हम सब मर जाएंगे।" मैं यों ही उदास हो चली थी। मेरी उदासी को अनदेखा कर तुम हंसने लगे थे।
"सुनो! मैं ज़्यादातर घर की छत पर बैठकर चांद की कविताएं लिखता रहता हूं। इस तनावग्रस्त जिंदगी में चांद के सुकून का महत्व ही कुछ और है। काश, सारे जीवित लोग प्रेममय जीवन जीते तो इस संसार का महत्व ही कुछ और होता। सच! लोग इतने हिंसक क्यों होते हैं? क्यों एक दूसरे का कत्ल करते हैं? निर्ममता की पराकाष्ठा में क्यों सजातीय की हत्या करते हैं? क्यों इतना पीड़ादायक जीवन जीते हैं लोग? मैं तो यही चाहता हूं, व्यर्थ में आदमी को मरना न पड़े और हर जीवित आदमी का जीने का हक सुनिश्चित हो।"

तुम्हें देखकर व तुम्हारी बातें सुनकर मैं हंस दी थी। पीड़ादायक हंसी हंसना कितना कष्टकर होता है यह महसूस किया है मैंने।

तुम्हारे अनेक सवालों के जवाब मेरे पास नहीं हैं। फिर भी मैं याद कर रही हूं। वाह! क्या गज़ब का वक्त था वह, लगता था वक्त को स्तब्ध पकड़े रहूं। सच्ची, मैंने उस दिन सोचा था – यह रात कभी न बीते और सुबह कभी न आए। "चांद जैसा ही सूखा व उन्मुक्त जीवन जी पाते, कितना अच्छा होता न?" मैं तुम्हारे इस सवाल पर सिर्फ़ सिर हिला पाई थी और शब्द जैसे खो से गए थे। मन भावुक बन गया था। "सुना तुमने! चांद हर आदमी को शीतलता प्रदान करता है क्योंकि चंद्रमा का अर्थ है शांति, और शांति से बड़ी चीज़ इस धरती पर दूसरी नहीं हो सकती। बातें तो ख़त्म नहीं हो रही थी पर चूंकि रात गहरा गई थी इसलिए हम अपने–अपने कमरे की तरफ़ सोने के लिए चल दिए थे। मुझे रात भर नींद नहीं आई थी और कानों में तुम्हारे ही शब्द गूंज रहे थे। खिड़की खुली हुई थी और शीतल पवन के झोंके कमरे को ही शीतल कर रहे थे। मैं रात भर बिन सोए सिर्फ़ चांद को देखती रही थी।

"मैं जा रहा हूं, उम्मीद करता हूं, हमारी मुलाकात फिर होगी, वैसे तो मैं इस मुलाकात को जीवन भर सहेजकर रखूंगा। हर सुबह तुम्हें सुख और अतृप्त आनंद दे, यही कामना करता हूं।" विदाई का हाथ हिलाते हुए तुमने कहा था। तुमसे बिछड़ कर बस में राजधानी लौटते वक्त मन संवेदनशील हो चला था।

राजधानी लौटने के बाद कई महीनों तक हमारी मुलाकात नहीं हो सकी। हम दोनों व्यस्त बन गए। जीने के लिए जी तोड़ परिश्रम करने की बाध्यता थी तुम्हें भी, और मुझे भी। पढ़ाई के लिए विदेश चलने से पहले मैं तुमसे मिलना चाहती थी। मैं समझती थी ऐसी मुलाकातें हमारी मित्रता की गांठ को मज़बूत करेंगी व गौरव बढ़ाएंगी। बहुत लंबे समय के लिए अपनी मातृभूमि और स्वजनों को छोड़कर जाने पर मन में टीस उठ रही थी और मन खाली हो रहा था। "आदमी अकेला जन्म लेता है और अकेला मरता है। जीवन व मृत्यु के बीच के बचे हुए दिन दोस्ती के लिए महत्वपूर्ण होते हैं।" मेरी मां हमेशा हमें समझाया करती थीं।

तुमसे मिलने मैं सवेरे ही साधारण कपड़ों पर तुम्हारे किराए के कमरे की तरफ़ दौड़ चली थी। घर से तुम्हारे घर की दूरी करीब घंटे भर की थी और एक चौरस्ता भी पार करना पड़ता था पर दो घंटे दौड़ लगाकर ढूंढ़ने पर भी न तुम्हारा कमरा मिला, न तुम मिले थे। मैं उदास-उदास लौट चली थी। सड़क के चारों ओर तुम्हारा कमरा ढूंढ़ते वक्त मुहल्ले की सभी औरतों ने खिड़कियां खोलकर मुझे घूरा था। बाद में पता चला सब औरतें मेरे खिलाफ़ मोर्चा बांधे खड़ी थीं। मैं तुमसे मिलना चाहती थी और छोटी सी ही सही सुंदर कविता तुम्हें उपहार में देना चाहती थी।

"मुझे मालूम पड़ा तुम कल पढ़ाई के लिए बहुत दूर जा रही हो! हो सकता है हमारी मुलाकात न हो। छ-सात बरस तो लंबा अरसा है, हो सकता है एक दूसरे को भूल जाएं।" तुमने फ़ोन किया था। लगता था तुम जल्दबाज़ी में थे। तुमने ज़्यादा बोले बिना ही रिसीवर रख दिया था। "तुम जहां भी रहो खुश रहो। तुम्हारी हर सफलता की कामना मैं करता हूं। अगर ईश्वर ने चाहा तो हम फिर मिलेंगे।"

फ़ोन पर तुम्हारे कहे हुए अंतिम शब्द थे ये। आज वर्षों बाद तुम भी कहीं बाहर जा रहे हो, अचंभा तो नहीं हुआ पर बीते हुए दिन इस ख़त्म न होती सड़क की तरह याद आते रहे। आंखों से बहते आंसू पोछने का असफल प्रयास कर रही हूं।

खेल

गीता केशरी

मेरा अखबार पढ़ने का समय सुनकर सभी हंसते हैं। कहते भी हैं, "उस वक्त तक तो खबर भी बासी हो चुकी होती है, फिर पढ़ने से क्या फायदा?"

लेकिन मुझे तो दिनभर की सबकी टीका-टिप्पणी सहित रात में एक-एक खबर को चिंतन-मनन के साथ पढ़ने में कुछ और ही मजा आता था। कभी तो वहां लिखी समस्या का समाधान का मार्ग सपने में खोज रही होती हूं।

ऐसी ही एक रात में समस्या की पोटली उठाए स्वर्ग की अदालत पहुंची। उस समय वहां ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर की उपस्थिति में सभी देवी-देवता मिलकर गोपनीय बैठक का संचालन कर रहे थे। मुझे द्वारपाल ने अंदर घुसने ही नहीं दिया और वहीं बाहर प्रतीक्षालय में बैठकर इंतजार करने का आदेश दिया। विवश मैं कर भी क्या सकती थी, वहीं बैठ गयी और पूछा, "किस मकसद से बैठक है? कब से चल रही है?"

उसने कहा, "तुम मनुष्यों के विषय पर ही वह सभा हुई है, अभी कुछ देर और चलेगी।"

काफी देर इंतजार करने के बाद भी सभा समाप्त नहीं हुई तो मैं परेशान होने लगी।

मेरी अधीरता देखकर द्वारपाल ने "चलिए इसे देखकर टाइम पास कीजिए" कहते हुए एक कैसेट टी•वी• में लगा दिया।

थोड़ी देर में मधुर ध्वनि के साथ धीरे-धीरे एक मूर्तिकार की कार्यशाला दिखाई दी। रंग सजानेवाली सभी प्रकार की सामग्री वहां मौजूद थीं। रमणीय स्थान पर बनायी गयी थी।

मैं अचंभित और मुग्ध होकर देख रही थी। कुछ ही क्षण में दृष्य बदलता है और एक मूर्तिकार दिखता है।

लंबी सफेद दाढ़ी, चार सिरवाला, गुलाबी वर्ण का पुरूष कार्यालय में प्रवेश करता है और सिंहासन पर विराजमान हो मन-ही-मन कहता है, "आज तक मैंने न जाने कितनी सृष्टि की परंतु अभी तक अपना आकार कहां बनाया है मैंने? यह तो अपने उपर ही अन्याय हो रहा है, मुझे अब इस विषय में सोचना ही चाहिए।" वह उठ खड़ा होता हैं और वहां रखी चीजों का मिश्रण कर आकार बनाने के प्रयास में लग जाता है।

अच्छा तो यह ब्रह्माजी हैं? देखूं कैसे मूर्ति बनाते हैं, सोचकर मैं बहुत ध्यान से देखने लगी।

कितनी ही रातें और दिन की मेहनत के पश्चात एक मनमोहक आकृति खड़ी होती है, जिसे देख ब्रह्माजी अति प्रसन्न होते हैं। मूर्ति ऐसी थी कि अभी बोल पड़ेगी। वे उसे और आकर्षक बनाने में लगे थे कि नारदजी पहुंचते हैं और मूर्ति को दिखाते हुए प्रश्न पूछते हैं, "पिताश्री, अपना आकार तो आपने बनाया, परन्तु सिर एक ही क्यों बनाया?" ब्रह्माजी ने भी हंसते हुए कहा, "ये चारों दिशाओं वाले सिर की सोच एक दूसरे से न मिलने की वजह से मैं कितना परेशान हूं और इस बेचारे पर भी वहीं समस्या क्यों लादूं? यही सोचकर मैंने इसका एक ही सिर बनाया। फिर बनाने में सबसे कठिन तो यही भाग है। इसलिए पूरा ध्यान देकर एक ही सिर बनाया है।" मूर्ति को देख ब्रह्माजी की बात सुनने के बाद नारदजी इस नये समाचार को सुनाने के लिए व्याकुल हो तुरंत कैलाश की ओर प्रस्थान करते हैं।

नारद के साथ महादेव-पार्वती दोनों ब्रह्माजी की कार्यशाला पहुंचते हैं। पार्वती भी मूर्ति की प्रशंसा करती हैं। दोनों मूर्ति को चलता-फिरता देखना चाहता हैं और महादेव पार्वती को उस मूर्ति में प्राण डालने की आज्ञा देते हैं।

पार्वती कहती हैं, "पतिदेव! आपकी आज्ञा का पालन अवश्य होगा परंतु ब्रह्माजी से कहें कि एक नारी मूर्ति की भी सृष्टि करें। इस अधूरी सृष्टि को मैं पूर्ण बनाना चाहती हूं।"

पार्वती का प्रस्ताव सुनकर ब्रह्माजी हंसते हुए पहले से तैयार नारी मूर्ति दिखाते हुए कहते हैं, "हे माता! इसी मूर्ति ने तो मुझे इस दूसरी मूर्ति को बनाने की प्रेरणा दी हैं। मैं तो माता का भक्त हूं।"

ब्रह्माजी के वचन सुनकर पार्वती अति प्रसन्न होती हैं और मूर्तियों में प्राण डाल देती हैं। प्राण डालते ही मूर्तियां इधर-उधर भाग-दौड़ करने लगती हैं और सामान को तोड़फोड़ कर तहलका मचाने लगती हैं। महादेवजी उन्हें नियंत्रित करने के लिए ब्रह्माजी को सरस्वती की आराधना करने की आज्ञा देते हैं। देवी सरस्वती प्रकट हो, वरदान देती हैं, जिससे वे मूर्तियां अब बोलने भी लगती हैं।

सभी उपस्थित देवी-देवताओं के पास जो दिखता है, वहीं मांगना शुरू कर देते हैं। मांगकर न मिले तो छीन-झपट कर पहनते और आल्हादित होने लगते हैं। समस्या और जटिल बन जाती हैं। अतः महादेवजी कहते हैं, "इन्हें अब विवेक शक्ति की जरूरत है जो परिस्थिति और आवश्यकता अनुरूप कर्म करने के लिए स्वयं में निहित शक्ति का परिचालन करना सिखाता है। ऐसी शक्ति विष्णु ही दे सकते है।"

विष्णुजी प्रवेश करते हैं और विवेक देते हैं। उसके पश्चात् वे जीवात्मा सोचकर ही मांगते हैं। "भगवान! हमें अपने वंश के विस्तार हेतु स्वर्ग और पाताल से भिन्न जगह का निर्धारण कर दीजिए। हम आपके द्वारा प्राप्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए अपनी आवश्यकता अनुरूप सृजना कर सकें। नहीं तो हमें विवश हो यहीं स्वर्गलोक में ही स्थान लेने को बाध्य होना पड़ेगा।"

मांग सापेक्षिक थी। करीब-करीब शिव-पार्वती की योजना अनुरूप जैसे ही सूर्य की आराधना से पृथ्वी का सृजन कर उन दोनों को मनुष्य नाम दिया गया और निर्देश दिया गया, "ज्ञान और विवेक का प्रयोग करके ही राज करना। आज से हमारा अंश बनकर पृथ्वी पर रहोगे। हमारी शक्ति मिली है, अतः हमारा प्रतिनिधित्व करते हुए कर्म करते जाओगे। चेतना और शक्ति के परिचालन हेतु समय और परिस्थिति देख ज्ञान और विवेक का प्रयोग करने से विकास अपने आप दिखाई देगा और पृथ्वी भी स्वर्ग जैसी ही बनेगी तुम्हारी चाह के अनुरूप, परंतु याद रखना जिस दिन से तुम हमारे निर्देशन एवं आज्ञा का उलंघन करना शुरू करोगे उसी समय से तुम्हारे पतन की शुरूआत होगी। अब तुम लोग पृथ्वीतल पर जाओ।"

दोनों मनुष्य पृथ्वीलोक पर जाने में आनाकानी करते हुए कहते हैं, "प्रभु! ऐसे आग के गोले में हम जाएंगे तो आपकी आज्ञा का पालन करने से पहले ही हम नष्ट हो जाएंगे, फिर ... ।

सभी देवताओं को मनुष्य की दूरदर्शिता पर खुशी होती हैं और परीक्षा में उत्तीर्ण देख कहते हैं, "चिंता मत करो मनुष, यह तो तुम्हारी परिक्षा थी, जिसमें तुम सफल हुए और हम भी विश्वस्त हुए कि तुम हमारे द्वारा प्राप्त वरदान का उपयोग कर सकोगे। इसी तरह सत्य बोलने में डरना मत और सत्य से सामना करने में कभी पीछे मत हटना।"

यह कहते हुए पर्दा हटा देते हैं और कहते हैं, "देखो! पृथ्वीको वनस्पति ने कितना रमणीय और शीतल बना दिया है। यह वनस्पति ही है, जिसके साथ तुम्हारी आयु जुड़ी हुई है। इसे नष्ट किया तो तुम्हें पहले की तरह आग के गोलेवाली पृथ्वी मिलेगी और तुम्हारी संपूर्ण सृष्टि नष्ट हो जाएगी। इसलिए जितना अपने ज्ञान, शक्ति और विवेक लगाकर काम करोगे, फल की प्राप्ति उतनी ही होगी।"

मनुष्य की जिज्ञासा बढ़ती है और प्रश्न पूछता है, "जब हमें अपने में ही पूर्णता मिलेगी, आवश्यकता का ज्ञान कैसे होगा और हम कैसे उद्यमी बनने की कोशिश करेंगे?"

ब्रह्माजी इस पर दिल खोलकर हंसते हैं, "मनुष्य! ज्ञान भरने के लिए जैसे सिर को रख दिया है, शरीर के मध्य भाग में पेट रख दिया है, जहां भूख जागृत होगी।"

यही खोज ही उसे उद्यमी बनने को प्रेरित करती है। पेट जो आहार प्राप्त करता है, उससे शरीर का अंग संचालित होते हैं और चेतना जागृत होती रहती है। जरूरत और इसको पूरा करने की खोज से ही पृथ्वी को दूसरा स्वर्ग बना सकते हो। परंतु मिलकर सहयोगी बनकर रहना। पृथ्वी जितनी सुंदर है उसमें और सुंदरता भरने का प्रयास करना।

इस तरह उन दोनों को पृथ्वीलोक में भेजा जाता है। उसके बाद दृश्य प्रदर्शन में मध्यांतर होता है। मीठी धुन के साथ-साथ सुंदर प्राकृतिक दृश्य दिखाई देते हैं। मनुष्य की व्यस्तता, नयी सभ्यता की शुरूआत, सुख-शांति, मेलजोल बढ़ता जा रहा दिखाई गया। देखते-देखते आंख में खुशी और आनंद छलकने लगा।

अचानक दृश्य पट बदलता है। सुंदरता क्षणभर में भयंकर डरावनी स्थिति में परिवर्तित दिखाई देती हैं, कोलाहल भरा वातावरण दिखाई देता है। इतने में आवाजें .... ।

"लक्ष्मीजी! आपने मनुष्यों में धन का मोह बढ़ा दिया। इसलिए आज पृथ्वी की यह अवस्था हुई है। अतः इसकी जिम्मेदार आप हैं। समाधान भी आपको ही करना होगा।"

लक्ष्मीजी का उत्तर आता है, "मैंने तो परिश्रमी के परिश्रम की कदर मात्र की है। मुझे ऐसा करना भी चाहिए। मगर आपने ज्ञान विवेक देते वक्त कंजूसी की, उसी का परिणाम यह है। आप इस जिम्मेदारी से कैसे भाग सकते हैं?"

इसके बाद सभी ब्रह्माजी से कहते हैं, "आपने शरीर का मध्य भाग बड़ा बना दिया, जिसके कारण ही भूख की ज्वाला अधिक शक्तिशाली हुई और जिसे नियंत्रित करने के लिए एक ही सिर रख दिया, उसी की शक्ति कम पड़ जाने से यह हुआ।"

ब्रह्माजी गरजते हैं, "हां, मैंने अपनी खुशी से मूर्ति बनाई जरूर थी परंतु उसमें शक्ति प्रदान कर जीवात्मा तो मैंने नहीं बनाया। मुझे दोषी बनाना कितना उपयुक्त हैं, मैं यह प्रश्न इस सभा में सभापति विष्णु और मुख्य अतिथि महादेवजी से पूछना चाहता हूं। मनुष्य की सृष्टि पर पछताना तो हम सबको है। मुझे अकेले नहीं।"

उधर टेलिविजन में एक बालक दिखता है। वह चोरी-छिपे अपने माता-पिता से आंखें बचाकर अपने पिता की गोपनीय प्रयोगशाला में घुसता है। वहां गुजारे, बोतलें, कांच के टुकड़े, लोहे के साथ-साथ ढ़ेर सारी गेंद भी रखी हुई देखता है। वह सब चीजों को हाथ में लेकर उलट-पुलट कर देखता है। उसे बहुत आनंद आता है और खेलने को मन करता है।

वह बालक अपने दोनों हाथों में एक ही साथ दो गेंद लेता है और जमीन में पटकता है। तुरंत धड़ाम की आवाज के साथ आग और धुएं की लपटें उठ कर छत के उपर उड़ने लगती है।

मैं उस दृष्य की कल्पना करती हूं, उस नन्हें बालक के कोमल अंग जो चिथड़े-चिथड़े बन धुएं में उड़ रहे होंगे। मैं सह न सकी और चिल्लाई "यह अंत सभा का है या मानवता का?"

इसी मानसिक धक्के से मैं नींद से जाग गयी। मेरी आंख उन अखबारों के पन्ने पर पड़ी जो मेरे चारों ओर बिखरे पड़े थे। उसमें लिखा था, "शांति स्थापना के लिए सभी राष्ट्रों का एक मत।

एक जीवी एक रत्नी एक अपना — अमृता प्रीतम

पालक एक आने गड्डी, टमाटर छह आने रत्तल और हरी मिर्चे एक आने की ढेरी ... "पता नहीं तरकारी बेचनेवाली स्त्री का मुख कैसा था कि मुझे लगा पालक के पत्तों की सारी कोमलता, टमाटरों का सारा रंग और हरी मिर्चो की सारी खुशबू उसके चेहरे पर पुती हुई थी।

एक बच्चा उसकी झोली में दूध पी रहा था। एक मुट्ठी में उसने मां की चोली पकड़ रखी थी और दूसरा हाथ वह बार-बार पालक के पत्तों पर पटकता था। मां कभी उसका हाथ पीछे हटाती थी और कभी पालक की ढेरी को आगे सरकाती थी, पर जब उसे दूसरी तरफ बढ़कर कोई चीज़ ठीक करनी पड़ती थी, तो बच्चे का हाथ फिर पालक के पत्तों पर पड़ जाता था। उस स्त्री ने अपने बच्चे की मुट्ठी खोलकर पालक के पत्तों को छुड़ाते हुए घूरकर देखा, पर उसके होठों की हंसी उसके

चेहरे की सिल्वटों में से उछलकर बहने लगी। सामने पड़ी हुई सारी तरकारी पर जैसे उसने हंसी छिड़क दी हो और मुझे लगा, ऐसी ताज़ी सब्जी कभी कहीं उगी नहीं होगी।

कई तरकारी बेचनेवाले मेरे घर के दरवाज़े के सामने से गुज़रते थे। कभी देर भी हो जाती, पर किसी से तरकारी न खरीद सकती थी। रोज उस स्त्री का चेहरा मुझे बुलाता रहता था ..

उससे खरीदी हुई तरकारी जब मैं काटती, धोती और पतीले में डालकर पकाने के लिए रखती–सोचती रहती, उसका पति कैसा होगा! वह जब अपनी पत्नी को देखता होगा, छूता होगा, तो क्या उसके होंठों में पालक का, टमाटरों का और हरी मिर्चों का सारा स्वाद घुल जाता होगा?

कभी–कभी मुझे अपने पर खीज होती कि इस स्त्री का ख्याल किस तरह मेरे पीछे पड़ गया था। इन दिनों मैं एक गुजराती उपन्यास पढ़ रही थी। इस उपन्यास में रोशनी की लकीर–जैसी एक लड़की थी–जीवी। एक मर्द उसको देखता है और उसे लगता है कि उसके जीवन की रात में तारों के बीज उग आए हैं। वह हाथ लम्बे करता है, पर तारे हाथ नहीं आते और वह निराश होकर जीवी से कहता है, "तुम मेरे गांव में अपनी जाति के किसी आदमी से ब्याह कर लो। मुझे दूर से सूरत ही दिखती रहेगी।" उस दिन का सूरज जब जीवी देखता है, तो वह इस तरह लाल हो जाता है, जैसे किसी ने कूंवारी लड़की को छू लिया हो.... कहानी के धागे लम्बे हो जाते हैं, और जीवी के चेहरे पर दुःखों की रेखाएं पड़ जाती हैं ... इस जीवी का ख्याल भी आजकल मेरे पीछे पड़ा हुआ था, पर मुझे खीज नहीं होती थीं, वे तो दुःखों की रेखाएं थीं, वही रेखाएं जो मेरे गीतों में थीं, और रेखाएं रेखाओं में मिल जाती हैं .... पर यह दूसरी जिसके होठों पर हंसी की बूंदे थीं, केसर की तुरियां थीं।

दूसरे दिन मैंने अपने पांवों को रोका कि मैं उससे तरकारी खरीदने नहीं जाऊंगी। चौकीदार से कहा कि यहां जब तरकारी बेचनेवाला आए तो मेरा दरवाज़ा खटखटाना .... दरवाजे पर दस्तक हुई। एक–एक चीज को मैंने हाथ लगाकर देखा। आलू–नरम और गड्डों वाले। फ्रांसबीन–जैसे फलियों के दिल सूख गए हों। पालक–जैसे वह दिन–भर की धूल फांककर बेहद थक गई हो। टमाटर–जैसे वे भूख के कारण बिलखते हुए सो गए हो। हरी मिर्चे–जैसे किसी ने उनकी सांसों में से खुशबू निकाल ली हो ....मैंने दरवाज़ा बन्द कर लिया। और पांव मेरे रोकने पर भी उस तरकारी वाली की ओर चल पड़े ..

आज उसके पास उसका पति भी था। वह मंडी से तरकारी लेकर आया था और उसके साथ मिलकर तरकारियों को पानी से धोकर अलग–अलग रख रहा था और उनके भाव लगा रहा था। उसकी सूरत पहचानी–सी थी ... इसे मैंने कब देखा था, कहां देखा था– एक नयी बात पीछे पड़ गई..

"बीबीजी, आप!"
"मैं .... पर मैंने तुम्हें पहचाना नहीं।"
"इसे भी नहीं पहचाना? यह रत्ती!"
"माणकू .... रत्ती ... " मैंने अपनी स्मृतियों में ढूंढ़ा, पर माणकू और रत्ती कहीं मिल नहीं रहे थे ....
"तीन साल हो गए हैं, बल्कि महीना ऊपर हो गया है। एक गांव के पास .... क्या नाम था उसका .... आपकी मोटर खराब हो गई थी।"
"हां, हुई तो थी।"
"और आप वहां से गुजरते हुए एक ट्रक में बैठकर धुलिया आये थे, नया टायर खरीदने के लिए।"
"हां–हां ... " और फिर मेरी स्मृति में मुझे माणकू और रत्ती मिल गए।

रत्ती तब अधखिली कली–जैसी थी; और माणकू उसे पराए पौधे पर से तोड़ लाया था। ट्रक का ड्राइवर माणकू का पुराना मित्र था। उसने रत्ती को लेकर भागने में माणकू की मदद की थी। इसलिए रास्ते में वह माणकू के साथ हंसी–मज़ाक

करता रहा।

रास्ते के छोटे-छोटे गांवों में कहीं ख़रबूजे बिक रहे होते, कहीं ककड़ियां, कहीं तरबूज़ ! और माणकू का मित्र माणकू से ऊंची आवाज़ में कहता," बड़ी नरम हैं, ककडियां खरीद ले। तरबूज तो सुर्ख लाल हैं और खरबूजा बिलकुल मिश्री है .. .. खरीदना नहीं है तो छीन ले ... वाह रे रांझे

"अरे, छोड़ मुझे रांझा क्यों कहता है? रांझा साला आशिक था कि नाई था? हीर की डोली के साथ भैंसें हांककर चल पड़ा। मैं होता न कहीं ... "
"वाह रो माणकू! तू तो मिर्ज़ा है मिर्ज़ा!"
"मिर्ज़ा तो हूं ही, अगर कहीं साहिबां ने मरवा न दिया तो!" और फिर माणकू अपनी रत्नी को छेड़ता, "देख रत्नी, साहिबां न बनना, हीर बनना।"
"वाह रे माणकू, तू मिर्ज़ा और यह हीर! यह भी जोड़ी अच्छी बनी!" आगे बैठा ड्राइवर हंसा।

इतनी देर में मध्यप्रदेश का नाका गुज़र गया और महाराष्ट्र की सीमा आ गई। यहां पर हर एक मोटर, लॉरी और ट्रक को रोका जाता था। पूरी तलाशी ली जाती थी कि कहीं कोई अफ़ीम, शराब या किसी तरह की कोई और चीज तो नहीं ले जा रहा। उस ट्रक की भी तलाशी ली गई। कुछ न मिला और ट्रक को आगे जाने के लिए रास्ता दे दिया गया। ज्यों ही ट्रक आगे बढ़ा, माणकू बेतहाशा हंस दिया।

"साले अफ़ीम खोजते हैं, शराब खोजते हैं। मैं जो नशे की बोतल ले जा रहा हूं, सालों को दिखी ही नहीं ... "
और रत्नी पहले अपने आप में सिकुड़ गयी और फिर मन की सारी पत्तियों को खोलकर कहने लगी —
"देखना, कहीं नशे की बोतल तोड़ न देना! सभी टुकड़े तुम्हारे तलवों में उतर जाएंगे।"
"कहीं डूब मर!"
'मैं तो डूब जाऊंगी, तुम सागर बन जाओ!"

मैं सुन रही थी, हंस रही थी और फिर एक पीड़ा मेरे मन में आयी-'हाय री स्त्री, डूबने के लिए भी तैयार है, यदि तेरा प्रिय एक सागर हो ... !'

फिर धुलिया आ गया। हम ट्रक में से उतर गए और कुछ मिनट तक एक ख्याल मेरे मन को कुरेदता रहा- यह 'रत्नी' एक अधखिली कली-जैसी लड़की। माणकू इसे पता नहीं कहां से तोड़ लाया था। क्या इस कली को वह अपने जीवन में महकने देगा? यह कली कहीं पांवों में ही तो नहीं मसली जाएगी? ..

पिछले दिनों दिल्ली में एक घटना हुई थी। एक लड़की को एक मास्टर वायलिन सिखाया करता था और फिर दोनों ने सोचा कि वे बम्बई भाग जाएं। वहां वह गाया करेगी, वह वायलिन बजाया करेगा। रोज जब मास्टर आता, वह लड़की अपना एक-आध कपड़ा उसे पकड़ा देती और वह उसे वायलिन के डिब्बे में रखकर ले जाता। इस तरह लगभग महीने-भर में उस लड़की ने कई कपड़े मास्टर के घर भेज दिए और फिर जब वह अपने तीन कपड़ों में घर से निकली, किसी के मन में सन्देह की छाया तक न थी। और फिर .... उस लड़की का भी वही अंजाम हुआ, जो उससे पहले कई और लड़कियों का हो चुका था और उसके बाद कई और लड़कियों का होना था। वह लड़की बम्बई पहुंचकर कला की मूर्ती नहीं, कला की कब्र बन गई, ... और मैं सोच रही थी, यह रत्नी .... यह रत्नी क्या बनेगी?

आज तीन वर्ष बाद मैंने रत्नी को देखा। हंसी के पानी से वह तरकारियों को ताज़ा कर रही थी, "पालक एक आने गड्डी, टमाटर छह आने रत्तल और हरी मिर्चे एक आने ढेरी ... " और उसके चेहरे पर पालक की सारी कोमलता, टमाटरों का सारा रंग और हरी मिर्चों की सारी खुशबू पुती हुई थी।

जीवी के मुख पर दुःखों की रेखाएं थीं – वहीं रेखाएं, जो मेरे गीतों में थीं और रेखाएं रेखाओं में मिल गयी थीं।

रत्ती के मुख पर हंसी की बूंदे थीं– वह हंसी, जब सपने उग आएं, तो ओस की बूंदों की तरह उन पत्तियों पर पड़ जाती है; और वे सपने मेरे गीतों के तुकान्त बनते थे।

जो सपना जीवी के मन में था, वही सपना रत्ती के मन में था। जीवी का सपना एक उपन्यास के आंसू बन गया और रत्ती का सपना गीतों के तुकान्त तोड़ कर आज उसकी झोली में दूध पी रहा था

खुले आकाश में — जसवंत सिंह विरदी

गर्मियों के दिनों में मेरे घर के पीछे अक्सर हलचल मची रहती है। यह ठीक है कि मेरी पत्नी पक्षियों के लिए ढेर सारे दाने और रोटी के टुकड़े घर के पीछे फेंक देती है। पर यह हलचल का कारण नहीं है।

कई पक्षी स्वयं चुग्गा चुगते हैं और दूसरे पक्षियों को भी आवाजें लगाते हैं, पर कई सिर्फ अपने आप चुग्गा चुगते हैं और दूसरों को पास भी नहीं फटकने देते। पर हलचल का कारण यह भी नहीं है।

वास्तव में बात यह है कि जब मासूम चिड़िया दीवार या स्नानघर के कोनों में अपने घोंसले बना लेती हैं तब शारकें तुरन्त हाज़िर हो जाती हैं। चिड़िया जो भी तिनका-तिनका इकट्ठा करती हैं, शारके उनको एक-एक कर बिखेर देती हैं। पर चिड़िया मोर्चे पर डटी रहती हैं।...

प्रत्येक वर्ष ऐसा ही होता है। कुछ दिन पहले एक बार जब मेरी पत्नी दोपहर के बाद घर के पीछे गई तो उसने देखा कि घोंसले के नीचे धरती पर एक अण्डा टूटा पड़ा था।

– "यह शारके की शरारत है।" उसने गुस्से से कहा – "मैं शारकों को इस घर में नहीं आने दूँगी।"
– "तू कैसे रोकेगी?"
– "मैं रोक लूँगी।"
– "पक्षियों पर कोई पाबन्दी नहीं लगाई जा सकती।"
" फिर उन्होंने चिड़िया का अण्डा क्यों तोड़ा?"
– "चल, हमें क्या।"
– "क्यों, है क्यों नहीं?" उसने गुस्से से कहा – "चिड़िया ने हमारे घर में घोंसला बनाकर अण्डे दिए हैं... हमारा फर्ज है उसकी रखवाली करना।"

उस दिन बात वहीं समाप्त हो गई। क्योंकि वह बहुत भावुक नज़र आ रही थी और स्त्री जब भावुक हो तो उसके साथ मुकाबला नहीं हो सकता।

कालिज में छुट्टियाँ थीं और मैं सप्तसिंधु के लोगों के बारे में अपना शोधपत्र पूरा कर रहा था। वैदिक काल के आर्य लोगों से लेकर आज तक सप्तसिंधु अथवा पंजाब के लोगों को विदेशी हमलावारों और प्रकृति की निर्दयी शक्तियों से युद्ध करना पड़ा है, तब जाकर वे अपने आपको इस धरती पर स्थापित कर सके हैं।.... अब तो इस धरती पर वातावरण में ऐसे शौर्यपूर्ण भाव व्याप्त हैं जो हर किसी को जुल्म के विरूद्ध उठने के लिए प्रेरित करते हैं। मैं दोपहर तक लिखता हूँ और फिर खाना खाकर सो जाता हूँ। सोते हुए भी मैं प्रायः बहादुर पंजाबी लोगों के कारनामों के बारे में सोचता रहता हूँ।

एक दिन दोपहर के वक्त मेरी आँख लगी ही थी कि मैंने घर के पिछवाड़े पक्षियों की चीख-पुकार और बहुत ज़ोर का शोर सुना। मैं तुरन्त उठकर बैठ गया। मेरी पत्नी कह रही थी – "इन शारकों ने चिड़िया के बच्चे को नहीं छोड़ना।"
– "क्या कर लेंगी?"
– "मार देंगी।"
– "क्यों? क्या पक्षियों में भी ईर्ष्या होती है?"
– "आपका क्या ख्याल है, आदमियों में ही होती है?"
पल-भर रूक कर उसने फिर कहा – "परसों चिड़िया का बच्चा नीचे गिर गया था।"
– "फिर?"
– "मैंने उसको उठाकर, घोंसले में रख दिया।"
– "वह तुमसे डरा नहीं?"
– "नहीं.... पक्षियों को भी अपने चाहने वालों का पता होता है।"
अभी हम बात कर ही रहे थे कि चिड़ियों की चीं-चीं का बहुत बड़ा तूफान उठा और मेरी पत्नी तुरन्त उठकर आगे आई, पर मैंने उसकी बाजू पकड़ कर रोक लिया।
– "क्या बात है?"
"चिड़ियों को अपनी सहायता स्वयं करने दो," मैंने कहा। वह जल्दी से बोली – "वह कमज़ोर हैं।"
– "नहीं... तुम ही उनको कमज़ोर समझती हो।"
– "तो क्या... ?"
– "तुम उनको शारकों के विरूद्ध लड़ने दो। हमें हर समय उनके साथ नहीं रहना।" मैंने कहा – "ज़्यादा से ज़्यादा वह बच्चा खत्म ही तो हो जायेगा... "
– "हाँ.... हाँ... ।"
– "पर चिड़िया डटके लड़ना सीख जायेंगी।"
उसने धैर्य से कहा – 'मैं देख तो लूँ क्या हो रहा है।"
– "अवश्य देखो... पर उनकी लड़ाई में दखल मत देना।"
"इस तरह बुराई को सहारा मिलता है," उसने प्रतिवाद किया।
मैंने कहा – "जिसके साथ बुराई होती है वह भी तो बुराई के विरूद्ध डटे।"
– "अच्छा फिर.... लड़ने दो।" मेरी पत्नी ने बात खत्म कर दी।

घर के पीछे दूसरे समय का सूरज गरम हो रहा था। हमारे घर का मूंह पूरब की ओर है जिस कारण हम गर्मियों में सुबह घर के पीछे पश्चिम की ओर बैठते हैं और दोपहर बाद जब सूर्य पश्चिम की ओर झुक जाता है तब पूर्व की ओर घर के सामने बैठ जाते हैं।

हमने पीछे बरामदे में जाकर जाली के दरवाजे से देखा तो दोपहर को पाँच शारकों ने चिड़ियों के घोंसले को घेरा हुआ था। चिड़िया और चिड़ा दोनों ही घोंसले के आगे बैठे शारकों का मुकाबला कर रहे थे। किसी समय दो शारकें घोंसले पर हमला करतीं और कभी तीन। चिड़िया का बच्चा घोंसले के पीछे बैठा जोर-जोर से चीं-चीं कर रहा था। पता नहीं क्या कर रहा था।

कल एक चक्कीहारा भी घोंसले को मुँह मार रहा था। मेरी पत्नी ने घबराहट में कहा – "पर मैंने उसको भगा दिया.... ये शारकें तो पीछे ही पड़ गई है।"
– "कोई बात नहीं.... तुम इनका मुकाबला देखो।"

चिड़ियों के घोसले पर हमला करने वाली शारकें बहुत लड़ाकी और फुर्तीली थीं। उनके सांवले रंग और पीली चोंचें नुकीली थीं। वे जब बोलतीं तो बड़ी संगीतमयी आवाज़ निकलती, पर वे काम क्या कर रही थीं?

मैंने अपनी पत्नी से कहा – "शारकों का सांवला रंग इनकी ईर्ष्या के कारण ही हुआ होगा।"
– "क्या कहा जा सकता है!"
– "यही बात प्रतीत होती है।"
– आपने कहीं पढ़ा है क्या?"
– "नहीं, यह अनुभव की बात है और अनुभव की गवाही कभी गलत नहीं होती।"
पल–भर वह रूक कर बोली – "मैं शारकों को उड़ाने लगी हूँ।"
– "प्रतिदिन उड़ाओगी?"
– "फिर क्या करूँ? मुझसे बर्दाश्त नहीं होता.... ।"
– "फिर तुम चिड़ियों को घर में घोंसले मत बनाने दो।"
– "मेरे से यह नहीं हो सकेगा।"
– "फिर इसे बर्दाश्त करो।"
– "किसे?"
– "जो कुछ हो रहा है।"
– "पर यह तो ज्यादती है।"
मैंने जवाब नहीं दिया।

वैसे मैं सोच रहा था....'शारकें सोच रही होंगी – यदि धरती और आकाश में चिड़ियाँ ही चिड़ियाँ हो गई तो हमारा क्या बनेगा – इसलिए ठीक यही है कि चिड़ियों की नसल को बढ़ने ही न दिया जाए।'

उस समय जितने गुस्से से शारकों ने चिड़ियों पर हमला किया और चिड़ियों ने उस हमले को रोका, उस तरह अकसर आदमी भी नहीं कर सकते।

दोपहर का समय था और पक्षी एक–दूसरे का मुकाबला करके थक गये थे। ऐसा लग रहा था कि शारकें निराश हो गई थीं। उनकी उड़ान में पहले जैसा उत्साह नहीं था। चिड़िया और चिड़ा भी डटे हुए थे। चाहे वे थक गये थे और उनकी साँस तेज़ी से चल रही प्रतीत हो रही थी पर उनको लग रहा था कि अगर आज वे अपने बच्चे को न बचा सके तो शर्म से मर जायेंगे।
"बात क्या है, एक बिल्ली भी घोंसले की ओर झाँक रही थी।" मेरी पत्नी बोली – "पर वह ऊपर नहीं पहुँच सकती थी।"
"चिड़ियों के दुश्मन बहुत हैं।" मैंने कहा – "पर फिर भी यह हर जगह होती हैं.... खुले आकाश में विचरती हैं.....और कभी किसी का भय नहीं मानतीं.... ।"
मेरी यह बात सुनकर मेरी पत्नी की आँखों में चमक आ गई – "आपकी यह बात तो ठीक है।"

उस समय हमने देखा चिड़िया चीं–चीं करके शारकों को ललकार रही थी....कि हिम्मत है तो करो मुकाबला! मैंने कहा – "हमलावर में तब तक हिम्मत होती है जब तक कोई उसका मुकाबला नहीं करता, क्योंकि जुल्म करने वाले के पास प्राकृतिक शक्ति नहीं होती।"

सूरज पश्चिम की ओर अस्त हो रहा था। लोग बरामदे में बैठे चाय पी रहे थे। अब तक बच्चे भी उठ गये थे परन्तु उनको बिल्कुल मालूम न था कि चिड़ियों ने शारकों का कैसे मुकाबला किया। मेरी पत्नी संतुष्ट थी। वह सोच रही थी कि अगर जुल्म करने वाले का मुकाबला किया जाये तो जुल्म रूक सकता है।

अभी हमने चाय खत्म भी नहीं की थी कि पीछे से फिर पक्षियों का शोर उठा और मेरी पत्नी ने घबराकर कहा – "इस बार शारकें चिड़िया के बच्चे को नहीं छोड़ेंगी।"
– "फिर घबरा गई।"
– "बात ही घबराहट वाली है।"

– "पर तुम चिन्ता न करो।"
यह बात सुनकर काका (हमारा बेटा) जल्दी से आँगन की ओर बढ़ा और फिर तुरन्त वापिस आ गया और बोला – "मम्मी जी, भागकर आओ।"
– "क्या हुआ?"
– "बहुत ही दिलचस्प नज़ारा है?"
हम सभी जल्दी से पिछवाड़े की ओर गये। दृश्य सचमुच ही दिलचस्प था।
चिड़िया का बच्चा घोंसले में से निकलकर आँगन में आ गया था और सारी चिड़ियां उसको अपने साथ उड़ना सिखा रही थीं। उसके पर पूरी तरह उड़ने के लिए तैयार थे और उसका शरीर भी ताकतवर था।

वहां एक भी शारके नहीं था।

"यह तो कुछ ही दिनों में इतना बड़ा हो गया!" मेरी पत्नी ने खुश होकर कहा – "वाह, वाह!"
"तुझे मालूम नहीं", मैंने कहा– "मुकाबला आदमी को शक्तिशाली बना देता है।"

अगले पल ही एक जोरदार चीं–चीं की आवाज गूंजी और वह बच्चा पूरे जोर से दीवार के ऊपर से, बिजली के तारों को पार करता हुआ विस्तृत खुले आकाश में उड़ गया।

मणिया अमृता प्रीतम

संध्या गहराने को थी, जब विद्या के पति जयदेव अपने काम से वापस आए, और विद्या ने घर का दरवाज़ा खोलते हुए देखा – उनके साथ एक अजीब–सा दिखता आदमी था, बहुत मैला–सा बदन और गले में एक लंबा–सा कुर्ता पहने हुए...

विद्या ने कुछ पूछा नहीं, पर कुछ पूछती हुई निगाहों से अपने पति की ओर देखा। जयदेव हल्का–सा मुस्करा दिए, फिर विद्या से नहीं, उस आदमी से कहने लगे, "यह बीबी जी हैं, बहुत अच्छी हैं, तुम मन लगा कर काम करोगे, तो बहुत खुश होंगी..."

घर के भीतर आते हुए, जयदेव ने बरामदे में पड़ी हुई एक चटाई की ओर देखा और उस आदमी से कहने लगे, "तुम यहां बैठो, फिर हाथ–पैर धो लेना..."
और घर के बड़े कमरे की ओर जाते हुए विद्या से कहने लगे, "तुम चाहती थीं कि काम के लिए कोई ऐसा आदमी मिले, जो खाना पकाना भले ही न जानता हो, मगर ईमानदार हो..."
विद्या ने, कुछ घबराई सी, पूछा, "इसे कहां से पकड़ लाए हो?"
"आहिस्ता बोलो!" जयदेव ने कमरे के दीवान पर बैठते हुए कहा और पूछा, "मनू कहां है?"
"खेलने गया है, अभी आता होगा, लेकिन यह आदमी..." विद्या कह रही थी, जब जयदेव कहने लगे, "मनू से एक बात कहनी है, यह बहुत सीधा आदमी है, लेकिन डरा हुआ है, ख़ासकर बच्चों से डरा हुआ है...एक मेरे दफ़्तर के शर्मा जी हैं, उनके पास था।

वे इसकी मेहनत की और इमानदारी की तारीफ़ करते हैं, लेकिन उनके बच्चे उनके वश की बात नहीं हैं, उनके पांच बच्चे हैं, एकदम से शरारती– इसका क़द ज़रा लंबा है – वे इसे शुतुरमुर्ग कहकर परेशान करते थे...उनकी, शर्मा जी की पत्नी भी तेज़ मिजाज़ की हैं...यह कितनी बार उनके घर से भाग जाता था, लेकिन कहीं ठिकाना नहीं था, वे फिर से पकड़कर

इसे ले जाते थे..."
"लेकिन यह कुछ सीख भी पाएगा?" विद्या कह रही थी जब जयदेव कहने लगे, "ऊपर का काम तो करेगा, घर की सफ़ाई करेगा, बर्तन करेगा...सिर्फ़ मनू को अच्छी तरह समझा देना कि वह इससे बदसलूकी न करे...फिर देखेंगे...अब एक प्याला चाय दे दो – उसको भी चाय पूछ लेना..."

विद्या कमरे से लौटने को हुई, फिर भीतर के छोटे कमरे में जाकर एक कमीज़ पाजामा निकाल लाई, और हाथ में साबुन का एक टुकड़ा और एक पुराना–सा तौलिया लेकर, बाहर चटाई पर बैठे हुए उस आदमी से पूछने लगी, "तुम्हारा नाम क्या है?"

उसने जवाब नहीं दिया, और विद्या कुछ ख़ामोश रहकर कहने लगी, "देखो आंगन में उस दीवार के पीछे एक नल है – वहां जाकर नहा लो, अच्छी तरह साबुन से, और यह कपड़े पहन लो!"
वह आदमी सिर झुकाए बैठा था, उसने एक बार डरी–डरी–सी आंखों से ऊपर को देखा, पर उठा नहीं, न विद्या के हाथ से कपड़े लिए...
इतने में जयदेव उठकर आए और बोले, "मणिया! उठो, जैसे बीबी जी कह रही हैं, यह कपड़े ले लो, और वहां जाकर नहा लो!"
पास से विद्या मुस्करा दी, "तुम्हारा नाम तो बहुत अच्छा है, मणिया..."
मणिया ने आहिस्ता से उठकर विद्या के हाथ से कपड़े भी ले लिए, साबुन और तौलिया भी, और जहां उन लोगों ने संकेत किया था, वहां आंगन में बनी एक छोटी–सी दीवार की ओर चल दिया...

विद्या ने रसोई में जाकर चाय बनाई, मणिया के लिए एक गिलास चाय वहां रसोई में ही रख दी, और बाकी चाय दो प्यालों में डालकर बड़े कमरे में चली गई...
और फिर जब मणिया नहा कर क़मीज़ पजामा पहन कर रसोई की तरफ़ आया, तो विद्या ने उसे चाय का गिलास देते हुए एक नज़र हैरानी से उसकी ओर देखा, और हल्के से मुस्कराती हुई बड़े कमरे में जाकर जयदेव से कहने लगी, "ज़रा देखो तो उसे, आप पहचान नहीं सकेंगे। वह अच्छी ख़ासी शकल का है, और भरी जवानी में है। मैं समझी थी– बड़ी उम्र का है ..."

और कुछ ही दिनों में, विद्या इत्मीनान से अपने पति से कहने लगी, "एकदम कहना मानता है, कुछ बोलता नहीं, लेकिन दिन भर घर की सफ़ाई में लगा रहता है। मनू से थोड़ी–थोड़ी बात करने लगा है, वह इसे अपनी किताबों से तस्वीरें दिखाता है, तो यह खुश हो उठता है, लेकिन एक बात समझ में नहीं आती, अकेले में बैठता है, तो अपने से कुछ बोलता रहता है, लगता है– थोड़ा सा पागल है..."
घर की दीवार से सटा हुआ, एक नीम का पेड़ था, वह मणिया जब भी ख़ाली होता, उस पेड़ के नीचे बैठा रहता...उस वक्त अगर कोई पास से गुज़रे तो देख सकता था कि वह अकेला बैठा आहिस्ता–आहिस्ता कुछ इस तरह बोलता था, जैसे किसी से बात कर रहा हो, और वह भी कुछ गुस्से में...

विद्या को उसका यह रहस्य पकड़ में नहीं आता था, और एक दिन पेड़ के मोटे से तने की ओट में होकर विद्या ने सुना, वह मणिया एक दुःख और गुस्से में जाने किससे कह रहा था, "सब काम खुद करती हैं – साग़–सब्ज़ी कैसे पकाना है, मुझे कुछ नहीं सिखातीं, आटा भी नहीं मलने देतीं..."
विद्या से रहा नहीं गया, वह ज़ोर से हंस दी, और पेड़ की ओट से बाहर आकर कहने लगी, "मणिया! तुम खाना पकाना सीखोगे? आओ मेरे साथ...तूने मुझसे क्यों नहीं कहा? यह मेरी शिकायत किससे कर रहा था?"
मणिया शर्मिंदा–सा, नीम से झड़ती हुई पत्तियां बुहारने लगा...

मणिया अब साग़–सब्ज़ी भी काटने–पकाने लगा था और बाज़ार से ख़रीद कर भी लाने लगा था। एक दिन बाज़ार से भिंडी लानी थी, मणिया बाज़ार गया तो क़रीब एक घंटा लौटा नहीं। आया तो उसके हाथ के थेले में बहुत छोटी–छोटी और

ताज़ी भिंडियां थीं, लेकिन उसका सांस ऐसे फूल रहा था, जैसे कहीं से भागता हुआ आया हो। आते ही कहने लगा, "देखो जी! कितनी अच्छी भिंडी लाया हूं– पास वाले बाज़ार से नहीं– उस दूसरे बड़े बाज़ार से लाया हूं.."
विद्या ने भिंडी को धोकर छलनी में डाल दिया, पानी सुखाने के लिए, और कहने लगी, "भिंडी तो बढ़िया है, क्या इस बाज़ार में नहीं थी?"
मणिया कहने लगा, "इस बाज़ार में, जहां आप लोग सब्ज़ी लेते हैं– वह आदमी बहुत ख़राब है, उसके पास पकी हुई और बासी भिंडी थी, वह कहता था– मैं वहीं से ले जाऊं, और साथ मुझे ज़हर भी दे देता था..."
"ज़हर!" विद्या चौंक गई, और मणिया की ओर ऐसे देखने लगी, जैसे वह आज बिल्कुल पगला गया हो... पूछा, "वह तुम्हें ज़हर क्यों देने लगा?"
मणिया जल्दी से बोल उठा, "इसलिए कि मैं उसकी सड़ी हुई भिंडी ख़रीद लूं... कहता था– मैं जो सब्ज़ी देता हूं, तुम चुपचाप ले लिया करो, मैं रोज़ के तुम्हें बीस पैसे दूंगा... इस तरह के पैसे ज़हर होते हैं..."

विद्या मणिया की ओर देखती रह गई, फिर हल्के से मुस्कराकर पूछने लगी, "यह तुम्हें किसने बताया था कि इस तरह के पैसे ज़हर होते हैं?"
मणिया आज बहुत खुश था, बताने लगा, "मां ने कहा था... जब मैं छोटा था, किसी ने मुझे किसी दूसरे के बाग़ से आम तोड़कर लाने को कहा था, और मैं तोड़ लाया था। उस आदमी ने मुझे पचास पैसे दिए थे, और जब मैंने मां को दिए, तो कहने लगीं – यह ज़हर तू नहीं खाएगा, जाओ उस आदमी के पैसे उसी को दे के आओ, और फिर से किसी के कहने पर तू चोरी नहीं करेगा।"

और विद्या चुपचाप उसकी ओर देखती रह गई थी। उस दिन उसने मणिया से पूछा, "अब तुम्हारी मां कहां है? तुम उसे गांव में छोड़कर शहर में क्यों आए हो?"

मणिया मां के नाम से बहुत दर चुप रह गया, फिर कहने लगा, "मां नहीं है, मर गई, मेरा गांव में कोई नहीं है..."
दिन गुज़रते गए और विद्या को लगने लगा, जैसे मणिया को अब इस घर से मोह हो आया है। ख़ासकर मनू से, जो उसे पास बिठाकर कई बार कहानियां सुनाता है, और एक दिन जब मनू ने किसी बात की ज़िद में आकर रोटी नहीं खाई थी, तो विद्या ने देखा कि मणिया ने भी रोटी नहीं खाई थी...

एक शाम विद्या ने अपनी अलमारी खोलकर हरे रेशम का एक सूट निकाला, जो उसे कल सुबह कहीं जाने के लिए पहनना था। देखा कि क़मीज़ पर कितनी ही सलवटें थीं। उसने मणिया को कहा, "जाओ, अभी यह क़मीज़ प्रेस करवा के ले आओ! बिंदिया से कहना– अभी चाहिए!"

मणिया गया, पर उल्टे पांव लौट आया, और कमीज़ पलंग पर रख दी...
विद्या ने पूछा, "क्या हुआ, बिंदिया ने क़मीज़ प्रेस नहीं की?"
"वह नहीं करती..." मणिया ने इतना–सा कहा, और रसोई में जाकर बर्तन मलने लगा... विद्या ने फिर आवाज़ दी, "मणिया! क्या हुआ? वह क्यों नहीं करती? जाओ उसे बुलाकर लाओ!"

मणिया, उसी तरह बर्तन मलता रहा, गया नहीं, तो विद्या ने फिर से कहा। जवाब में मणिया कहने लगा, "साहब आते ही होंगे, अभी मुझे आटा मलना है, अभी दाल भी पकी नहीं और अभी चावल बीनने हैं, और मनू साहब ने कुछ मीठा पकाने को कहा था... अभी..."
विद्या हैरान थी कि आज मणिया को क्या हो गया। उसने आज तक किसी काम में आना–कानी नहीं की थी... और विद्या ने कुछ ऊंची आवाज़ में कहा, "मैं देख लेती हूं रसोई में, तुम जाओ, बिंदिया को अभी बुलाकर लाओ..."
मणिया बर्तन वहीं छोड़कर गया, लेकिन उल्टे पांव लौट आया, कहने लगा, "वह नहीं आती," और फिर चुपचाप बर्तन मलने लगा।
विद्या की पकड़ में कुछ नहीं आ रहा था। वह सोच रही थी – जाने क्या हुआ, बिंदिया ऐसी तो नहीं थी...

इतने में दरवाज़े की ओर से बिंदिया की पायल सुनाई दी, और वह हंसती-हंसती आकर कहने लगी, "आप मुझे कमीज़ दीजिए! मैं अभी प्रेस किए लाती हूं।"
"पर हुआ क्या है?" विद्या ने पूछा तो बिंदिया हंसने लगी, "मणिया से पूछो।"
"वह तो कुछ बताता नहीं।" विद्या ने कहा, और भीतर जाकर क़मीज़ ले आई। उसने फिर मणिया की ओर देखा और पूछा, "बोलो मणिया! क्या बात हुई थी? तू तो कहता था, वह प्रेस नहीं करती, और देखो वह खुद लेने आई है।"
मणिया ने न इधर को देखा, और न कोई जवाब दिया। बिंदिया हंसती रही और फिर कहने लगी, "बात कुछ नहीं थी, यह जब भी आपके कपड़े लेकर आता था, मैं इसे मज़ाक़ से कहती थी – देखो! इतने कपड़े पड़े हैं, पहले यह प्रेस करूंगी और फिर तुम्हारे कपड़े-अगर अभी करवाने हैं तो नाच कर दिखाओ! और यह हंसता भी था, नाचता भी था, और मैं सारा काम छोड़कर, आपके कपड़े प्रेस करने लगती थी...आज पता नहीं क्या हुआ, मैंने इसे नाचने को कहा, तो यह वहां से भाग आया। मैंने मज़ाक में कहा था – अब मैं कमीज़ प्रेस नहीं करूंगी।"

विद्या चुपचाप सुनती रही, फिर कहने लगी, "और क्या बात हुई थी?"
बिंदिया हंसते-हंसते कहने लगी, "और तो कोई बात नहीं हुई, आज तो इसे मेरी मां ने एक लडडू भी दिया था, खाने को, लेकिन यह लडडू भी वहां छोड़ आया..."
"तुम काहे का लडडू इसे खिला रही थीं?" विद्या ने मुस्कराकर पूछा तो बिंदिया कुछ सकुचाती-सी कहने लगी – मेरी सगाई हुई है, मां ने इसे वही लडडू दिया था..."

बिंदिया यह कहकर चली गई, क़मीज़ प्रेस करके लाई, फिर से जाती बार मणिया को कहती गई, "अरे, तू आज किस बात से रूठ गया..." पर मणिया ने उसकी ओर नहीं देखा, खामोश दूसरी ओर देखता रहा। रात हुई – सबने खाना खाया, मनू ने रोज़ की तरह मणिया को बुलाकर कुछ तस्वीरें दिखाई पर मणिया सबकी ओर कुछ इस तरह देखता रहा जैसे कहीं बहुत दूर खड़ा हो और दूर से किसी को पहचान न पा रहा हो...

सुबह की चाय मणिया ही सबको कमरे में देता था। सूरज निकलने से पहले, लेकिन जब सूरज की किरण खिड़की में से विद्या की चारपाई तक आ गई, तब भी कहीं मणिया की आवाज़ नहीं आ रही थी...
विद्या जल्दी से उठी, रसोईघर में गई, पर मणिया वहां नहीं था। जयदेव भी उठे, देखा, कुछ परेशान हुए, पर विद्या ने कहा, "आप घबराइए नहीं, मैं बाहर नीम के पेड़ तले देखती हूं, वह ज़रूर वहीं होगा..."
और जिस तरह एक बार आगे विद्या ने हौले से जाकर पेड़ के तने की ओट में होकर मणिया को देखा और सुना था, वहां गई तो मणिया सचमुच वहीं था, अपने में खोया-सा, कहीं अपने से बाहर बहुत दूर और कांपते से होठों से बोले जा रहा था, "जाओ! तुम भी जाओ- तुम भी अलसी हो...तुम वही हो – अलसी...जाओ...जाओ..."

विद्या ने मणिया के क़रीब जाकर उसके कंधे पर हाथ रख दिया और आहिस्ता से कुछ इस तरह बोली, जैसे नीम के पेड़ से नीम की पत्तियां झड़ रही हों, "अलसी कौन थी? वह कहां चली गई?"
मणिया की आंखें कुछ इतनी दूर, इतनी दूर देख रही थीं कि पास कौन खड़ा था, उसे पता नहीं चल रहा था...पर एक आवाज़ थी, जो फिर-फिर से उसके कानों से टकरता रही थी – कौन थी अलसी?
मणिया अपने में खोया-सा बोलने लगा, "वह मेरे साथ खेलती थी...हम दोनों जंगल में खेलते थे, कहते थी- नदी के पार जाओ और उस पार की बेरी के बेर तोड़कर लाओ...मैं नदी में तैर जाता था और दूसरे किनारे पर से बेर लाता था..."
"वह कहां चली गई?" विद्या की आवाज़ हवा के झोंके की तरह उसके कानों में पड़ी तो वह कहने लगा, "अलसी का ब्याह हो गया, वह चली गई..."
विद्या ने मणिया के कंधे को झकझोरा, कहा, "चलो उठो!" मणिया ने एक बार विद्या की ओर देखा, पर कहा कुछ नहीं। उसी तरह फिर ख़ला में देखने लगा...
विद्या ने फिर एक बार पूछा, "अलसी ने जाते समय तुम्हें कुछ नहीं कहा था?"
मणिया अपने बदन पर झड़ती नीम की पत्तियों को मुट्ठी में भरता हुआ कहने लगा, "आई थी, ब्याह के लडडू देने के लिए..." और मणिया मुट्ठी खोलकर नीम की पत्तियों को ज़मीन पर बिखेरता कहने लगा, "मुझे लडडू खिलाती है..."

विद्या ने उसके सिर पर से नीम की पत्तियां झाड़ते हुए, कुछ ज़ोर से कहा, "अब उठो! चलो, चाय बनाओ!"
मणिया एक फर्माबरदार की तरह उठ खड़ा हुआ और घर में आकर चाय बनाने लगा...
वह छुट्टी का दिन था, विद्या को और जयदेव को आज कहीं जाना था, इसलिए चाय पीकर मनू को घर में छोड़कर चले गए..
दोपहर ढलने लगी थी, जब वे दोनों वापस आए, तो घर में मनू था, पर मणिया नहीं था। मनू ने बताया, "उसे खिलाया था, फिर कहीं चला गया, और अभी तक आया नहीं है..."
जयदेव उसकी तलाश में घर से निकलने लगे, तो विद्या ने कहा, "वह आपको नहीं मिलेगा, वह आज दूसरी बार अपना गांव छोड़कर चला गया है..."
जयदेव ने विद्या की ओर देखा, पूछा, "पर क्यों?"
विद्या कुछ देर ख़ामोश रही, फिर कहने लगी, "अब एक और अलसी का ब्याह होने वाला है..."

सहपाठी — सत्यजित राय

अभी सुबह के सवा नौ बजे हैं।
मोहित सरकार ने गले में टाई का फंदा डाला ही था कि उस की पत्नी अरूणा कमरे में आई और बोली, 'तुम्हारा फोन।'
'अब अभी कौन फोन कर सकता है भला!'
मोहित का ठीक साढ़े नौ बजे दफ़्तर जाने का नियम रहा है। अब घर से दफ़्तर को निकलते वक्त 'तुम्हारा फोन' सुन कर स्वभावतः मोहित की त्यौरियां चढ़ गई।
अरूणा ने बताया, 'वह कभी तुम्हारे साथ स्कूल में पढ़ता था।'
'स्कूल में। ..... अच्छा ..... नाम बताया?'
'उस ने कहा कि जय नाम बताने पर ही वह समझ जाएगा।
मोहित सरकार ने कोई तीस साल पहले स्कूल छोड़ा होगा। उस की क्लास में चालीस लड़के रहे होंगे। अगर वह बड़े ध्यान से सोचे भी तो ज्यादा-से-ज्यादा बीस साथियों के नाम याद कर सकता है और इस के साथ उन का चेहरा भी। सौभाग्य से जय या जयदेव के नाम और चेहरे की याद अब भी उसे है लेकिन वह क्लास के सब से अच्छे लड़कों में एक था। गोरा, सुंदर-सा चेहरा, पढ़ने-लिखने में होशियार, खेल-कूद में भी आगे, हाई जंप में अव्वल। कभी-कभी वह ताश के खेल भी दिखाया करता और हां, कैसेबियांका की आवृत्ति में उस ने कोई पदक भी जीता था। स्कूल से निकलने के बाद मोहित ने उसके बारे में कभी कोई खोज-ख़बर नहीं ली। लेकिन आज इतने सालों के बाद अपनी दोस्ती के बावजूद और कभी अपने सहपाठी रहे इस आदमी के बारे में कोई खास लगाव महसूस नही कर रहा था।
ख़ैर, मोहित ने फोन का रिसीवर पकड़ा।
'हैलो .....'
'कौन मोहित .... ! मुझे पहचान रहे हो भाई..... मैं वहीं तुम्हारा जय.... जयदेव बोस। बालिगंज स्कूल का सहपाठी।'
'भई अब आवाज से तो पहचान नहीं रहा.... हां चेहरा जरूर याद है....बात क्या है?
'तुम तो अब बड़े अफ़सर हो गए हो भई। मेरा नाम तुम्हें अब तक याद रहा, यही बहुत है।'
'अरे यह सब छोड़ो..... बताओ बात क्या है?'
'बस..... यूं ही थोड़ी जरूरत थी। एक बार मिलना चाहता हूं तुम से।'
'कब?'
'तुम जब कहो। लेकिन थोड़ी जल्दी हो तो अच्छा.... '
'तो फिर आज ही मिलो। मैं शाम को छह बजे घर आ जाता हूं तुम सात बजे आ सकोगे?'
'क्यों नहीं.... जरूर आऊंगा अच्छा तो धन्यवाद। तभी सारी बातें होंगी।'

अभी हाल ही में ख़रीदी गई आसमानी रंग की कार में दफ़्तर जाते हुए मोहित सरकार ने स्कूल में घटी कुछ घटनाओं को याद करने की कोशिश की। हैडमास्टर गिरीन्द्र सुर की पैनी नज़र और बेहद गंभीर स्वभाव के बावजूद स्कूली दिन भी सचमुच कैसी-कैसी खुशियों से भरे दिन थे। मोहित खुद भी एक अच्छा विद्यार्थी था। शंकर, मोहित और जयदेव — इन तीनों में ही प्रतिद्वंद्विता चलती रहती थी। पहले, दूसरे और तीसरे नंबर पर इन्हीं तीनों का बारी-बारी कब्ज़ा रहता। छठी से ले कर मोहित सरकार और जयदेव बोस एक साथ ही पढ़ते रहते थे। कई बार एक ही बेंच पर बैठ कर पढ़ाई की थी। फुटबॉल में भी दोनों का बराबरी का स्थान था। मोहित राइट इन खिलाड़ी था तो जयदेव राइट आउट। तब मोहित को जान पड़ता कि यह दोस्ती आज की नहीं, युगों की हैं। लेकिन स्कूल छोड़ने के बाद दोनों के रास्ते अलग-अलग हो गए। मोहित के पिता एक रईस आदमी थे, कलकत्ता के नामी वकील। स्कूल की पढ़ाई ख़त्म करने के बाद, मोहित का दाख़िला एक अच्छे से कॉलेज में हो गया और यहां की पढ़ाई समाप्त हो जाने के दो साल बाद ही उस की नियुक्ति एक बड़ी कारोबारी कंपनी के अफ़सर के रूप में हो गई। जयदेव किसी दूसरे शहर में किसी कॉलेज में भर्ती हो गया था। दर असल उसके पिताजी की नौकरी बदली वाली थी। सब से हैरानी की बात यह थी कि कॉलेज में जाने के बाद मोहित ने जयदेव की कमी को कभी महसूस नहीं किया। उस की जगह कॉलेज के एक दूसरे दोस्त ने ले ली। बाद में यह दोस्त भी बदल गया, जब कॉलेज जीवन भी पूरा हो जाने के बाद मोहित की नौकरी वाली जिन्दगी शूरू हो गई । मोहित अपनी दफ़्तरी दुनिया में चार बड़े अफसरों में से एक है और उसके सब से अच्छे दोस्तों में उस का ही एक सहकर्मी है। स्कूल के साथियों में एक प्रज्ञान सेनगुप्त है। लेकिन स्कूल की यादों में प्रज्ञान की कोई जगह नहीं हैं। लेकिन जयदेव — जिस के साथ पिछले तीस सालों से मुलाकात तक नहीं हुई हैं — उस की यादों ने अपनी काफी जगह बना रखी है। मोहित ने उन पुरानी बातों को याद करते हुए इस बात की सच्चाई को बड़ी गहराई से महसूस किया।

मोहित का दफ़्तर सेंट्रल एवेन्यू में हैं। चौरंगी और सुरेन्द्र बॅनर्जी रोड के मोड़ पर पहुंचते ही गाड़ियों की भीड़, बसों के हॉर्न और धुएं से मोहित सरकार की यादों की दुनिया ढ़ह गई और वह सामने खड़ी दुनिया के सामने था। अपनी कलाई घड़ी पर नज़र दौड़ाते हुए ही वह समझ गया कि वह आज तीन मिनट देर से दफ़्तर पहुंच रहा है।

दफ़्तर का काम निपट्टा कर, मोहित जब ली रोड़ स्थित अपने घर पहुंचा तो बालिगंज गवर्नमेंट स्कूल के बारे में उस के मन में रती भर याद नहीं बची थी। यहां तक कि वह सुबह टेलिफोन पर हुई बातों के बारे में भी भूल चुका था। उसे इस बात की याद तब आई, जब उस का नौकर विपिन ड्राइंग रूम में आया और उसने उस के हाथों में एक पूर्जा थमाया। यह किसी लेखन-पुस्तिका में से फाड़ा गया पन्ना था — मोड़ा हुआ। इस पर अंग्रेजी में लिखा था — 'जयदेव बोस .... एज़ पर अपाइंटमेंट।'

रेडियो पर बी. बी. सी. से आ रही खबरों को सुनना बंद कर मोहित ने विपिन को कहा, 'उसे अन्दर आने को कहो।'

लेकिन उस ने दूसरे ही पल यह महसूस किया कि जय इतने दिनों बाद मुझ से मिलने आ रहा है, उस के नाश्ते के लिए कुछ मंगा लेना चाहिए था। दफ़्तर से लौटते हुए पार्क स्ट्रीट से वह बड़े आराम से केक या पेस्ट्री वगैरह कुछ भी ला ही सकता था, लेकिन उसे जय के आने की बात याद ही नहीं रही। पता नहीं, उस की घरवाली ने इस बारे में कोई इन्तजाम कर रखा है या नहीं।

'पहचान रहे हो.... ?'

इस सवाल को सुन कर और इस के बोलने वाले की ओर देख कर मोहित सरकार की मनोदशा कुछ ऐसी हो गई कि बैठक वाले कमरे की सीढ़ी पार करने के बाद भी उसने नीचे की ओर एक कदम और बढ़ा दिया था — जब कि वहां कोई सीढ़ी नहीं थी।

कमरे की चौख़ट पार करने के बाद, जो सज्जन अंदर दाखिल हुए थे, उन्हों ने एक ढ़ीली-ढ़ाली सूती पतलून पहन रखी थी। इस के ऊपर एक घटिया छापे वाली सूती कमीज़। दोनों पर कभी इस्तरी की गई हो, ऐसा नहीं जान पड़ा। कमीज़ की कॉलर से जो सूरत झांक रही थी, उसे देख कर मोहित अपनी याद में बसे जयदेव से उस का कोई

तालमेल नहीं बिठा सका। आने वाले का चेहरा सूखा, गाल पिचके, आंखे धंसी, देह का रंग धूप में तप-तप कर काला पड़ गया था। इस चेहरे पर तीन-चार दिनों की कच्ची-पक्की मूछें उगी थी। माथे के उपर एक मस्सा और कनपटियों पर बेतरतीब ढ़ंग से फैले ढ़ेर सारे पके हुए बाल।

उस आदमी ने यह सवाल झूठी हंसी के साथ पूछा था — उसकी दांतों की कतार भी मोहित को दिख पड़ी। पान खा-खा कर सड़ गए ऐसे दांतों के साथ हंसने वाले को सब से पहले अपना मुंह हथेली से ढांप लेना चाहिए।

'काफी बदल गया हूं..... न..... ?'

'बैठो।'

मोहित अब तक खड़ा था। सामने वाले सोफे पर उस के बैठ जाने के बाद मोहित भी अपनी जगह पर बैठ गया। मोहित के विद्यार्थी जीवन की तस्वीर उस के अलबम में पड़ी है। उस तस्वीर में चौदह साल के मोहित के साथ आज के मोहित को पहचान पाना बहुत मुश्किल नहीं है। तो फिर सामने बैठे जय को पहचान पाना इतना कठिन क्यों हो रहा है? सिर्फ तीस सालों में क्या चेहरे में इतना बदलाव आ जाते हैं?

'तुम्हे पहचान पाने में कोई मुश्किल नहीं हो रही है। रास्ते पर भी देख लेता तो पहचान जाता।' भला आदमी आते ही शुरू हो गया था, 'दर असल मुझ पर मुसीबतों का पहाड़ सा टूट पड़ा है। कॉलेज में ही था कि पिताजी गुज़र गए। मैं पढ़ना-लिखना छोड़ कर नौकरी की तलाश में भटकता रहा और बाकी तुम्हें पता है ही। अच्छी किस्मत और सिफ़ारिश न हो तो आज के ज़माने में हम जैसे लोगों के लिए ..... '

'चाय तो पीयोगे?'

'चाय.... हां.. लेकिन।'

मोहित ने विपिन को बुला कर चाय लाने को कहा। इस के साथ उसे यह सोच कर राहत मिली कि केक या मिठाई न भी हो तो कोई ख़ास बात नहीं। इस के लिए बिस्कुट ही काफ़ी होगा।

'ओह!' .... उस भले आदमी ने कहा, 'आज दिन भर न जाने कितनी पुरानी बातें याद करता रहा।..... तुम्हें क्या बताऊं ... '

मोहित का भी कुछ समय ऐसे ही बीता है। लेकिन उसने ऐसा कुछ कहा नहीं।

'एल. सी. एम. और जी. सी. एम. की बातें याद हैं?'

मोहित को इस बारे में पता न था लेकिन प्रसंग आते ही उसे याद आ गया, एल. सी. एम. यानी पी. टी. मास्टर

लालचांद मुखर्जी और जी. सी. एम. यानी गणित के टीचर गोपेन्द्र चंद्र मितिर।

'स्कूल में ही पानी की टंकी के पीछे हम दोनो को जबरदस्ती आसपास खड़ा कर बॉक्स कैमरे से किसी ने हमारी तसवीर खींची थी, याद है?'

अपने होठों के कोने पर एक मीठी मुस्कान चिपका कर मोहित ने यह जता दिया कि उसे अच्छी तरह याद है। आश्चर्य , ये सब तो सच्ची बातें हैं और अब भी अगर यह जयदेव न हो तो इतनी बातों के बारे में इसे पता कैसे चला?

'स्कूली जीवन के वे पांचो साल, मेरे जीवन के सब से अच्छे साल थे।' आने वाले ने बताया और फिर अफसोस जताया, 'वैसे दिन अब दोबारा कभी नहीं आएंगे भाई!'

'लेकिन तुम तो लगभग मेरी ही उम्र के हो।' मोहित इस बात को कहे बिना रह नहीं पाया।

'मैं तुम से कोई तीन-चार महिने छोटा ही हूं।'

'तो फिर तुम्हारी यह हालत कैसे हुई? तुम तो गंजे हो गए?'

'परेशानी..... और तनाव के सिवा और क्या वज़ह होगी?' आगंतुक ने बताया, 'हालांकि गंजापन तो हमारे परिवार में पहले से ही रहा है। मेरे बाप और दादा दोनों ही गंजे हो गए थे सिर्फ पैंतीस साल की उम्र में। मेरे गाल धंस गए हैं — हाड़-तोड़ मेहनत की वज़ह से और ढ़ंग का खाना कहां नसीब होता है? और तुम लोगों की तरह मेज़-कुर्सी पर बैठ कर तो हम लोग काम नहीं करते। पिछले सात साल से एक कारखाने में काम कर रहा हूं, इस के बाद मेडिकल सेल्समैन के नाते इधर-उधर की भाग-दौड़, बीमे की दलाली, इस की दलाली, उस की दलाली.... । किसी एक काम में ठिक से जुटे

रहना अपने नसीब में कहां! अपने ही जाल में फंसी मकड़ी की तरह इधर-उधर घूमता रहता हूं। कहते हैं न देह धरे का दंड। देखना है यह देह भी कहां तक साथ देती है। तुम तो मेरी हालत देख ही रहे हो!'

बिपिन चाय ले आया था। चाय के साथ संदेश और समोसा भी। ग़नीमत है, पत्नी ने इस बात का ख़याल रखा था। लेकिन अपने सहपाठी की इस टूटी-फूटी तसवीर देख कर वह क्या सोच रही होगी — इस का अंदाज़ उसे नहीं हो पाया।

'तुम नहीं लोगे?' आगंतुक ने पूछा।

मोहित ने सिर हिला कर कहा, 'नहीं, अभी-अभी पी है।'

'संदेश तो ले लो।'

'नहीं .... तुम शुरू तो करो ... ।'

भले आदमी ने समोसा उठा कर मुंह में रखा और इस का एक टुकड़ा चबाते-चबाते बोला, 'बेटे का इम्तिहान सिर पर है और मेरी परेशानी यह है मोहित भाई कि मैं उस के लिए फीस के रूपए कहां से जुटाऊं? कुछ समझ में नहीं आता।'

अब आगे कुछ कहने की ज़रूरत नहीं थी। मोहित समझ गया। इस के आने के पहले ही उसे समझ लेना चाहिए था कि क्या माज़रा है? आर्थिक सहायता और इस के लिए प्रार्थना। आख़िर यह कितनी रकम की मदद मांगेगा? अगर बीस-पच्चीस रूपए दे देने पर भी पिण्ड छूट सके तो वह खुशकिस्मती ही होगी और अगर यह मदद नहीं दी गई तो यह बला टल पाएगी ऐसा नहीं कहा जा सकता।

'पता है, मेरा बेटा बड़ा होशियार है! अगर उसे अभी यह मदद नहीं मिली तो उस की पढ़ाई बीच में ही रूक जाएगी.....

मैं जब-जब इस बारे में सोचता हूं तो मेरी रातों की नींद हराम हो जाती है।'

प्लेट से दूसरा समोसा उड़ चुका था। मोहित ने मौका पा कर किशोर जयदेव के चेहरे से इस आगंतुक के चेहरे को मिला कर देखा और अब उसे पूरा यकीन हो गया कि उस बालक के साथ इस अधेड़ आदमी का कहीं कोई मेल नहीं।

'इसलिए कह रहा था कि ..... ' चाय की चुस्की भरते आगंतुक ने आगे कहा, 'अगर तुम सौ-ड़ेढ़ सौ रूपए अपने इस पुराने दोस्त को दे सको तो ..... '

'वेरी सॉरी।'

'क्या?'

मोहित ने मन-ही-मन यह सोच रखा था कि अगर बात रूपए-पैसे पर आई तो वह एकदम 'ना' कर देगा। लेकिन अब जा कर उसे लगा कि इतनी रूखाई से मना करने की जरूरत नहीं थी। इसलिए अपनी गलती की मरम्मत करते हुए उस ने बड़ी नरमी से कहा, 'सॉरी भाई। अभी मेरे पास कैश रूपए नहीं हैं।'

'मैं कल आ सकता हूं।'

'मैं कलकत्ता के बाहर रहूंगा। तीन दिनों के बाद लौटूंगा। तुम रविवार को आ जाओ।'

'रविवार को?'

आगंतुक थोड़ी देर तक चुप रहा। मोहित ने भी मन-ही-मन में कुछ ठान लिया था। यह वही जयदेव है, इस का कोई प्रमाण नहीं है। कलकत्ता के लोग एक -दूसरे को ठगने के ही हज़ार तरीके जान गए हैं। किसी के पास से तीस साल पहले के बालिगंज स्कूल की कुछ घटनाओं के बारे में जान लेना कोई मुश्किल काम नहीं था। वही सही।

'मैं रविवार को कितने बजे आ जाऊं?'

'सवेरे -सवेरे ही ठीक रहेगा।'

शुक्रवार को ईद की छुट्टी है। मोहित ने पहले से ही तय कर रखा है कि यह अपनी पत्नी के साथ बारूईपुर के एक मित्र के यहां उन के बागान बाड़ी में जा कर सप्ताहांत मनाएगा। वहां दो-तीन दिन तक रूक कर रविवार की रात को ही घर लौट पाएगा। इसलिए वह भला आदमी जब रविवार की सुबह घर पर आएगा तो मुझ से मिल नहीं पाएगा। इस बहाने की जरूरत नहीं पड़ती, अगर मोहित ने दो टूक शब्द में उस से 'ना' कह दिया होता। लेकिन ऐसे भी लोग होते हैं जो

एकदम ऐसा नहीं कह सकते। मोहित ऐसे ही स्वभाव का आदमी है। रविवार को उससे मुलाकात न हाने के बावजूद वह कोई दूसरा तरीका ढूंढ निकाले तो मोहित उस से भी बचने की कोशिश करेगा। शायद इस के बाद किसी दूसरी परेशानी का सामना करने की नौबत नहीं आएगी।

आगंतुक ने आखिरी बार चाय की चुस्की ली और कप को नीचे रखा था कि कमरे में एक और सज्जन आ गए। ये मोहित के अंतरंग मित्र थे — वाणीकांत सेन। दो अन्य सज्जनों के भी आने की बात है, इस के बाद यहीं ताश का अड्डा जमेगा। उस ने भले आगंतुक की तरफ़ शक की नजरों से देखा। मोहित इसे भांप गया। आगंतुक के साथ अपने दोस्त का परिचय कराने की बात मोहित बुरी तरह टाल गया।

'अच्छा तो फिर मिलेंगे .....अभी चलता हूं... ।' कह कर अजनबी आगंतुक उठ ख़ड़ा हुआ, 'तू मुझ पर यह उपकार कर दे, मैं सचमुच तेरा ऋणी रहूंगा।'

उस भले आदमी के चले जाने के बाद वाणीकांत ने मोहित की ओर हैरानी से देखा और पूछा, 'यह आदमी तुम से 'तू' कह कर बातें कर रहा था — बात क्या है?'

'इतनी देर तक तो तुम ही कहता रहा था। बाद में तुम्हे सुनाने के लिए ही अचानक तू कह गया।'

'कौन है यह आदमी?'

मोहित कोई जवाब दिए बिना बुक-शेल्फ की ओर बढ़ गया और उस पर से एक पुराना फोटो अलबम बाहर निकाल लाया। फिर इस का एक पन्ना उलट कर वाणीकांत को सामने बढ़ा दिया।

'यह तुम्हारे स्कूल का ग्रुप है शायद?'

'हां, बोटोनिक्स में हम सब पिकनिक के लिए गए थे।' मोहित ने बताया।

'ये पांचो कौन-कौन हैं?'

'मुझे नहीं पहचान रहे?'

'रूको, ज़रा देखने तो दो।'

अलबम को अपनी आंखों के थोड़ा नज़दीक ले जाते ही बड़ी आसानी से वाणीकांत ने अपने मित्र को पहचान लिया।

'अच्छा, अब मेरी बाई ओर ख़ड़े इस लड़के को अच्छी तरह दखो।'

तसवीर को अपनी आंखों के कुछ और नज़दीक ला कर वाणीकांत ने कहा, 'हां, देख लिया।'

'अरे, यही तो है वह भला आदमी, जो अभी-अभी यहां से उठ कर गया।' मोहित ने बताया।

'स्कूल से ही तो जुआ खेलने की लत नहीं लगी है इसे?' अलबम को तेज़ी से बंद कर इसे सोफे पर फेंकते हुए वाणीकांत ने फिर कहा, 'मैं ने इस आदमी को कम-से-कम तीस-बत्तीस बार रेस के मैदान में देखा हैं।'

'तुम ठीक कह रहे हो .... ,' मोहित सरकार ने हामी भरी और इस के बाद आगंतुक के साथ क्या-क्या बातें हुई, इस बारे में बताया।

'अरे, थाने में खबर कर दो।' वाणीकांत ने उसे सलाह दी, 'कलकत्ता अब ऐसे ही चोरों, लुटेरों और उचक्कों का डिपो हो गया है। इस तसवीर वाले लड़के का ऐसा पका जुआड़ी बन जाना नामुमकिन है... इंपासिबल .. ।'

मोहित हौले-से मुस्कुराया और फिर बोला, 'रविवार को जब मैं उसे घर पर नहीं मिलूंगा तो पता चलेगा। मुझे लगता है इस के बाद यह इस तरह की हरकतों से बाज़ आएगा।'

अपने बारूइपुर वाले मित्र के यहां पोखर की मच्छी, पॉल्टरी के ताज़े अंडे और पेड़ों में लगे आम, अमरूद, जामुन डाब और सीने से तकिया लगा ताश खेल कर, तन-मन की सारी थकान और ज़कड़न दूर कर मोहित सरकार रविवार की रात ग्यारह बजे जब अपने घर लौटा तो अपने नौकर बिपिन से उसे खबर मिली कि उस दिन शाम को जो सज्जन आए थे — वे आज सुबह भी घर आए थे।

'कुछ कह कर गए हैं?'

'जी नहीं।' बिपिन ने बताया।

चलो जान बची। एक छोटी–सी जुगत से बड़ी बला टली। अब वह नहीं आएगा। पिण्ड छूटा।

लेकिन नहीं। आफत रात भर के लिए ही टली थी। दूसरे दिन सुबह यही कोई आठ बजे, मोहित जब अपनी बैठक में अख़बार पढ़ रहा था तो बिपिन ने उस के सामने एक और तहाया हुआ पुर्ज़ा ला कर रख दिया। मोहित ने उसे खोल कर देखा। वह तीन लाइनों वाली चिट्ठी थी — 'भाई मोहित, मेरे दायें पैर में मोच आ गई है, इसलिए बेटे को भेज रहा हूं। सहायता के तौर पर जो थोड़ा–बहुत बन सके, इस के हाथ में दे देना, बड़ी कृपा होगी। निराश नहीं करोगे, इस आशा के साथ, इति।' — तुम्हारा जय

मोहित समझ गया अब कोई चारा नहीं हैं। जैसे भी हो, थोड़ा–बहुत दे कर जान छुड़ानी है — यह तय कर उस ने नोकर को बुलाया और कहा, 'ठीक है, छोकरे को बुलाओ।'

थोड़ी देर बाद ही, एक तेरह–चौदह साल का लड़का दरवाज़े से अंदर दाखिल हुआ। मोहित के पास आ कर उस ने उसे प्रणाम किया और फिर कुछ कदम पीछे हट कर चुपचाप खड़ा हो गया।

मोहित उस की तरफ़ कुछ देर तक बड़े गौर से देखता रहा। इस के बाद कहा, 'बैठ जाओ।'

लड़का थोड़ी देर तक किसी उधेड़बुन में पड़ा रहा, फिर सोफे के एक किनारे अपने दोनों हाथों को गोद में रख कर बैठ गया।

'मैं अभी आया।'

मोहित ने दूसरे तल्ले पर जा कर अपनी घरवाली के आंचल से चाबियों का गुच्छा खोला। इस के बाद आलमारी खोल कर पचास रूपए के चार नोट बाहर निकाल, इन्हें एक लिफ़ाफ़े में भरा और आलमारी बंद कर नीचे बैठकखाने में वापस आया।

'क्या नाम है तुम्हारा?'

'जी, संजय कुमार बोस।'

'इसमें रूपए हैं। बड़ी सावधानी से ले जाना होगा।'

लड़के ने सिर हिला कर हामी भरी।

'कहां रखोगे?'

'इधर, उपर वाली जेब में।'

'ट्राम से जाओगे या बस से?'

'जी, पैदल।'

'पैदल? तुम्हारा घर कहां है?'

'मिर्जापूर स्ट्रीट में।'

'भला इतनी दूर पैदल जाओगे?'

'पिताजी ने पैदल ही आने को कहा है।'

'अच्छा तो फिर एक काम करो। तुम एक घंटा यहीं बैठो ... ठीक है। नाश्ता कर लो। यहां ढ़ेर सारी किताबें हैं, इन्हें देखो। मैं नौ बजे दफ़्तर निकलूंगा। मुझे दफ़्तर छोड़ने के बाद मेरी गाड़ी तुम्हे तुम्हारे घर छोड़ देगी। तुम ड्राइवर को अपना रास्ता बता सकोगे न?' मोहित ने पूछा।

लड़के ने सिर हिला कर कहा, 'जी हां।'

मोहित ने बिपिन को बुलाया और इस लड़के संजय बोस के लिए चाय वगैरह लाने का आदेश दिया। फिर दफ़्तर के लिए तैयार होने ऊपर अपने कमरे में चला आया।

आज वह अपने को बहुत ही हल्का महसूस कर रहा था। और साथ ही बहुत ही खुश।

जय को देख कर पहचान न पाने के बावजूद, उस के बेटे संजय में उस ने अपना तीस साल पुराना सहपाठी पा लिया था।

जीवित और मृत — रवींद्रनाथ ठाकुर

ज़मींदार शारदाशंकर के परिवार के साथ उनके रानीघाट स्थित बड़े से घर में रह रही विधवा कादम्बिनी का अब कोई निकट सम्बन्धी नहीं बचा था। एक एक करके सब मर गये थे। उसके पति के परिवार में भी कोई ऐसा नहीं था जिसको कि वह अपना कह सके या जिसका कोई पति या बच्चा हो सिवाय एक छोटे बच्चे के जो कि उसके पति के बड़े भाई का बेटा था व कादम्बिनी की आंख का तारा था। उस बच्चे की मां उसके जन्म के पश्चात् बहुत बीमार पड़ गयी थी इसलिये उसका पालन पोषण उसकी काकी कादम्बिनी ने किया था। जब कोई किसी और के बच्चे को इतने लाड़ प्यार से पालता है तो उनके बीच में केवल एक ही सम्बन्ध रह जाता है और वह है प्रेम का सम्बन्ध। उस सम्बन्ध में अधिकार या सामाजिक नियम कोई मायने नहीं रखते। प्रेम को कोई किसी कानूनी दस्तावेज के द्वारा प्रमाणित नहीं कर सकता ओर न ही स्वयं प्रेम की यह अभिव्यक्ति होती है।प्रेम केवल और प्रगाढ़ ही हो सकता है क्योंकि यही इसका रूप है।

कादम्बिनी ने अपने कुंठित वैधव्य का सारा प्यार इस बच्चे पर अर्पित कर दिया था कि सावन की एक रात कादम्बिनी की अकस्मात् मृत्यु हो गयी। किसी अज्ञात कारणवश उसकी हृदयगति रूक गयी। हर जगह समय अपनी गति से चलता रहा परन्तु इस एक छोटे से प्यार से परिपूर्ण हृदय में इसकी घड़ी की सुई चलनी बन्द हो गयी। इस मामले को पुलिस की निगाह से दूर व चुपचाप रखने के लिये जमींदार के घर के चार ब्राह्मण कर्मचारियों ने उसके शव को जला दिया।

रानीघाट में श्मसान घाट बस्ती से बहुत दूर एक निर्जन स्थान पर था। वहां एक पानी की नांद के किनारे एक झोपड़ी व उसके बगल में एक विशाल बरगद के वृक्ष के अतिरिक्त कुछ और नहीं था। इस नांद को वहां बहुत समय पहले बहने वाली एक नदी, जो कि अब सूख गयी थी, के सूखे हुये हिस्से को खोद कर बनाया गया था व स्थानीय लोग इस नांद को नदी की एक पवित्र धारा मान कर पूजते थे।ये चार लोग शव को झोपड़ी के अन्दर रख कर चिता के लिये लकड़ी के पहुंचने की प्रतीक्षा करते हुये बैठे थे। लम्बी प्रतीक्षा के बाद वे व्याकुल होने लगे व उनमें से दो व्यक्ति, निताई व गुरूचरण बाकी दोनों व्यक्तियों, विधू व बनमाली, को शव की देखरेख करता हुआ छोड़कर बाहर ये देखने गये कि लकड़ी के आने में इतना विलम्ब क्यों हो रहा है।

वो एक बरसात की काली घटाओं वाली रात थी। आकाश में काले बादल घुमड़ रहे थे और तारे दिखाई नहीं दे रहे थे। झोपड़ी में दो लोग चुपचाप बैठे थे। उनमें से एक के पास उसकी चादर में लिपटी हुई माचिस व मोमबत्ती थी लेकिन वे इस ठंडी हवा में माचिस जला नहीं पाये, इसके साथ साथ लायी हुई लालटेन का तेल भी खत्म हो गया था। कुछ क्षणों की शान्ति के बाद, उनमें से एक बोला, 'भाई, अगर हमारे पास थोड़ी तम्बाकू रहती तो कितना अच्छा रहता। हम जल्दबाजी में सबकुछ भूल गए।' दूसरा व्यक्ति बोला, 'मैं जाकर दौड़ के थोड़ी सी लेकर आता हूं।एक मिनट से ज्यादा नहीं लगेगा।' विधू उसकी बात समझते हुये बोला, 'अच्छी बात है, तो मैं यहां खुद अकेला रूकूं क्या?' दोनों फिर से चुप हो गये। पांच मिनट एक घंटे के बराबर लग रहा था। दोनों अपने आप को मन ही मन कोसते हुये सोच रहे थे कि लकड़ी लेने गये बाकी दोनों लोग आराम से कहीं बैठकर बीड़ी फूंक रहे होंगे व गप्पें मार रहे होंगे और जल्द ही उनको अपना यह अहसास सच भी लगने लगा था। तालाब के किनारे मेंढकों के टर्राने की व झींगुरों की आवाज के अतिरिक्त कहीं कोई आवाज नहीं थी। तभी अचानक उनको ऐसा लगा कि पलंग थोड़ा हिल सा रहा है व शव ने एक तरफ करवट ली है। विधू और बनमाली थरथर कांपने लगे और भगवान को याद करने लगे। अगले ही क्षण एक लम्बी सी आह सुनाई दी जिसे सुनते ही वे दोनों तुरन्त बाहर भागे व गांव की ओर दौड़ने लगे।

कुछ मील दौड़ने के बाद, वे रास्ते में बाकी दोनों साथियों से मिले जो हाथों में लालटेन लिये हुये थे। उन दोनों ने सच में बीड़ी फूंकी थी और उनको लकड़ी के बारे में कुछ अता पता नही था। उन्होंने झूठ बोलते हुये कहा कि लकड़ी कट रही है व थोड़ी देर में पहुंचने वाली है। तब विधू व बनमाली ने उनको झोपड़ी में जो हुआ कह सुनाया। निताई व गुरूशरण बोले कि ये सब बकवास है व उन दोनों को अपनी जगह छोड़ के भागने के लिये फटकारने लगे।

वे चारों तुरन्त श्मसान घाट की झोपड़ी की तरफ लौटे।अंदर जाकर उन्होंने देखा कि पलंग खाली था और लाश का कोई अतापता नहीं था। वे एक दूसरे की तरफ घूरने लगे। क्या यह भेड़ियों का काम हो सकता है? लेकिन यहां तो वो कपड़ा भी नहीं था जिससे उन्होंने लाश को ढका था। झोपड़ी के चारों तरफ ढूंढ़ने पर उन्होंने दरवाजे के पास मिट्टी में कुछ ताजा व छोटे पदचिन्हों को देखा जो कि किसी औरत के प्रतीत होते थे। अब समस्या यह थी कि यह बात जमींदार को कैसे बतायी जाये। जमींदार शारदाशंकर मूर्ख नहीं थे जो कि भूत की बात का विश्वास कर लें। लम्बे विचार विमर्श के बाद उन्होंने सोचा कि वे कहेंगे कि उन्होंने शव की अंत्येष्टि कर दी है।

सूर्योदय के समय जब कुछ व्यक्ति लकड़ी लेकर आये तो इन चारों ने उनसे कह दिया कि देर हो जाने की वजह से उन्होंने झोपड़ी में रखी लकड़ी से ही शवदाह कर दिया। उन लोगों को इस बात पर शक करने का कोई कारण नहीं था। एक शव कोई ऐसी बहुमूल्य वस्तु तो है नहीं कि जिसे कोई चुरा ले।

यह संभव है कि कभी कभी एक शरीर जो कि मृत प्रतीत होता है, असल में जीवित होता है किन्तु सुषुप्तावस्था में अचेतन होता है व वो कुछ समय बाद फिर से जीवित हो सकता है। सच में कादम्बिनी मरी नहीं थी, किसी कारणवश वो मृतप्रायः या अचेतन हो गयी थी किन्तु अब फिर से ठीक हो गयी थी।

जब उसको होश आया, उसने अपने चारों तरफ अंधेरा देखा। उसने पाया कि यह जगह उसके सोने का कमरा नहीं थी। उसने एक बार दीदी कहकर पुकारा किन्तु अंधेरे में कोई उत्तर नहीं आया। उसको अपनी छाती में दर्द उठना व सांस का रूकना याद आया और वो उठ बैठी। उसको याद आया कि उसकी सबसे बड़ी जेठानी कमरे के कोने में बैठकर स्टोव पर बच्चे के लिये दूध गरम कर रही थी कि तभी उसको खड़े होने में असमर्थता महसूस हुई और वो पलंग पर गिर पड़ी। उसने हांफते हुये पुकारा, 'दीदी, मुन्ने को मेरे पास लाओ, मुझे लगता है मैं मरने वाली हूं।' तभी उसकी आंखों के सामने अंधेरा छा गया ऐसे जैसे कि किसी लिखे हुये कागज के ऊपर स्याही फैल गयी हो। उस क्षण कादम्बिनी की सारी स्मरणशक्ति व चेतना में, उसके जीवन की किताब के अक्षरों में भेद करना असम्भव सा हो गया। इस समय उसको यह भी याद नहीं रहा कि उसके भतीजे ने अपनी मीठी आवाज में उसको आखिरी बार काकी मां कहकर पुकारा था, कि उसको प्रेम की दवा की आखिरी पुड़िया मिली थी जो कि उसकी इस संसार से मृत्यु की अनजानी व कभी भी समाप्त न होने वाली यात्रा पर देखभाल करेगी।

उसको लगता था कि मृत्यु के स्थान पर अंधेरे व निर्जनता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। वहां देखने व सुनने के लिये कुछ भी नहीं था और वो वहां हमेशा जागते हुये बैठे रहने व प्रतीक्षा करने के अलावा कुछ भी नहीं कर सकती थी। तभी उसको खुले हुये दरवाजे से हवा का एक ठंडा व गीला झोंका महसूस हुआ, बरसाती मेंढकों के टर्राने की आवाज सुनायी दी और उसको बचपन से लेकर अब की सारी बातें यकायक याद आ गयीं। उसको लगने लगा कि उसका इस संसार से अभी भी कुछ रिश्ता है। तभी अचानक बिजली की चमक में एक पल में उसको नांद, बरगद का पेड़, बड़ा सा मैदान व पेड़ों की कतार दिखाई दिये। उसको याद आने लगा कि कैसे उसने कुछ शुभ अवसरों पर उस नांद में स्नान किया था, कैसे श्मसान घाट में मृत शवों को देखकर उसको मृत्यु की भयावहता का अहसास होने लगता था।

उस समय उसके मन में जो पहला विचार आया वो था घर लौटने का। पर तभी उसने सोचा, 'वे लोग मुझे वापस स्वीकार नहीं करेंगे क्योंकि उनकी नजरों में मैं जीवित नहीं हूं। यह उनके लिये एक श्राप की तरह होगा। मुझे जीवितों की धरती से निकाल दिया गया है और मैं जीवित मृत हूं। अगर ऐसा नहीं होता तो कैसे वो शारदाशंकर के घर की सुरक्षित

चाहरदीवारी से बाहर निकल कर इस सुदूर श्मसान घाट तक पहुंच गयी थी। परन्तु यदि दाह संस्कार का काम अभी तक समाप्त नहीं हुआ है तो उन लोगों का का क्या हुआ जो उसको जलाने आये थे।' उसको शारदाशंकर के घर में मरने से पहले बीते हुये अंतिम पल याद आने लगे और अपने आप को इस दूर एक श्मसान घाट में पाकर, उसने अपने आप से कहा, 'मेरा अव जीवित लोगों के संसार से कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं डरावनी हूं, बुराई का एक पुतला हूं, मैं अपनी खुद की भूत हूं।'

उसको सारे बंधन व नियम टूटते हुये लगे। ऐसा लगा कि उसमें जहां वह चाहे वहां जाने की, जो चाहे वो करने की एक अज्ञात शक्ति व असीमित छूट है। इस भावना के साथ वो उस झोपड़ी से एक पागल स्त्री के जैसे हवा के एक झोंके की तरह निकली और बिना किसी भय, लज्जा या चिन्ता के वो उस अंधेरे मैदान में भागने लगी।

किन्तु चलते-चलते उसके पैरों में दर्द होने लगा व उसको कमजोरी महसूस होने लगी। मैदान का दूर दूर तक कोई अन्त दिखाई नहीं देता था और यहां वहां धान के खेत और पानी के गहरे तालाब दिखाई देते थे। सूर्योदय के बाद, धीरे धीरे उसको शीशम के पेड दिखाई पड़ने लगे और चिड़ियों के चहचहाने की आवाज सुनाई देने लगी थी। अब उसको बहुत डर लग रहा था। उसे तनिक भी आभास नहीं था कि वो कहां है व अब उसका दुनिया के लोगों से क्या सम्बन्ध होगा। सावन की उस रात, जब तक उस विशाल मैदान में अंधेरा था, तब तक वो निर्भीक होकर अपने में ही मस्त थी पर अब उजाला व मनुष्य की उपस्थिति उसको परेशान करने लगे। जैसे मनुष्यों को भूत प्रेतों से डर लगता है, वैसे ही भूत प्रेतों को भी मनष्यों से डर लगता हैः ये दोनों नदी के दो अलग अलग किनारों पर रहने वाली दो भिन्न प्रजातियां हैं।

रास्ते में ऐसे किसी पागल स्त्री की तरह विचरते हुये, मिट्टी से सने हुये कपड़ों में व उसके अजीबोगरीब व्यवहार से कादम्बिनी किसी को भी डरा सकती थी। ऐसे में बच्चे तो शायद उसको देखकर दूर भाग जाते व दूर से ही उस पर पत्थर फेंकते। सौभाग्यवश, पहला व्यक्ति जिसने उसे इस स्थिति में देखा, एक सज्जन था।

उस व्यक्ति ने उसके पास जाकर पूछा, 'मां, ऐसा लगता है कि तुम किसी भद्र परिवार से सम्बन्ध रखती हो। ऐसी स्थिति में तुम इस रास्ते पर अकेले कहां जा रही हो?'

पहले तो कादम्बिनी ने उस व्यक्ति के प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया और उसकी ओर खाली निगाहों से घूरने लगी। उसको सब कुछ छूटा छूटा सा लग रहा था। उसको समझ में नहीं आ रहा था कि वो इस संसार में जीवित कैसे थी, कैसे एक राहगीर उससे प्रश्न पूछ रहा था व कैसे वो इस व्यक्ति को एक भद्र महिला लग रही थी।

उस सज्जन ने फिर पूछा, 'मां, मेरे साथ आओ, मैं तुम्हें तुम्हारे घर ले जाऊंगा। बताओ तुम्हारा घर कहां है?'

कादम्बिनी सोच में पड़ गयी। वो अपनी ससुराल वापस जाने का सोच भी नहीं सकती थी और उसका कोई अपना पैतृक घर भी नहीं था कि तभी उसे अपनी बचपन की सहेली योगमाया का ध्यान आया। हालांकि वो उससे बचपन के बाद नहीं मिली थी, उनमें बीच बीच में पत्राचार होता रहता था। कभी कभी उनमें इस बात पर जरूर प्रतियोगिता होती थी कि उसमें से कौन एक दूसरे को ज्यादा प्यार करता है। कादम्बिनी का कहना था कि वो योगमाया से ज्यादा किसी चीज को प्यार नहीं करती थी और योगमाया का कहना था कि कादम्बिनी उसके प्यार को ठीक से समझ नहीं पाती थी। पर उन दोनों को यह मालूम था कि अगर दुबारा मौका मिला तो दोनों एक दूसरे का साथ नहीं छोड़ेंगी। 'मैं निशिंदपुर में श्रीपति चरण बाबू के घर जा रहीं हूं।', कादम्बिनी ने उस सज्जन से कहा।

वो व्यक्ति कोलकाता जा रहा था। निशिंदपुर पास तो नहीं था पर वो उसके रास्ते से हट के नहीं था। उसने खुद कादम्बिनी को श्रीपति चरण बाबू के घर पहुंचाया।

प्रारम्भ में दोनों सहेलियों को एक दूसरे को पहचानने में परेशानी हुई पर जैसे ही उन्हें एक दूसरे में बचपन का रूप दिखा, उनकी आंखें चमक उठीं। योगमाया बोली, 'मैंने कभी भी नहीं सोचा था कि मैं तुमको दुबारा देखूंगी। तुम यहां कैसे? तुम्हारे ससुराल ने क्या तुम्हें घर से निकाल दिया है?'

कादम्बिनी कुछ देर चुप रहने के बाद बोली, 'भई, मुझसे मेरी ससुराल के बारे में मत पूछो। तुम मुझे अपने घर के एक कोने में एक नौकर की तरह आश्रय दे दो, मैं तुम्हारा हर काम करूंगी।'

योगमाया ने कहा, 'अरे वाह! तुम मेरी नौकरानी कैसे हो सकती हो? तुम तो मेरी सहेली, मेरी बहन जैसी हो।' तभी श्रीपति बाबू कमरे में आये। कादम्बिनी उनकी ओर एक क्षण के लिये देखकर बिना सर ढके व बिना कोई आदरभाव दिखाये धीरे से कमरे से बाहर चली गयी। योगमाया ये सोचकर कि कहीं श्रीपति बाबू उसकी सहेली के अभद्र व्यवहार से गुस्सा न हो जायें, उनसे माफी मांगने लगी। श्रीपति बाबू इतनी आसानी से मान गये कि उसको कुछ अजीब सा लगा।

हालांकि कादम्बिनी ने अपनी सहेली के घर का काम संभाल लिया था पर वो उसके साथ घनिष्ठ नहीं हो पायी, उनके बीच में मृत्यु की एक दीवार थी। यदि कोई व्यक्ति खुद पर संदेह करने लगता है या अपने बारे में ही सावधान रहता है तो वो किसी और के साथ घनिष्ठ नहीं हो सकता है। कादम्बिनी को ऐसा लगता था कि योगमाया, उसका घर व पति किसी और संसार के हैं। वो सोचती थी, 'वे लोग प्यार, कर्तव्य व भावनाओं से परिपूर्ण एक संसार में रहते हैं और मैं एक खाली छाया हूं। वे लोग जीवित संसार में हैं और मैं इस संसार से परे हूं।'

ये सब देखकर योगमाया भी परेशान थी और उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। अनिश्चितता के वातावरण में कविता, बहादुरी, या शिक्षा तो पनप सकते हैं किन्तु घरेलू माहौल नहीं और इसी कारण औरतें किसी भी रहस्य को दबा कर नहीं रख सकती हैं। इसलिये जिस चीज को वे समझ नहीं सकती हैं, या तो वे उस चीज से अपना नाता ही तोड़ लेती हैं व कोई सम्बन्ध नहीं रखती हैं या फिर वे उस चीज को किसी और ज्यादा उपयोगी चीज से बदल देती हैं। और यदि उनको कुछ भी समझ में नहीं आता है तो वे क्रोधित हो जाती हैं। जैसे जैसे कादम्बिनी का व्यवहार योगमाया की समझ से परे होने लगा, उतना ही योगमाया को उसके ऊपर इस बात पर गुस्सा आने लगा कि क्यों यह आफत उसके गले आन पड़ी है।

यहां पर एक और समस्या थी। कादम्बिनी खुद भी डरी हुई थी पर फिर भी वो अपने आप से भाग नहीं सकती थी। भूत प्रेत से डरने वाले लोग अंदर ही अंदर भयभीत हो जाते हैं क्योंकि वे भय के कारण को साक्षात देख नहीं सकते हैं। पर कादम्बिनी को किसी बाहरी चीज का डर थोड़े ही था, वो तो खुद अपने आप से ही डरी हुई थी। कभी कभी दिन की शांति में वो कमरे में अकेले बैठे हुये ही चिल्लाने लगती थी और शाम को लैंप की रोशनी में अपनी छाया को देखकर जोर जोर से कांपने लगती थी। घर का हर सदस्य उसके डर से चौकन्ना था। घर के नौकर, नौकरानियां व स्वयं योगमाया को सब जगह भूत नजर आते थे। तभी एक दिन आधी रात को कादम्बिनी अपने कमरे के दरवाजे पर आकर चिल्लायी, 'दीदी, दीदी, मैं तुमसे विनती करती हूं मुझे अकेला मत छोड़ो।'

योगमाया को डर भी लग रहा था व क्रोध भी आ रहा था। उसका बस चलता तो उसी समय वो उसको घर से निकाल देती। पर दयालु-हृदय श्रीपति बाबू ने बड़े यत्न से कादम्बिनी को शांत कराया व बगल के कमरे में भेज दिया।

अगले दिन श्रीपति बाबू को अनपेक्षित रूप से फटकार मिली। योगमाया ने उन पर लांछन लगाते हुये कहा, 'तो कितने अच्छे पुरूष है आप! एक औरत अपने पति का घर छोड़कर आपके घर में रहने लगती है, महीनों बाद भी वो जाने का नाम नहीं लेती है पर फिर भी आपने कभी तनिक शिकायत तक नहीं की।आप क्या सोचते हैं? मैं आप जैसे मर्दों को अच्छी तरह समझती हूं।'

यह सच है कि औरत पुरूष की कमजोरी होती है और औरतें उनके ऊपर इस बात को लेकर ज्यादा आक्षेप लगा सकती हैं। यद्यपि वो यह कसम खाने को तैयार थे कि सुन्दर पर बेचारी कादम्बिनी के प्रति उनके मन में कोई खोट नहीं था फिर भी उनके व्यवहार से उल्टा ही प्रतीत होता था। कादम्बिनी के आने के समय उन्होंने अपने आप से कहा था, 'हो सकता है कि इस निःसंतान विधवा के साथ उसके घर वालों ने अन्याय किया हो या क्रूरता भरा व्यवहार किया हो इसीलिये वो वहां से भागकर हमारे यहां शरण लेने आयी है। चूंकि उसके माता पिता नहीं हैं इसलिये मैं उसको कैसे छोड़ सकता हूं,।' उन्होंने इस विषय पर और सवाल जबाब करना उचित नहीं समझा क्योंकि हो सकता है कि वो इस विषय पर पूछे सवालों से और परेशान न हो जाये।

पर चूंकि अब उनकी अपनी पत्नी ही उनके उदार व धैर्यवान व्यवहार की ओर लांछन लगा रही थी, उनको लगा कि अपने घर में शान्ति रखने के लिये कादम्बिनी के ससुराल वालों को उसके बार में बताना ही होगा। आखिरकार काफी सोचविचार के बाद वे इस निर्णय पर पहुंचे कि कादम्बिनी के ससुराल को पत्र लिखने के बजाय खुद ही रानीघाट जाकर वस्तुःस्थिति का पता करना ज्यादा उचित रहेगा।

श्रीपति बाबू के जाने के बाद योगमाया कादम्बिनी के पास जाकर बोली, 'प्रिय, अब तुम्हारा यहां रहना उचित नहीं है। लोग क्या कहेंगे?

कादम्बिनी ने योगमाया की तरफ देखकर कहा, 'मेरा लोगों से कुछ लेना देना नहीं है।'

योगमाया थोड़ी सी हताश होकर चिड़चिड़ी आवाज में बोली, 'हो सकता है कि तुम्हारा कोई लेना देना न हो लेकिन हमारा तो है। आखिर कब तक हम किसी और की विधवा को अपने घर में रख सकते हैं?'

कादम्बिनी ने कहा, 'मेरे पति का घर कहां है?'

योगमाया ने सोचा, 'उफ! ये औरत क्या बक रही है?'

कादम्बिनी धीरे से बोली, ' मैं तुम्हारी क्या लगती हूं? क्या मैं संसार की हूं? तुम सब हंसते हो, रोते हो, प्यार करते हो, तुम्हारे पास कई सारी चीजें हैं, मैं तो केवल देखती रहती हूं। तुम सब मनुष्य हो, मैं तो केवल एक छाया हूं। मुझे समझ नहीं आता कि मैं भगवान ने क्यों मुझे तुम लोगों के बीच डाल दिया है। तुम्हें ये चिन्ता है कि मैं तुम्हारा घर बरबाद कर दूंगी पर मुझे ये नहीं समझ में आता कि मेरा तुमसे सम्बन्ध क्या है। पर जब भगवान ने मेरे लिये कोई जगह नहीं छोड़ी है तो मैं तुम्हारे पास ही रहूंगी व तुम्हें परेशान करूंगी फिर चाहे तुम मुझे मार ही क्यों न डालो।'

उसकी आंखों व आवाज में कुछ ऐसा था कि योगमाया उसकी बात का शब्दार्थ न समझते हुये भी मतलब समझ गयी और उसको कोई उत्तर देते न बना। न ही अब उसे कोई प्रश्न पूछते न बना और दुखी व पराजित मुद्रा में वो कमरे के बाहर चली गयी।

श्रीपति बाबू रानीघाट से रात के दस बजे के करीब लौटे। भारी बरसात से सब कुछ धुला धुला सा लगता था। बरसात की आवाज से ऐसा लगता था ये कभी बन्द नहीं होगी व रात का भी कोई अन्त नहीं होगा।

'क्या हुआ?', योगमाया ने पूछा।

'ये एक लम्बी कहानी है।', श्रीपति बाबू ने कहा। 'मैं तुम्हें बाद में बताऊंगा।' उन्होंने अपने गीले कपड़े उतार कर खाना खाया व तम्बाकू पीने के बाद सोने चले गये। वे कुछ सोच में डूबे हुये लग रहे थे। योगमाया ने अब तक तो अपनी जिज्ञासा को दबा के रखा था पर बिस्तर पर पहुंचते ही उसने पूछा, 'क्या पता लगा? बताइये मुझे।'

'तुमसे जरूर कोई गलती हुई है।', श्रीपति बाबू ने कहा।

योगमाया ये सुनकर थोड़ा सा नाराज हो गयी। औरतें कभी गलतियां नहीं करती हैं और अगर वो करती भी हैं तो आदमियों के लिये उसका जिक न करना ही उचित है। बात को ऐसे ही जाने देना चाहिये।

योगमाया ने थोड़ा उग्र स्वर में पूछा, 'किस बात मे?'

श्रीपति बाबू ने कहा, 'जिस औरत को तुमने घर में आश्रय दिया है वो तुम्हारी सहेली कादम्बिनी नहीं है।' एक पति के मुंह से इस प्रकार की बात निकलना झगड़े की बात हो सकती है।

'तो तुम्हारा कहना ये है कि मैं अपनी ही सहेली को नहीं जानती।', योगमाया बोली 'क्या मुझे उसको पहचानने में तुम्हारा इन्तजार करना पड़ेगा? अजीब बात है।'

श्रीपति बाबू बोले, 'ये बात नहीं है, मैं यह सबूत के आधार पर बोल रहा हूं।' उन्हें इस बात के बारे में कोई संदेह नहीं था कि कादम्बिनी मर चुकी है।

'सुनिये', योगमाया बोली। 'आपको पूरी बात का पता नहीं है। आपने जो भी जहां से भी सुना है सही नहीं है। वैसे भी आपसे जाने को किसने कहा था? अगर आपने एक पत्र लिख दिया होता तो पूरी बात का खुलासा हो गया होता।' अपनी पत्नी के अविश्वास को देखकर श्रीपति बाबू ने सारे सबूतों को पूरी तरह पूरी तरह से समझाने का प्रयास किया किन्तु असफलता ही हाथ लगी। वे दोनों थोड़ी थोड़ी देर में बहस करने लगते थे। लेकिन दोनों ही इस बात पर सहमत हो गये कि कादम्बिनी को घर से तुरन्त निकाल देना चाहिये क्योंकि श्रीपति बाबू का यह विश्वास था कि उनकी अतिथि उन लोगों के साथ छल कर रही है और योगमाया का यह मानना था कि वो अपने घर से भाग कर आयी है। पर बहस के दौरान उनमें से कोई भी अपनी बात से हटने को तैयार न था। वे जोर जोर से बोलने लगे, इससे अनजान कि कादम्बिनी बगल के कमरे में थी।

एक आवाज आयी, 'ये बहुत खराब बात है। जो भी हुआ मैंने अपने कानों से सुना था।'

दूसरी चिल्लाने की आवाज आयी, 'मैं ये कैसे मान लूं? मैं उसको अपनी आखों से पहचान सकती हूं।'

आखिरकार योगमाया बोली, 'ठीक है, ये बताइये कि कादन्बिनी कब मरी थी।' वो सोच रही थी कि कादम्बिनी के लिखे हुये पत्रों की तारीखों से वो श्रीपति बाबू को गलत सिद्ध कर देगी। पर उसने पाया कि कादम्बिनी श्रीपति बाबू को बताई गयी तारीख के ठीक एक दिन बाद उनके घर आयी थी। योगमाया को अपना हृदय जोर से धड़कने हुआ लगने लगा व श्रीपति बाबू भी थोड़ा असहज महसूस कर रहे थे। तभी अचानक उनके कमरे का दरवाजा खुल गया व ठंडी हवा से उनके कमरे का लैंप बुझ गया। उनका कमरा ऊपर से नीचे तक बाहर के अंधेरे से भर गया। तभी कादम्बिनी उनके कमरे के अंदर आकर खड़ी हो गयी। सुबह का करीब ढाई बज रहा था और बाहर मूसलाधार बरसात हो रही थी। 'सखी', कादम्बिनी बोली। 'मैं तुम्हारी कादम्बिनी ही हूं पर अब मैं जीवित नहीं हूं। मैं मृत हूं।'

यह सुनकर योगमाया डर के मारे चिल्ला पड़ी व श्रीपति बाबू की भी जबान बंद हो गयी। 'पर ये बताओ कि मृत होने के अलावा मैंने तुम्हारा और कौन सा नुकसान किया है? यदि मेरे पास इस समय इस संसार में रहने के लिये कोई और जगह

नहीं है तो मैं कहां जाऊं?' और तभी वो ऐसे चीखी जैसे कि बरसात की इस रात में वो भगवान को नींद से जगाना चाहती हो, 'बताओ, कहां जाऊं मैं?' ऐसा कहने के बाद दोनों पति पत्नी को भौंचक्का छोड़कर कादम्बिनी या तो एक ठिये की खोज में या किसी और संसार की ओर चली गयी।

ये कहना मुश्किल है कि कादम्बिनी रानीघाट कैसे पहुंची। पहले तो वो अपने को किसी को दिखाए बिना एक दिन तक एक खण्डहरनुमा मंदिर में बिना खाये पिये पड़ी रही। बरसात की इस शाम के समय, जब अंधेरा जल्दी हो जाता है व गांव के लोग तूफान के डर से अपने घरों में चले गये, कादम्बिनी सड़क पर फिर से प्रकट हुई। जैसे जैसे उसकी ससुराल पास आने लगी, उसका दिल जोरों से धड़कने लगा पर उसने सिर पर नौकरानियों की तरह लंबा सा घूंघट डाल लिया और दरबानों ने उसको अंदर जाने से नहीं रोका। बीच में, बरसात और तेज हो गयी थी और हवा प्रचंड वेग से बह रही थी।

शारदाशंकर की पत्नी जो कि घर की मालकिन थी, उसकी विधवा जेठानी के साथ ताश खेल रही थी और बुखार से पीड़ित छोटा बच्चा शयनकक्ष में सो रहा था। कादम्बिनी सबकी नजर बचाकर शयनकक्ष में पहुंची। ये कहना असम्भव है कि वो ससुराल वापस क्यों आयी थी। शायद उसको खुद इस बात का पता नहीं था पर शायद वो बच्चे को दोबारा देखना चाहती थी। इसके बाद उसको नहीं पता था कि वो कहां जायेगी या उसका क्या हाल होगा।

लैंप की रोशनी में उसने एक कमजोर और दुर्बल से छोटे से बच्चे को मुट्ठी बांध कर सोते हुये देखा। बच्चे को देखकर उसकी ममता की प्यास फिर से जाग उठी कि कैसे वो बच्चे को हर दुर्भाग्य या विपदा से बचाने के लिये उसको एक आखिरी बार अपनी छाती में भींच लेना चाहती थी। पर तभी उसने सोचा, 'जब मैं यहां नहीं रहूंगी तो इसकी देखभाल कौन करेगा? इसकी मां को तो सहेलियों का साथ, ताश खेलना, गप्पें मारना पसन्द है व वो इसको मेरी देखरेख में लम्बे समय के लिये भी छोड़कर खुश थी जिससे कि उसको इसके पालनपोषण के बारे में कभी कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ती थी। अब इसकी मेरे जैसी देखभाल कौन करेगा?' तभी उस बच्चे ने करवट बदलते हुये कहा आधी नींद में कहा, 'काकी मां, मुझे थोड़ा पानी दो।' उसने तुरन्त उत्तर दिया, 'मेरे प्यारे बेटे, मेरे लाल, तुम अपनी काकी मां को अभी तक नहीं भूले।' वो घड़े से तुरन्त पानी लेकर आयी व उसको अपनी छाती से लगाकर पानी पिलाने लगी। जब तक वो बच्चा नींद में था, उसको अपनी काकी के हाथ से पानी पीने में जरा भी आश्चर्य नहीं हुआ क्योंकि वह उसका आदी था। पर जैसे ही कादम्बिनी, जो कि अपनी ममता की प्यास को तृप्त कर रही थी, ने बच्चे को चूम कर दुबारा लिटाया, बच्चा नींद से जाग गया व उससे चिपक कर बोला, 'काकी मां, क्या तुम मर गयी थीं?'

उसने कहा, 'हां, मेरे बेटे।'

'तो तुम वापस कैसे आयीं? तुम दोबारा तो नहीं मरोगी?'

जब तक कि वो कोई उत्तर दे, हंगामा मच गया क्योंकि एक नौकरानी जो अपने हाथ में एक कटोरा लेकर आयी थी, चिल्लाते हुये बेहोश होकर गिर पड़ी। उसकी चीख सुनकर शारदाशंकर की पत्नी ताश फेंक कर तुरन्त दौड़ी दौड़ी आयीं, कादम्बिनी तो कमरे में खड़ी एकदम जड़ हो गयी थी व वो भागने या कुछ बोलने में भी असमर्थ थी। ये सब देखकर बच्चा भी डर गया। उसने सिसकते हुये कहा, 'काकी मां, आपको जाना चाहिये।'

कादम्बिनी को आज पहली बार लगा कि वो मरी नहीं थी। ये पुराना घर, घर की हर चीज, बच्चा, उसका प्यार– ये सब कुछ ही तो उसके लिये समान रूप से जीवित थे और उन सबके व कादम्बिनी के बीच अब कोई फासला न था। जब तक वो अपनी सहेली के घर में रही, वो अपने को मृत महसूस करती रही, ऐसा लगता रहा जैसे कि वो औरत जिसे उसकी सहेली जानती थी मर चुकी थी। पर अब उसने अपने भतीजे के कमरे में महसूस किया कि उसकी काकी मां कभी मरी ही नहीं थी।

'दीदी', वो टूटे से स्वर में बोली, 'आप मुझसे डर क्यों रही हैं? देखिये मैं जैसी थी वैसी ही हूं।'

उसकी जेठानी अपने को सम्भाल न सकीं और गिर पड़ीं।

अपनी बहन से यह समाचार पाकर शारदाशंकर बाबू खुद अंदर गये। वो हाथ जोड़ कर गिड़गिड़ाते हुये बोले, 'भाभी, आपका यह करना उचित नहीं है। सतीश हमारे परिवार का इकलौता बच्चा है, आप उसको नजर क्यों लगा रही हैं? क्या हम आपके लिये अजनबी हैं? जब से आप गयी हैं, वो प्रतिदिन कमजोर होता चला गया, लगातार बीमार रहा और रात दिन काकी मां काकी मां पुकारता रहा है। पर अब जब आपने इस संसार से विदा ले ली है तो कृपया उससे अपने को मत जोड़िये, कृपया चली जाइय– हम आपकी अंत्येष्टि उचित रीतियों से कर देंगे।'

कादम्बिनी और न सह सकी। वो चीख कर बोली, 'मैं मरी नहीं थी, मैं मरी नहीं थी, मैं बोलती हूं। मैं आपको कैसे समझाऊं कि मैं मरी नहीं थी। क्या आप देख नहीं सकते कि मैं जीवित हूं।' यह कह कर उसने जमीन पर गिरे हुये पीतल के कटोरे को उठाकर अपने माथे पर मारा, चोट से खून बहने लगा। 'देखिये, मैं जीवित हूं।'

शारदाशंकर वहां एक मूर्ति की तरह खड़े रहे, छोटा बच्चा अपने पिता के लिये रोने लगा और दोनों औरतें जमीन पर विक्षिप्त पड़ी थीं। कादम्बिनी रोते हुये व 'मैं मरी नहीं थी, मैं मरी नहीं थी' कहते हुये कमरे से भागी और उसने सीढ़ियों से उतर कर घर के अंदर एक पानी की नांद में डुबकी लगा दी। ऊपर की मंजिल से शारदाशंकर ने पानी के छपाके की आवाज सुनी।

उस रात पूरी रात बरसात हुयी और सुबह होने तक जारी थी, यहां तक कि दोपहर को भी कोई राहत नहीं मिली। कादम्बिनी ने मर कर यह सिद्ध कर दिया कि वो मरी नहीं थी।

सारांश शुभांगी भड़भड

शाम ढल गई थी। आस-पास के बंगलों से टी•वी• की आवाजें आने लगीं। रात के अंधेरे में कदम तेजी से बढ़ रहे थे, पर अभी तक विनायक राव लौटे नहीं थे। मालती बाई कभी अंदर, कभी बाहर चक्कर लगा-लगाकर थक गई थीं। घड़ी की सुई की भांति नियमित समय पर लौटने वाले विनायक राव अभी तक क्यों नहीं लौटे भला?

चिंता से मालती बाई का दिल बैठने लगा। नाना प्रकार के विचार-कुविचार मन को मथने लगे। "आंखों में मोतियाबिंद है। कहीं ठोकर..."

विचारों का बवंडर खड़ा हो गया। मालती बाई फोन के पास जाकर खड़ी हो गई। चार बंगले छोड़कर ही तो सुनीता का घर था। अब तो सुनीता के घर भी फोन लग गया था। क्यों न उसे फोन करूं? मालती बाई ने हाथ बढ़ाया पर रिसीवर उठाया नहीं।

"नहीं! सुनीता को क्यों हमेशा तंग करूं? अपनी समस्या अपने आप ही हल करनी चाहिए। इतना भी क्या दूसरों पर निर्भर होना? आ जाएंगे विनायक राव। अभी कौन आधी रात हुई है।" उन्होंने खुद को समझाया।

कुछ देर पहले प्रकाश आकर पूछताछ कर गया था, "मौसी, अकेली हो क्या? आए नहीं काका?"
"अरे कहां आए? इन पेंशनरों की गप्पें खत्म हों तब ना!" मालती बाई सहज होने का प्रयास कर रही थीं।

तभी प्रकाश ने बात का रूख बदला, "मौसी कल किराना ले आऊंगा, ठीक है न? और दवाइयां भी लानी होंगी। वह भी लिस्ट दे दो। कल सुबह एक काम से जल्दी जाना है। कल आना न होगा इधर।"

मालती बाई ने लिस्ट और पैसे पकड़ा दिए। प्रकाश उनकी हर जरूरत का ध्यान रखता है और अविनाश रोज ही वर्कशॉप से फोन करता है, "मौसी, क्या बनाया है आज? वाह, करेले की सब्जी? गुड़ और इमली वाली? मौसी मेरे लिए रखना – थोड़ी नहीं, कटोरा भरकर! बस, मैं तृप्त हो जाऊं तो समझो स्वर्ग में स्थान बन गया तुम्हारा।"

शरारती कहीं का! मालती बाई उत्तर में फोन पर ही झाड़ देतीं – "पेटू कहीं का! वर्कशाप में ध्यान है या खाने में!"

पर फोन रखकर प्रसन्न मुद्रा में काम में लग जातीं। कभी-कभी आंखें भर आतीं और विनायक राव भी चोरी से आंखों के कोने पोंछते हुए कमरे से निकल जाते।
"दो बच्चों का बाप है तू, पर है अभी छोटा ही," मालती बाई प्यार से फटकारती।

रात को सोने से पहले फिर एक बारगी फोन बजता और अविनाश का गंभीर स्वर फिर मन को मथ देता, "मौसी, सारी बत्तियां बुझा दीं न? पिछले दरवाजे की कुंडी भी लगा ली न? और हां, दवाइयां खा लीं? काका के पलंग के पास ही पानी का लोटा रख देना। और नींद न आए तो कंपोज खा लेना। और अगर कुछ जरूरत पड़े तो फोन कर देना।" इतनी सारी प्यार भरी ताकीदें करीब रोज रात को मिलतीं।

मालती बाई ने एक बार फिर घड़ी देखी और विचारों का तांता टूट गया। नौ बज गए थे। विनायक राव अभी तक आए नहीं थे। घबराहट में मालती बाई उठीं और फोन की ओर लपकीं तो पैर का अंगूठा मुड़ गया। दर्द की कसक उठी और तेजी से दिमाग को झनझना गई। नीचे बैठकर अंगूठा कसकर पकड़ा। तिलमिला उठीं। गुस्सा भी आया विनायक राव पर, "आखिर इतनी तो समझ होनी चाहिए इन्हें। मैं अकेली यहां चिंता कर रही हूंगी। न जाने क्या बतियाते रहते हैं ये पुरूष?"

पल में गुस्से का स्थान चिंता ने ले लिया, "न जाने क्या हुआ है, सिरदर्द भी था सुबह। कहीं कुछ..." विचारों ने झकझोर दिया।
"कहीं चले तो नहीं गए होंगे घर छोड़ के? कुछ दिनों से मन अस्वस्थ था। कह रहे थे, चला जाऊंगा, कहीं भी...कभी भी ..." और मालती बाई सिहर उठीं, "कहीं चले गए होंगे तो? कहां ढूंढ़ेंगे इतनी रात गए?"

तभी गैस पर रखी खिचड़ी जलने की बास आई और मालती बाई रसोई में गईं। दो मुट्ठी दाल-चावल की खिचड़ी जलकर काली हो गई थी। वह झुंझला गईं। न तो अब कुछ पकाने की इच्छा है, न हिम्मत। आवश्यकता भी नहीं। दो बूढ़ी जानें ...खाएंगी भी कितना? जब बच्चे थे तब कितना रसोई का काम होता था। खत्म ही नहीं होता था।

इतने में विनायक राव आ गए। मालती बाई उनके पास सोफे पर बैठ गई, "आज कितनी देर कर दी? कहां थे?"
"सोनाली बीमार थीं। वहीं गया था।"
"सोनाली? कौन सोनाली?"
"वही देशपांडे की सोनाली," विनायक राव बोल तो गए पर याद आया कि उन्होंने पत्नी से कभी सोनाली का जिक्र नहीं किया था।
"आपका-उसका भला क्या संबंध है?"
"मानो तो बहुत गहरा संबंध है और कहो तो कुछ नहीं।"
"मतलब!"
"मालती, सोनाली में मुझे अपनी स्वीटी दिखती है – बस! एक दिन आनंद पार्क में बैठा था। बच्चे छुपन-छुपाई खेल रहे थे। तभी छह-सात वर्ष की एक बच्ची दौड़ती हुई आई और बोली, "दादाजी, मैं आपके पीछे छुप रही हूं, बताना नहीं।"

अपनी कोट मेरे ऊपर डाल दो।" बस, यहीं लगा, हमारी स्वीटी मुझे मिल गई। मैं बच्ची में रम गया। सुबह अपनी सैर का समय मैंने उसके स्कूल के समय पर कर लिया। शाम को पार्क में दो-तीन घंटे कैसे बीतते हैं, पता तक नहीं लगता।"
"आपने मुझे नहीं बताया?" मालती बाई ने शिकायत के स्वर में कहा।
विनायक राव ने बात बदली, "बड़ी भूख लगी है। खिचड़ी तैयार है?"
"पहले बताओ, आप आज वहां क्यों गए?"
"सोनाली को बुखार था। पता लगा तो चला गया। वह भी जिद कर रही थी कि 'दादाजी को बुलाओ।' मुझसे रहा नहीं गया।"
"सो तो ठीक है पर मुझे भनक तक नहीं पड़ने दी आपने। ऐसा क्यों?"
मालती बाई का स्वर रूआंसा था। विनायक राव ने जवाब नहीं दिया, न ही मालती बाई ने दोबारा जवाब मांगा।

रात को हमेशा की तरह अविनाश का फोन आया तो मालती बाई उदास स्वर में बोलीं, "अरे अविनाश, सब कुछ पास रख लिया है - टार्च, पानी, दवाइयां सब! पर जब नजदीक के लोग ही दूर हो जाएं तब मन टूट जाता है। जीवन का सारांश निकल जाए तो हाथ में शून्य ही आता है, है न? तब लगता है, सारा गणित गलत हो गया है। गलती किसकी थी, पता नहीं - गरूड़-उड़ान सिखाने वाले की या स्वप्नों का जादू बिखेरने वाले की?"
"मौसी," अविनाश का गंभीर स्वर फोन पर गूंजा," मौसी, तुम्हारी आंखों में आंसू हैं न? पहले आंखें पोंछों, पोंछों पहले आंखें! देखो मौसी, न गरूड़-उड़ान बुरी है, न स्वप्न बुरे हैं। तुम्हें आजकल सब कुछ विह्वल करता है क्योंकि तुम्हारी अपनी तबीयत ठीक नहीं रहती।"
"बेटा, जीवन में जमा-घटा तो चलता ही है, जानती हूं, पर मन इसी में उलझ जाता है और यादें मन से चिपक जाती हैं, बस!"
"चलो, अब माला उठाओ और जप करो!" अविनाश ने आदेश भरे स्वर में कहा।
"माला पकड़ने से यादें चली जाएंगी क्या? बेटा, इधर उंगलियां तो एक-एक मनका सरकाती है, मुख भी श्रीराम का नाम लेता है पर मन भटकता रहता है। हम आम लोग शरीर से मन को अलग नहीं कर पाते।"
"आज क्या हो गया है तुम्हें, मौसी? कहो तो मैं आऊं?" अब अविनाश के स्वर में चिंता थी।
"नहीं रे, बच्चे! शांति से सो जा। हुआ कुछ नहीं, बस तुम्हारे काका शाम को देर गए लौटे तो मूड ही खराब हो गया मेरा। अच्छा, आज उर्मिला दिखी नहीं?" मालती बाई ने बात का रूख बदल दिया।
"मायके गई है। मौसी, तुम एक बार समझा तो दो उसे, कहो कि 'अविनाश का ध्यान रखा करे वह।" अविनाश ने शिकायत के स्वर में कहा।
"अच्छा, बाबा, कह दूंगी। तुम्हारी मां डांटती नहीं उसे?"
"मां? अरे, दोनों बहुएं मां की जान हैं। हम दोनों भाइयों को डांटती रहती है, पर बहुओं को? ना बाबा ना। अब मौसी तुम्हारे बिना हम दो बेचारे भाइयों को तारने वाला कौन है भला!"

अविनाश ने तो हंसी-मजाक के स्वर में वातावरण को हल्का करने का प्रयत्न किया पर मालती बाई का मन भारी हो गया। सुनीता की बहुओं को डांटने का अधिकार अविनाश और प्रकाश सहज ही दे जाते हैं। पर अपना मिलिंद? अपनी मनीषा?

मालती बाई को याद आया जब सुनीता की शादी तय हुई थी तब युवा मालती ने लपककर कहा था, "इतनी जल्दी शादी? सुनीता, पढ़ाई तो पूरी कर ले। फिर शादी भी स्कूल मास्टर से? मना कर दे सुनीता!"
"मालती, जो पिताजी ने तय किया है वह स्वीकार करना पड़ेगा। मैं मना नहीं कर सकती। हम दोनों बचपन की सहेलियां हैं फिर भी, मालती, तेरे सुख-स्वप्न, तेरी ऊंची उड़ान कभी मैं अपना न सकी!" सुनीता ने कहा था।

सुनीता घर-गृहस्थी में फंस गई। मालती ने एम॰एससी॰ की और लेक्चरर लग गई। वह हमेशा कहती - खाना बनाना, परोसना, बर्तन-भांडे मांजना यही तो औरत का जीवन नहीं है!
"मुझे स्वप्न साकार करने हैं।" मालती कहती। स्वप्न होंगे तभी साकार होंगे न! पर स्वप्नों की कीमत चुकानी पड़ती है, यह नहीं जाना मालती ने। मालती कैरियर के पीछे भागी, सुनीता उस दौड़ में पिछड़ गई। घर-गृहस्थी के चक्कर भी

अजीब होते हैं। सुनीता ने भी एम•एससी• का फार्म भरा था, पर उतने में सासू जी बीमार पड़ गई। दूसरे साल देवर की शादी और त्यौहारों ने चैन न लेने दिया। तीसरे वर्ष स्वयं गर्भवती हो गई और तब सुनीता ने पढ़ाई का ख्याल ही छोड़ दिया।

मालती की अपनी महत्वाकांक्षाएं थीं। वह कहती, "सुनीता, जीवन में अपना मार्ग खुद तय करना पड़ता है। नियति को बदलने की सामर्थ्य हमारे हाथ में होती है। प्रबल इच्छा और दृढ़ इच्छाशक्ति हो तो सब संभव है।"

सुनीता अपनी गृहस्थी में मग्न थी। तीन बच्चे थे, सादा जीवन था। तंगी भी थी। मालती देखती तो उसे तरस आता सुनीता पर। स्वयं मालती को इंजीनियर पति मिला और वह विवाह-सूत्र में बंध गई। सुनीता कहती, "तू भाग्यवान है, मालती! जो चाहा मिला। तेरा अपने आप पर विश्वास देख मेरा सिर अभिमान से ऊंचा उठता है।"
"मेरे माता-पिता ने मेरी सुनी और मैं यहां पहुंची। अब पति सुनेंगे तो मैं और आगे बढ़ूंगी।" मालती ने कहा।
"पुरूष सब कुछ नहीं सुनते, मालती! वह भी पत्नी की? भूल जाओ। गृहस्थी में पति का हिस्सा बहुत बड़ा होता है। सुनना और मानना तो स्त्री को पड़ता है, पुरूष को नहीं!" सुनीता पते की बात कहती तो मालती मुंह बिचकाकर चली जाती।

जीवन अपने ढांचे में बंधता चला गया। मिलिंद आया, फिर मनीषा। पर मालती की महत्वकांक्षाएं आसमान को छूना चाहती थीं।

आज मुड़कर देखा तो मालती बाई का मन भर आया – "मेरी असीम महत्वाकांक्षाओं ने आज यह दिन दिखाया है। जन्मघूंटी के साथ ही मैंने मिलिंद-मनीषा को गरूड़-उड़ान के स्वप्न दिए। जमीन पर पांव ही रखने नहीं दिया। आज वह उड़ गए तो भूल-चूक किसकी है?"

मालती बाई को याद आया – बंगले के आंगन में घास उगी थी। माली आया नहीं तो विनायक राव खुरपी लेकर आए और बच्चों को पुकारकर बोले, "चलो, मिलिंद-मनीषा, आज घास साफ करके फूल बोते हैं। माली नहीं आया तो क्या? हम स्वयं अपना आंगन फूलों से भर देंगे, बिल्कुल सुनीता मौसी जैसा।"

सुना तो मालती बिगड़ पड़ी, "जिंदगी में अपना अस्तित्व भूलकर जीने वाले ध्येयशून्य व्यक्तियों में से एक आप हैं। सुनीता के बगीचे का उदाहरण मुझे मत दो। किसकी प्रशंसा करनी चाहिए, यह भी पता होना चाहिए। मिट्टी में चार पौधे उगाने के लिए अक्ल की जरूरत नहीं। मेरे बच्चे मिट्टी में ऐसा काम नहीं करेंगे। कभी नहीं।"
"मालती, जिस मिट्टी पर हम खड़े रहते हैं उसी मिट्टी को तुम नकार रही हो। इसी मिट्टी के लिए लोग जिए हैं और इसी की खातिर मरे हैं। इस मिट्टी पर साम्राज्य खड़े हुए और गिरे। मिट्टी मतलब..."
"मिट्टी मतलब मिट्टी ही। आकाश नहीं।" मालती ने विनायक राव की बात काटी।
"अरे, मिट्टी से ही सुगंध आती है, मालती, आकाश से नहीं!"

मालती सर को झटका देकर चली गई। विनायक राव की फजूल की फिलासाफी में उसे रूचि नहीं थी। ऐसी खटपट लगभग रोज होती और जीत मालती की ही होती।

मिलिंद को स्कूल में दाखिला करवाना था। विनायक राव अपनी संस्कृति से जुड़े किसी स्कूल में डालना चाहते थे तो मालती अंग्रेजी स्कूल में।

"मुझे तो भाई अच्छा लगता है कि बच्चे संस्कृत श्लोक बोलें, मराठी कविता-पाठ करें। आखिर अपनी संस्कृति को हमें ही सजाना है," विनायक राव बोले।

मालती ने व्यंग्य कसा, "आप भी तो जाने किस युग में जी रहे हैं! आखिर जेट-एज है, मिस्टर।"
"मैं तो सिर्फ इतना कह रहा हूं कि नर्सरी की बजाय बाल-मंदिर में डालते हैं मिलिंद को। अब मैं नहीं बना इंजीनियर? मैं कौन-सा अंग्रेजी स्कूल में पढ़ा हूं?"
"इंजीनियर ही न! ऐसा क्या कर लिया आपने?"

विनायक राव चुप रहे। जानते थे, मालती की जिद के आगे जिरह करना व्यर्थ है। मालती को विनायक राव काई लगे, जंग लगे, पुराने से लगते थे। कहीं कोई तालमेल नहीं था। सुर-बेसुर थे।

इधर मालती की पदवियां बढ़ती गईं। स्कूल की जूनियर लेक्चरर से कालेज लेक्चरर बनी, फिर प्राचार्या। गुण थे, वक्तृत्व था और व्यक्तित्व भी। गुणों के साथ-साथ तड़प थी ऊंची उड़ान की। आकांक्षा के गुब्बारे आसमान छू रहे थे।

उधर मिलिंद नर्सरी से कॉन्वेंट में गया। होस्टल में रहकर पढ़ा। डॉक्टर बना और विदेश जाने की तैयारी में लग गया। मालती का सिर अभिमान से ऊंचा हो उठता था। मनीषा ने चित्रकारी में महारत हासिल की। जे॰जे॰स्कूल ऑफ आर्ट्स में पढ़ी। उमदा पेंटर बनी।

अभी पढ़ ही रही थी कि स्विट्जरलैंड के से जे॰जे॰स्कूल में पढ़ने वाले अपने साथी के प्रेम में पड़ गई। विनायक राव बिफर पड़े, "प्रेम विवाह के लिए मेरा विरोध नहीं है। पर वह किस मिट्टी में बोया जाए, इसकी पहचान, मनीषा, तुम्हें होनी चाहिए थी!"
"पर बाबा, प्रेम कुछ देखकर थोड़े ही होता है।"
"ठीक है बेटी, पर डर है, इस उम्र का प्रेम कहीं तुम्हें फंसा न दे। दो अलग संस्कृतियां, क्या संभाल पाओगी उन्हें? तुम स्विट्जरलैंड चली जाओगी तो"

मालती सुन रही थी बाप-बेटी का संवाद। कड़वाहट से बोली - "मनीषा, तुम्हारे बाबा प्रेम के विरूद्ध नहीं है, पर आदमी भारतीय होना चाहिए। जो भारतीय है वही मनुष्य है तो और क्या जानवर हैं? सुनो, आपकी बेटी मनुष्य से प्यार करती है। स्विट्जरलैंड गई तो क्या बिगड़ेगा? हवाई जहाज का किराया खर्च करेगा तुम्हारा दामाद। और मनीषा में भी हिम्मत है। अपने कृतित्व से आकाश के रंग बदलेगी वह।"
"आकाश के रंग बदलने वाली वह चित्रकार है, मैं जानता हूं मालती! पर आकाश तो केवल सत्य का आभास है, सत्य नहीं है।"

उस दिन बात यहीं समाप्त हुई पर हुआ वही जो मालती और मनीषा ने चाहा।

जिस दिन मनीषा पति के साथ स्विट्जरलैंड के लिए रवाना हुई, उस दिन मालती को लगा जैसे उसने आसमान छू लिया हो। विनायक राव मगर रो पड़े थे।

कभी-कभी विनायक राव को खुद पर रंज होता। दफ्तर में तेज-तर्रार, कड़े अनुशासक, घर में हथियार डाल देते थे। कई बार सोचते, "क्यों झुका मैं मालती की जिद के आगे? क्यों भरने दी बच्चों को गगन-उड़ान?" वैसे उड़ान भरना तो बुरा नहीं है पर यह भूलना भी तो सरासर गलत है कि उड़ान भरने पर पांव तले की धरती छूट जाती है।

जब मिलिंद को पंचगणी होस्टेल में भेजना था, तब भी उन्होंने विरोध किया था।

"इतने छोटे बच्चे को मां-बाप से दूर भेजना ठीक नहीं," उन्होंने कहा था।

मालती ने तब भी कटाक्ष किया था, "आप अपनी नौकरी की चक्की में ऐसे बंधे हैं कि विस्तृत दुनिया के कर्तृत्व के पंख लगाकर उड़ने वाले पक्षियों की उमंग आपकी पकड़ से बाहर हो गई है।"

और मिलिंद को पंचगणी भेजा गया।

विनायक राव कई बार सुनीता के घर की रौनक देखकर अपने घर की चुप्पी से घबरा जाते। वहां बच्चों का झगड़ना, मां के गले आकर लिपटना, इकट्ठे बैठकर खाना खाना, गणेश पूजा, नवरात्र आदि की धूमधाम रहती। विनायक राव के मन को सब बड़ा लुभाने वाला था।

परंतु मालती को यह सब 'ढकोसला' बुरा लगता। अपनी बचपन की सखी मूर्ख लगती, उसके पति व बच्चे गंवार लगते। चार मकान छोड़कर ही था सुनीता का घर उनके घर से, पर मालती को भला वहां जाना कहां भाता था?

सुनीता और उसका परिवार मालती के प्रशंसक थे। सीधे-सादे वे लोग मालती की ऊंची उड़ान देखकर विभोर हो जाते। मालती भी कभी-कभार उनके घर चली जाती, खासकर जब बच्चों को कोई पुरस्कार मिलता या उसे कोई सम्मान मिलता।

मालती की महत्वाकांक्षाएं देखकर विनायक राव कहते, "सच, मैं तो एक साधारण आदमी हूं। छोटी-छोटी कामनाएं हैं मेरी। तुम्हारा, तुम्हारे बच्चों का राजमार्ग ही सही, पर छोटी-सी पगडंडी पर पुरानी यादें लिए चलना ही जीवन है।"

मिलिंद अमेरिका जाने लगा तब भी विनायक राव ने विरोध किया।

"पांच वर्ष का था मिलिंद, तब से उसे बाहर भेजा है। अब उसे घर आने दो। मालती, घर को घर लगने दो। देखो, मालती, एम॰एस॰ यहां रहकर भी हो सकती है। अपने बंगले की बाईं ओर बड़ा क्लिनिक खोल देंगे। बहू आएगी। नाती-पोती होंगे। हमारे इस बड़े बंगले में रौनक हो जाएगी।"

पर मालती ने सुनी-अनसुनी कर दी।

उसी दिन संध्या समय अविनाश और प्रकाश आए। उनका छोटा भाई इंजीनियर बन गया था। मिठाई लेकर आए थे।

"क्या करने की सोची है सतीश ने?" विनायक राव ने पूछा।
"बाबा कहते हैं कि तीनों भाई मिलकर वर्कशाप खोलो। पहले ग्रिल वेल्डिंग की मशीन लेंगे फिर लेथ और कटिंग आदि मशीनें लेकर धंधा बढ़ाएंगे।"

मालती खिलखिलाकर हंस पड़ी। दीवान पर गाव-तकिये से टिककर बैठी मालती किसी सम्राज्ञी की भांति तेजपुंज लग रही थी। चेहरे पर बुद्धि और कर्तृत्व की चमक थी।

"अरे, तुम इंजीनियर हो। टर्नर, फिटर, वेल्डर ग्रिल का काम करते हैं। तुम लोग अपनी डिग्रियां व्यर्थ गंवाओगे?"
"क्यों, मौसी?"
"क्योंकि बिजनेस करना इतना आसान नहीं है। मार्केट कैप्चर कैसे करोगे इतनी जल्दी?"
"हम तीन हैं, मौसी! मिलकर कर लेंगे।" अविनाश बोला।
"पर परिवार का पेट भरे, इतना पैसा तो मिलना चाहिए।"
"फैक्ट्री डालने के लिए पैसे चाहिए! मौसी, मैं पहले किसी बड़ी कंपनी का एनसीलरी यूनिट मांगूंगा।"
"तो लोन ले लो। फैक्ट्री डालो।"
"लोन के लिए भी अपने पास निजी पूंजी होनी चाहिए न।"

"तुम्हारे पास उतना भी नहीं है तो तुम्हारा बिजनेस क्या चलेगा?" मालती व्यंग्य करती बोली।
"मौसी, मन में श्रद्धा हो, बड़ों का आशीर्वाद हो और परिश्रम करने की ठानी हो तो सब सरल हो जाता है।"
"ठीक है, बेटा!" विनायक राव बोले। नौकरी करो या बिजनेस! पर मां–बाप को छोड़कर मत जाना।"

मालती को यह बात अच्छी नहीं लगी। कई बार विनायक राव और मालती सुनीता के घर जाते। पुरूषों की इधर–उधर की बातें चलतीं, तो मालती और सुनीता बच्चों को लेकर बतियाती। बहुधा मालती ही बतिया रही होती थी क्योंकि मिलिंद और मनीषा के उत्कर्ष की हर ख़बर सुनीता को देकर अपना गर्व–मिश्रित आनंद व्यक्त करना मालती का स्वभाव बन चुका था। सुनीता भी उसकी ख़ुशी में सहर्ष शामिल होती थी।

उस दिन भी दोनों सुनीता के घर बैठे थे कि अविनाश जल्दी–जल्दी आया। उसने इन दोनों को शायद देखा ही नहीं। आते ही बोला, "मां–बाबा! जल्दी तैयार हो जाओ। नाटक के चार टिकटें बड़ी मुश्किल से मिले हैं। बस पांच मिनट में चलो।"

सुनीता तैयार होने को उठी पर मालती की मनीषा–मिलिंद की कहानी ख़त्म होने को न थी। इधर अविनाश अधीर हो गया था।

लौटते समय मालती चुप थी। विनायक राव बोले, "अविनाश की चुलबुलाहट देखकर मिलिंद का ध्यान आ गया। वह होता...तो। पिछले दो सालों से मिलिंद से मुलाकात फोटो में ही होती है। पंचगणी से मुंबई गया, फिर अमेरिका। गिन कर दस–पांच मुलाकातें।"

अब की बार मालती ने पति की बात काटी नहीं।

रात को मिलिंद का फोन आया, "मां, मैं सेटल हो गया हूं, आपकी इच्छा के मुताबिक हर महीने तीन हजार भेजूंगा। और हां, आप दोनों तबियत का ध्यान रखना। बिल्कुल लापरवाही नहीं करना। और हां, एक बात और। हर महीने की तीन तारीख़ को मैं आप दोनों को फोन किया करूंगा।"
"सो तो ठीक है, बेटा। पर सुनो, इतने पैसों का हम क्या करेंगे?" मालती बाई आनंदित होकर बोलीं।
"रहने दो न मां! ना मत करो।" और फोन कट गया।

दूसरे ही दिन मालती ने सुनीता को फोन पर ख़ुशख़बरी दी।

"तीन हजार भेजेगा!" वह गर्व से बोली।

अविनाश और प्रकाश की शादियां तय हुई। सुनीता का घर मेहमानों से भर गया। मालती के मन में भी मिलिंद की शादी को लेकर बातें उठने लगीं। विनायक राव से बोलीं, "देखना, मिलिंद की शादी कैसे ठाठ–बाट से होगी!"

रात देर गए शादी से लौटे तो फोन की घंटी बज रही थी। मालती बाई ने लपककर रिसीवर उठाया और मिलिंद को अविनाश व प्रकाश की शादियां होने की ख़बर दी। फिर बोली, "उनकी शादी तय होने में बड़ी देर लगी। पैसा नहीं है, बिजनेस अभी संभला नहीं है। लड़कियां भी कौन देगा? पर मिलिंद, तुम्हारे लिए तो अभी से रिश्ते आ रहे हैं। तुम आ जाओ तो बात पक्की करें। सोचती हूं, परदेस में साथ हो जाएगा पत्नी का।"

उधर से मिलिंद के हंसने का स्वर आया और वह बोला, "मेरे पत्र का इंतजार करो, मां!"

पत्र आने में आठ–दस दिन लग गए। मालती बाई के पांव जमीन पर टिक नहीं रहे थे। कैसी साड़ियां लूं? गहने कौन से लें? लड़की कैसी हो, कितनी पढ़ी–लिखी हो? डाक्टर हो या इंजीनियर? आखिर मिलिंद सर्जन था, अमेरिका में पढ़ा था,

पत्नी तो अति सुंदर होनी चाहिए। मालती लगभग रोज ही इस विषय पर चर्चा करती और विनायक राव भी खुशी से चर्चा में भाग लेते थे।

सुनीता की बहुएं देखने में साधारण थीं, पढ़ी-लिखी भी अधिक नहीं थीं। पर थीं सुशील। मालती और विनायक राव के चरण छूने आई तो दोनों विह्वल हो गए।

उस रात अचानक मनीषा का फोन आया। वह अपने चित्रकार पति को तलाक देकर मुक्त हो गई हैं। विनायक राव ने कहा, "घर लौट आ, बेटी!" तो बोली, "बाबा, यहां मेरे चित्रों की प्रदर्शनी लगी हैं और समाचार पत्रों ने भी खूब प्रशंसा की है मेरी कला की। मेरा नाम दूर-दूर तक फैला है। मैं अभी लौटना नहीं चाहती। और मुझे अकेले रहने में भी कोई प्रॉब्लम नहीं है। फिर शादी के झमेले में मैं अभी पड़ना नहीं चाहती। स्वतंत्र गरूड़-उड़ान की आदत हो गई है न!"

विनायक राव विष का घूंट पीकर रह गए। अब रिटायरमेंट के बाद अकेलापन और अखरने लगा था।

एक दिन अविनाश आया और चरण छूकर बोला, "काका, एक विनती लेकर आया हूं।"
"कहो।"
"मेरी फैक्ट्री में यदि एक घंटा मेरा मार्गदर्शन आप करें तो मेरी मेहनत सफल हो जाएगी।"

विनायक राव एकदम मान गए।

"पिछले आठ-दस महीनों से खाली घर मुझे काट रहा था। मैं अवश्य आऊंगा।"

उनका समय फैक्ट्री में कटने लगा। और मालती बाई का चिट्ठी की प्रतीक्षा में। मिलिंद की चिट्ठी आई और मालती बाई टूट गई। उन्होंने अपने को संभाला तो सही पर विनायक राव ने उनकी टूटन को महसूस किया। फिर भी मालती बाई रोजी-मिलिंद की फोटो लेकर सुनीता के पास गई। उसे फोटो दिखाई। उसने प्रशंसा की तो मालती बाई को राहत मिली। विनायक राव ने फोटो देखकर कहा, "भई, हमें तो अच्छी लगी आपकी बहू। आखिर मेरे बेटे ने प्रेम किया है। दूसरे देश की ही सही, वह भी तो मनुष्य है।"

और मालती बाई सुनती रही। उन्हीं के शब्द थे।

उस रात उन्होंने फोन किया। मिलिंद-रोजी को भारत बुलाया तो मिलिंद बोला, "संभव नहीं हैं, बाबा! रोजी की डिलीवरी हुई है।"
"तो बताया नहीं तुमने?"
"ऐसी छोटी-छोटी बातें? वैसे स्वीटी की फोटो भेज दी है।"
"तुम्हारी मां की इच्छा थी गोद भराई की रस्म करने की।"
"ये रस्में वगैरह क्या करनी हैं, बाबा? यहां दिन इतना बिजी होता है कि आपको फोन करने की भी याद रखनी पड़ती है।" कहा तो सहज ही मिलिंद ने, पर विनायक राव का चेहरा उतर गया। फोन एकदम से रख दिया।
उनके चेहरे के भाव पढ़कर मालती बाई ने पूछा, "क्या हुआ?"
"कुछ नहीं, टेंशन हो गया।"
"रोजी प्रेग्नेंट है ना? फिर तो जाना चाहिए।" मालती बाई ने जान-बूझकर उत्साह दिखाया।
"अरे, रोजी ने फूल-सी स्वीटी को जन्म दिया है।"

मालती बाई अवाक् रह गई। लगा पैरों तले की धरती खिसक गई है, उड़ते पक्षी के पंख हवा में ही कट गए हैं।

विनायक राव कई बार सोचते हैं कि बता दूं मालती को – "मालती, तुमने ही उसे आकाश के स्वप्न दिए, गरूड़–उड़ान सिखाई। पर तुम उन्हें प्रेम न सिखा पाई। प्रेम, स्नेह केवल खून के रिश्ते से ही संबंधित हो? ऐसा नहीं है। उसके लिए साथ रहने की आवश्यकता है। प्रेम लेन–देन है। तुमने मनीषा और मिलिंद को अपने से दूर रखा, उन्हें निर्बंध, स्वतंत्र आकाश में उड़ना सिखाया पर उन्हें लगाव नहीं सिखाया। अब कहां ढूंढ़ोगी अपने पोते–पोतियों को? मनीषा निर्बन्ध स्वतंत्रता लेकर अपना जीवन जी रही है। बेटा अपने में मग्न हैं। पार्क में मैं जाता हूं, सोनाली में स्वीटी को ढूंढ़ता हूं। क्या पाया हमने मालती?"

पर बीमार, टूटी हुई, हतप्रभ मालती का मन दुखाने का साहस नहीं हुआ।

पंद्रह दिन पहले मालती को हार्ट अटैक आया था। अस्पताल ले गए तो सुनीता के घर के सभी भागे हुए आए। डाक्टर ने कहा था – "माइल्ड है, घबराने वाली बात नहीं है। पर सुनीता, उसके पति, बेटे–बहुएं सभी चिंतित थे।

एक रात मिलिंद को फोन किया तो बोला, "मां, बढ़िया से बढ़िया इलाज करवाना, पैसे की चिंता मत करना। मैं आ तो जाता पर रोजी प्रग्नेंट है। स्वीटी को तो 'आया' देखती है – बेबी सिटर, रोजी के लिए मेरे सिवा कौन है? और हां, मनीषा ने दूसरा विवाह कर लिया है। फोन आया था उसका।

मालती बाई ने फोन पटक दिया। मन में विचारों का बवंडर उठा – "आकाश में उड़ान भरने का स्वप्न मैंने हिम्मत से बच्चों को सिखाया, क्या यह गलत था? मनीषा के अस्तित्व को मान्यता दी, विचारों की स्वतंत्रता दी, क्या यह मेरी भूल थी? बच्चे समय से आगे दौड़ने लगे तो क्या मैं इसे अपनी गलती मानूं? मालती बाई न बच्चों को दोष दे सकती हैं न अपनी भूल स्वीकार करने का उनमें साहस है। इधर विनायक राव देख रहे हैं एक प्रखर व्यक्तित्व का ढलना।

मालती बाई आंखें मूंद लेटी हैं। सोच रही हैं – 'क्या है आखिर जीवन का सारांश? ये गलतियां, ये भूलें, यह अकेलापन, यह आत्मग्लानि? परास्त हैं वह, परकटे पंछी–सी।

वधू चाहिये अरविन्द गोखले

"अमेरिका में दस साल साल तक प्रवासी, किन्तु अब भारत में स्थायी रूप से रहने और खुद का छोटा सा कारखाना चलाने के इच्छुक पैंतीस साल के धनी, स्वस्थ, सुन्दर और साहसी युवक के लिए सुयोग्य वधू चाहिए। आर्थिक स्थिति और जाति का बंधन नहीं, किन्तु पत्र व्यवहार लड़की स्वयं करें। पी. ओ. बॉक्स 358 क."

माधव अधीरता से खुद लिखा हुआ विज्ञापन पढ़ रहा था। उसे लग रहा था, "मेरे जैसे अमेरिका से आए लड़के द्वारा दिये गये इस विज्ञापन का अच्छा उत्तर मिलेगा। जाति – बंधन न होने के कारण काफी चिट्ठियां आने की उसे उम्मीद थी। उसमें से दो तीन को चुनने के बाद अंतिम निर्णय लेने की बात उसके मन में बार बार आ रही थी।

कौन होगी वह..... इकलौती.... ?

माधव ने इन दो सालों में काफी लड़कियां देखी थी। कोई रिश्तेदारों नें दिखाई तो कोई वधू–वर सूचक मंडल में देखी। कोई भी अच्छी नहीं लगी। कोई देखने में खास नहीं, कोई सामान्य बुद्धि की, कोई पैंसों पर नज़र रखने वाली तो कोई रूप रंग में उन्नीस.... एक न एक खामियां। उसे लगने लगा था कि शादी ही ना करूं। अमेरिका जाने से पहले यदि शादी कर लेता या उधर ही कहीं रिश्ता हो जाता तो अच्छा होता। लेकिन पहले पैसा न था और परदेस जाने की

चाह में वह कुछ न कर सका। अमेरिका में उसे सहेलियां तो मिली पर पत्नी न मिल सकी। सूजन के साथ थोड़ा दिल तो लग गया था लेकिन दोस्ती टिक न सकी। उसे जीवनसाथी की जरूरत तो महसूस होती हैं लेकिन उमर बढ़ने से और आचार-विचारों पर थोड़ा परदेसी असर होने से कोई मन को भाती ही न थी। इसलिए अब यह आखीरी बार भगीरथ प्रयत्न करने जा रहा था। यदि ऐसे भी सफलता नहीं मिली तो वह खाली हाथ अकेला ही अमेरिका चला जायेगा।

लेकिन उसका मन वैसे अकेले वापस जाने को तैयार नहीं था। भारत में रहकर उसे अमेरिका की स्त्रियों जैसी साहसी और स्वस्थ पत्नी चाहिए थी। बहुत लड़कियों ने तो इसलिए शादी करने से इन्कार कर दिया क्यों कि वह अमेरिका वापस जाना नहीं चाहता था बल्कि यहीं स्थायीरूप से रहना चाहता था फिर "खुद लड़की खत लिखे", ऐसा कहने वाले से कौन शादी करेगा?

एक हफ्ते में सिर्फ पांच खत आए। उसमें से दो को वह पहले नकार चुका था। बाकी तीन थोड़ी काम की लग रही थी। तींनों की उम्र 30 के करीब थी। तीनों खत माधव बार बार पढ़ता रहा। वे सज्जन व साहसी लग रही थीं। सुंदर, सुदृढ़ और स्वतंत्र होने के संकेत खत दे रहे थे। लेकिन वैसे थोड़ी थोड़ी खामियां तीनों में थी। मिलने से पहले ही सोच समझ सकते हैं और उनके लिए मन तैयार करना पड़ेगा ऐसी खामियां। यदि ऐसे तीनों को अभी से बिना देखें नकार दे तो सब तरफ अंधेरा ही अंधेरा हैं। अकेले ही जीवन की नय्या पार लगानी पड़ेगी। किसी को भी हां करना साहस का काम था। माधव ने मन में यह साहस जुटा ही लिया।

"स्वप्ना" रेस्टोरेंट शहर के बाहर और बहुत ही शानदार था। कॉलेज के लड़के लडकियों का यह पसंदीदा था। प्रशस्त हॉल में बैठ कर खूब गप्पें हांकने के लिए, किसीको अपने दिल का हाल सुनाने के लिए और प्रथम परिचय के लिए यह "महल" एकदम योग्य माना जाता था।

ऊपरी मंजिल पर एक कोने में लस्सी के ग्लास सामने रख कर माधव और अंजली मौन व्रत धारण किये बैठे थे। अंजली ने भावुक हो कर लम्बा चौड़ा खत माधव को लिखा था। इसलिए उसने अंजली से सबसे पहले मिलने का सोचा। वैसे देखा जाय तो अंजली में ऐब भी कुछ नहीं था। तीनों में वही सब से अच्छी थी। अभी अभी उसने पी.एच.डी. किया था। अच्छे घराने की, और कुंवारी भी थी।

जब देखा तब 30 साल की अंजली मुरझायी, उदास लग रही थी। उसकी तरफ देखते माधव सोचने लगा कि इतने सुन्दर चेहरे पर यह उदासी क्यों? क्या उसकी तबियत ठीक नहीं रहती? कि इसका प्रेमभंग हो गया होगा? कितने सवाल माधव के मन में उठे हैं?

"मैंने अपने बारे में सब कुछ बताया है, आप के बारे में और कुछ?" माधव ने सवाल किया।
इस पर अंजली ने जवाब दिया, " मेरा भी मैंने सब आप के सामने रख दिया हैं। मेरा अब तक का जीवन एकदम सरल है।"
माधव ने कहा, "जैसा मैंने कहा कि मेरे जीवन में एक अमेरिकन लड़की आयी थी, वैसे आप का कोई अतीत?"

"मेरे जीवन में ऐसे कोई आने का सवाल ही नहीं आता। मैं आज तक किसी अलग चीज़ की खोज में थी। प्रेम, शादी इससे कुछ अलग.....और मुझे वह मार्ग मिल गया। सत्यसाईबाबा ने वह प्रकाश मुझे दिखाया। तब से मुझे जैसे मुझे मुक्ति मिल गयी, प्रेम मिल गया ऐसे लगने लगा हैं।" अंजली के मुंह पर खुशी छलक रही थी।

माधव एकदम सकपका गया। अंजली के बारे में माधव के मन में क्या था और उसे क्या सुनना पड़ा।

"तो क्या आप साईबाबा की भक्त हैं?"

"हां, साल में कम से कम एक महिना मैं बाबा के सहवास में रहती हूं। वो जब यहां आते हैं तब मैं उनका प्रवचन जरूर सुनने जाती हूं। उनका मुझ पर काफी प्रभाव है। यह देखिये, उन्होंने दिया हुआ लॉकेट" अंजली ने कहा। उस लॉकेट में साईबाबा की तस्वीर देख कर तो माधव और झनझना उठा। एक साधू ने इस औरत के जीवन को जकड़ रखा हैं। उसी के ध्यान से इसे शान्ति मिलती है..... यह तो मानसिक रोगी लगती हैं।

साईबाबा की तारीफ करते अंजली रूके नहीं रूकी। उनकी दैवी शक्ति के बारे में बता रही थी। और अन्त में उसने कहा कि साईबाबा की बदौलत मुझे माधव जैसा पति मिल रहा हैं।

अंजली उसकी पत्नी बन सकती हैं या नहीं इस संभ्रम में वह था। अंजली में शायद शादी के बाद बदलाव आयेगा, वह साईबाबा को मन से निकाल कर मेरे बारे में सोचने लगेगी। लेकिन यह तो सारी "शायद" वाली बातें थी। जब वह अपनी सोच से बाहर आया तब माधव ने महसूस किया कि अंजली अकेली वहां से जा चुकी थी। माधव वहीं पर सर पर हाथ रख कर बैठा रहा।

"स्वप्ना" में बैठ कर माधव गौरी को अपने बारे में बता रहा था। नाते-रिश्ते, शिक्षा, पसंद-नापसंद, अपना कारोबार, और अमेरिका में रहते सूज़न के साथ संबंध, याद कर के उसने सब कुछ बता दिया। और उसके बाद गौरी के मन को टटोल ने की कोशिश कर रहा था कि अब उसकी राय अपने बारे में क्या हो सकती हीं। माधव को गौरी के खत का एक वाक्य ही बार बार याद आ रहा था कि वह विधवा है।

माधव की सब बातें सुन लेने के बाद उसने एक ही सवाल किया जो कि माधव से और काफी लड़कियों ने किया था,
"आपने सूज़न से शादी क्यों नहीं की?"
"वह मेरी दोस्त थी, उसके साथ शादी का मैंने कभी सोचा ही नहीं। हम कुछ अलग ही परिस्थिति में करीब आये और उतनी ही जल्दी दूर भी हो गए।"
उसने यह सुन सिर्फ गर्दन हिलाई, ऐसे दर्शाते हुए कि उसे इतना जवाब काफी था।

गौरी सुन्दर, गोरी, सतेज तो थी लेकिन विधवा होने के कारण जरा प्रौढ़ सी लगती थी। लेकिन फिर भी उसमें कुछ आकर्षण तो जरूर था। उसमें एक खाानदानी मिठास थी। अंजली जितनी गौरी पढ़ी-लिखी नहीं थी लेकिन बुद्धिमान लगती थी। 6 साल अपने पति के साथ उसने गुजारे थे, बाद में विधवा हुई थी।

गौरी ने आगे कहना शुरू किया, "मैंने खत में सब कुछ लिख ही दिया है। मेरे पति ने मेरे लिए घर, काफी सारा पैसा रखा है, लेकिन मुझे घर-गृहस्थी का, बालबच्चों का शौक हैं ....और मुझे किसी का सहारा चाहिए जो मुझे संभाले, छाया दे।"

ऐसा कहते कहते बीच में ही गौरी ने नज़र उठा कर देखा। जैसे उसे यह सहारा देनेवाला, संभालने वाला सामने ही बैठा हो।

गौरी मुझसे सहारा मांग रही है इसलिए माधव की गर्दन जरा ऊंची हो गई। यह सुन्दर, विधवा स्त्री मुझे अपना सहारा मान रही है, इस कल्पना से वह.....लेकिन दूसरे ही क्षण उसके मन में यह आया, आज कल तो पैसा ही सब कुछ होता है, फिर इसके पति ने इसके लिए पैसा रखा ही हैं.....अपने पश्चात अपनी पत्नी को किसी के सामने हाथ न फैलाना पड़े..... .मन में शंका ने घर कर ही लिया।

"क्या आप का आप के पति के साथ प्रेम विवाह हुआ था?"
"नहीं, विवाहोत्तर प्रेम।" कितना सुकून भरा जवाब दिया था गौरी ने। " सिर्फ 6 साल ही साथ रहे थे, एक रात नींद

में ही उनकी मृत्यु हो गई। गौरी अपने पति के बारे में ऐसी बात कर रही थी कि लगता था बीती बातें भूल पाना उसके बस का नहीं। थोड़ी देर पहले अपने पति की याद में खोई गौरी अब वर्तमान में माधव से जिस शालीनता से बात कर रही थी कि माधव उसके मोह में आए बिना नहीं रह पाया।

शाम होने को थी....दोनों वहां से उठे, गौरी रिक्शे से अपने घर के लिए रवाना हो गई लेकिन माधव अभी भी वहीं खड़ा गौरी के बारे में सोच रहा था।

"स्वप्ना" में शाम के समय कॉफी के कप हाथ में लिए बैठे थे.... माधव और वसुमती।
"अपने तलाकशुदा होने का ज़िक्र मैं पहले ही कर चुकी हूं, इससे आगे अगर आप कुछ पूछना चाहें तो..."

वसुमती शायद स्पष्ट जवाब माधव से चाहती थी। उसने खत में भी लिखा था...."मैंने तीन साल अपने पति के साथ निभाने की कोशिश की थी, लेकिन बात बिगड़ती ही गई। जब सारी बातें सहन शक्ति के बाहर जाने लगी तब तलाक की नौबत आ गयी। उस बात को भी अब पांच साल बीत चुके हैं। आज तक किसी सहारे की जरूरत मैंने महसूस नहीं की लेकिन आज..... " वसुमती ने सारी कहानी माधव के सामने रखी और अब वह किस लिए शादी करना चाहती हैं यह भी स्पष्ट रूप से बता दिया। उमर बढ़ती जा रही थी, वह थोड़ी समझदार भी हो गई थी, अकेले जीना जरा मुश्किल और नीरस लगने लगा था। किसी को साथ ले कर वह समाज कार्य करना चाहती थी।

वसुमती देखने में बुरी नहीं थी। जीवन के बारे में उसकी निश्चित कल्पनाएं और आकांक्षाएं थी। उसका प्रेम विवाह हुआ था। उससे ज्यादा और कुछ उसकी बीती जिन्दगी के बारे में पूछता हूं तो शायद उसे अच्छा ना लगे। लेकिन उसीने पहल करते हुए कहा, "यदि हम एक दूसरे के करीब आने या शादी के बंधन में बंधने की ओर कदम बढ़ाना चाहते हैं तो सब बातें खुल कर सामने रखनी जरूरी हैं। "मेरे एक दूर के रिश्तेदार का वह मित्र था। एक पिकनिक में मुलाकात हो गई। युनिवर्सिटी में मैं काम करती थी। वहां के इलेक्शन के समय ज्यादा करीब आये। उसकी मीठी बातें मेरा मन मोह लेती थी। सौतेली मां से दुखी हो कर मेरे दिल में उस समय शादी की बात आती ही थी, इसलिए हमने शादी का सोचा और जल्दी ही शादी के बंधन में बंध गए। लेकिन जल्दबाज़ी में की हुई शादी रास नहीं आयी। प्राध्यापक होने के बावजूद वह अशिक्षित, असंस्कृत जैसा बर्ताव करता था। मेरे पति ने मेरी हर बात में प्रताड़ना की थी। मैंने बहुत दुख झेले हैं। उन यादों को मैं कभी प्रकट नहीं करना चाहती लेकिन आपको .... "
"नहीं... नहीं... मैं समझ सकता हूं।" माधव ने बीच में उसे टोक कर कहा।
शरीर और मन से वह जब पूरी तरह थक गई तभी इससे आज़ादी लेने की सोची थी।

अब वह दुबारा अपनी गृहस्थी शुरू करना चाहती थी। किसी पुरूष के साथ संबंध स्थापित करना चाहती थी। लेकिन क्या वह फिर से माधव के साथ एकरूप हो पायेगी? उसे प्राफेसर की यादें सताने लगी तो?
दोनों ही अपने अपने खयालों में खोए हुए थे।

जब अब कहने सुनने के लिए कुछ नहीं बचा तब दोनों अपने रास्ते अपने घर चले गए।

माधव ने थोड़े दिन राह देखी ....लेकिन छटा खत नहीं आया। और किसी से कोई रिश्ता आने की उम्मीद भी नज़र नहीं आ रही थी। यही तीन लड़कियां माधव के सामने थी। तीनों उससे शादी करने के लिए तैयार थी।

माधव को लगा, जब उसने शादी करने का सोचा था उस समय का जिन्दगी का खालीपन आज इस घड़ी में भी बरकरार हैं। लगता है, कहीं से भी रिश्ता आया हो, उन लड़कियों को देखने में ही और उनके बारे में सोचने में ही उमर बीत जायेगी..... ऐसे ही जीवन साथी के बिना।

उसे लगने लगा, जो भी कमी है वह उसी में ही हैं। आज तक के सारे रिश्तों में वह चिकित्सा ही करता रहा। इन तीन रिश्तों में तो अपने आप में एक समस्या मोल लेनेवाली बात लगती है। अंजली, गौरी या वसुमती के साथ शादी करने का आह्वान..... उसका मन यह आह्वान स्वीकारने के लिए तैयार नहीं था।

सत्यसाईबाबा से पूरी तरह घिरी हुई अंजली, पति की यादों को अभी भी जिन्दा रखने वाली गौरी या शादी कर के बाद में तलाक लेने वाली स्पष्टवक्ति वसुमती ....इनमें से कौन .... यह निर्णय माधव के लिए एक पहेली सा बन गया था।

अंजली, गौरी और वसुमती उसके आंखों के सामने घूमने लगी। अंजली उसे अच्छी लगी थी..... उसका सीधापन, किसी पर भी दिल लगाने की आदत.... गौरी उसे ठीक लग रही थी क्यों कि वह अच्छी गृहस्थी संभालनेवाली थी.....और वसुमती का जिद्दी स्वभाव माधव को उसकी ओर खींच रहा था।

अंजली जैसी लड़की जो साईबाबा के चंगुल में फंस कर मानसिक रोगी बनती जा रही हैं, उसे मेरी मदद की जरूरत हैं। वह किसी के साथ भी दिल लगा सकती है तो मेरी तरफ भी उसके प्यार का झुकाव कोई नामुमकीन बात नहीं है।

गौरी को भी तो आधार चाहिए। उसे जरूरत है ऐसे आदर्श पुरूष की जिसके सहारे वह जीवन में फल-फूल सकती है। वही आदर्श पत्नी और माता बन सकती हैं। लेकिन मैं तो वसुमती जैसी स्वतंत्र खयालों की पूरक और प्रेरक पत्नी चाहता हूं।

वसुमती तलाकशुदा है..... लेकिन उसका पति अभी जिन्दा है। उससे तो अच्छा गौरी का है जो अब इस दुनिया में हीं नहीं हैं। फिर तो गौरी ही ठीक रहेगी। लेकिन वसुमति को अपने पति से खूब नफरत है, सो वह तो उसके लिए मर ही चुका है। गौरी को उसके पति से ज्यादा प्यार था, इसलिए वह उसकी स्मृति में खोई रहती है। फिर तो सब में अंजली सबसे अच्छी क्यों कि उसकी पहले शादी ही नहीं हुई है। लेकिन ऐसे साधू के चमत्कार से प्रभावित लड़की अपनी सहचरी बनाने लायक मैं नहीं समझता। कैसी यह दुविधाएं हैं.....

ऐसी दुविधा में फंसा हुआ माधव दिन रात सोच कर उसी में उलझता चला गया। ऐसी उलझन में अब ज्यादा ही ज़िद पर आ गया था। ..... फिर उसने सोचा और निर्णय किया। यही तीन..... इन्ही में से एक। ऐसी ही जिसमें कुछ ऐब हो लेकिन मेरी जैसी कुछ अलग। ऐसी अलग कौन? उसने दिलो दिमाग दांव पर लगा कर निर्णय ले ही डाला।

बस!.... उसका फैसला हो गया। जो कुछ ऐब था वह अब ऐब नहीं रहा और रास्ता साफ नज़र आने लगा। "महल" की तरफ जाने वाली राह! "स्वप्ना" में भोजन के लिए और भावी जीवन के स्वप्न संजोने के लिए दावत देनेवाला खत वह अपनी भावी वधू को लिखने लगा।

लौटते हुए — सी वी श्रीरमण

उस ज़माने में किसी को यह मालूम भी नहीं था कि निज़ामुद्दीन नाम का कोई स्टेशन भी होता है। तब घर जाने के लिए वहां से केवल एक ही गाड़ी चलती थी, ग्रांड ट्रंक एक्स्प्रेस। ग्रांड ट्रंक कहने से कोई मज़ा नहीं आता। जी. टी. एक्सप्रेस की बात ही कुछ और है, रुवाब सा महसूस हेता है। आजकल दिल्ली से रवाना होने पर सीधा घर के पास वाले स्टेशन पर ही उतरता हूं, बीच में कहीं ठहरने की ज़रूरत नहीं पड़ती।

उन दिनों मद्रास जाने के लिए मद्रास–कोचिन एक्स्प्रेस पकड़कर मद्रास जाना पड़ता था। सूर्योदय देखकर सात बजे से पहले वापस होटल पहुंचता और केरला भवन में पैसेंजर चार्ज में ठहर कर आठ आने में ही, स्नान करना, पाखाना जाना, दांत साफ़ करना, सब कुछ हो जाता था।

बाद में वहीं होटल से दोसा और अंडा खाता। फिर कमरे में लेट जाता। जी. टी. एक्स्प्रेस का इंतज़ार करते हुए जिसका समय साढ़े दस बजे का था।

कहीं पर पढ़ा था कि यूरोप में स्लीपर क्लास होते हैं। जहां रिज़र्वेशन करा के सफ़र किया जा सकता है पर भारत में उस समय इस प्रकार का रिज़र्वेशन नहीं होता था। आज जब भारत में ऐसे क्लास हैं तो भी हर ट्रेन में और हर यात्रा में वह सुविधा मिल जाए यह ज़रूरी नहीं। महीनों पहले रिज़र्वेशन कराना होता है। फिर भी बिना टिकट यात्रियों का डर बना रहता है।

भारत में इस रिज़र्वेशन पद्धति को कार्यान्वित करना काफ़ी मुश्किल है क्योंकि सत्तर प्रतिशत यात्री बिना टिकट ही होते हैं। वे एक टोली में आकर स्लीपर पर चढ़ते हैं और बर्थ पर कब्ज़ा कर लेते हैं। आप उनसे कुछ कह नहीं सकते। हर डिब्बे में एक–एक सशस्त्र पुलिस होने पर भी इनको नियंत्रित करना मुश्किल होता है।

आजकल निज़ामुद्दीन से कोंकण से होकर घर के निकट पहुंचने वाली गाड़ी का नाम मंगला एक्स्प्रेस है। पहले कभी उम्मीद नहीं थी कि कोई ऐसी गाड़ी शुरू हो जाएगी। हांलांकि नयी दिल्ली से रवाना होने वाली जी. टी. वाली शान इसमें नहीं। इसमें क्या किसी भी और गाड़ी में नहीं। जी टी में चलने वाले यात्री भी अलग थे। बुद्धिजीवी लोग... दिल्ली से बुद्धिजीवियों भरे डिब्बे केरल या दक्षिण के विभिन्न शहरों को जाते। उस समय निज़ामुद्दीन स्टेशन से चढ़ने वाले यात्री इक्के दुक्के ही होते। आप बात करना चाहें तो पूछने पर ही वे जवाब देते थे नहीं तो नहीं। एक बार बात करते फिर चुप हो जाते। लोगों में मशहूर था– वे यात्रा पर ध्यान देते हैं, अपने साथ लाई गई किताब को पढ़ने में ध्यान देते हैं... साथ यात्रा करने वालों पर नहीं। सच मानिए दिल्ली से यात्रा करने वाले ग़ज़ब के सलीकेदार होते हैं। ज़्यादातर आत्मकेंद्रित। कुछ पूछो तो वे पहले लोगों को आंकते हैं। जवाब देने से यदि उनको कोई फ़ायदा न हो तो वे जवाब नहीं देते। वे ऐसे बैठे रहते मानो उन्होंने कुछ सुना ही नहीं। पर वह समय और था।

वह टू टायर कोच में चढ़ गया। एक बर्थ पर बैठ कर दूसरे यात्रियों के आने का इंतज़ार करता बैठा रहा। थोड़ी देर बाद एक बूढ़ा और एक बूढ़ी आए। वह चौंक गया क्योंकि बूढ़ी दिन में भी टार्च की सहायता से बर्थ का नंबर ढूंढ़ रही थी। नंबर प्लेट के पास तक टॉर्च जलाकर बूढ़ी ने नंबर ढूंढ़ा।

"नौ, दस, ये दोनों हैं" बूढ़े ने बर्थ की ओर इशारा करते हुए कहा। बूढ़ी बर्थ पर लेट गई। उनके हाथ कांप रहे थे। बीच–बीच में होंठ पलट जाते। ज़ोर से दबाकर वह अपना होंठ ठीक करती थी। बीच–बीच में आवाज़ भी करती। वह सोचने लगा, पता नहीं ये लोग कहां जा रहे हैं। उसे ये सह–यात्री पसंद नहीं आए। पर अब तो झेलना ही पड़ेगा। इसी कोच में कितनी ही बार शराबियों और झगड़ालुओं के साथ उसने यात्रा की है, बूढ़ा और बूढ़ी से उतना तंग तो नहीं होगा।

बूढ़ा सामने वाली बर्थ पर बैठ गया। वे दोनों खादी के सफ़ेद वस्त्र पहने थे। रिटायर्ड भाषा–अध्यापकों की वेशभूषा। रेलगाड़ी चलने लगी। स्टेशन पर विदा करने आए लोगों की संख्या ज़्यादा नहीं थी और निजामुद्दीन स्टेशन भी उतना लंबा नहीं कि हज़ारों हाथ देर तक हिलते दिखते रहें। रेलगाड़ी स्टेशन से जल्दी ही बाहर निकल आई। दोनों ओर छोटे–छोटे मकान हैं। इन घरों का पिछला भाग रेल की पटरियों की ओर है, और सामने का भाग सड़क की ओर। जल्दी ही टिकट कंडक्टर भी आ गया। वह सबके टिकट जांचते हुए हर किसी को उसकी बर्थ पर स्थित करने लगा।

'यूवर्स द अप्पर बर्थ,' टिकट कंडक्टर ने उस नौजवान से कहा। फिर भी नौजवान उठा नहीं, वहीं बैठा रहा। उसको लगा होगा कि शायद इस नीचे वाली बर्थ का यात्री बहुत देर बाद ही चढ़ेगा।
पर बूढ़ी टिकट कंडक्टर के आते ही उठ गई। बैग से छोटा सा रेलवे पास निकालकर दिखाया। टिकट कंडक्टर अभी युवक ही था उसने बूढ़ी के पैर छूकर नमस्कार किया। वह पास स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों को दिया गया विशेष रेलवे पास था। बूढ़े के जूते में चार जेबें थीं। उसने चारों जेबों को टटोला। अंत में पास ऊपर की जेब से मिला। उनके पास भी स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों का रेलवे पास था। टिकट कंडक्टर ने बूढ़े को भी पैर छूकर नमस्कार किया। वह स्वतंत्रता सेनानियों के प्रति आदर भाव प्रकट करना चाहता होगा।
"दोनों वृद्ध स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों से बात करते-करते समय कट सकता है। बीते ज़माने के बारे में बिलकुल सही जानकारी मिल सकती है।" यह सोचते हुए उसने वृद्ध दंपत्तियों को बार-बार देखा।

'सर क्या आप केरल तक जा रहे हैं?' मैंने अंग्रेज़ी में पूछा।
'नहीं इस बार तो नहीं...पर हां एक समय था...जब मैं दो महीने में एक बार वहां ज़रूर जाता था। उस समय मेरे दोस्त बैरिस्टर पिल्लै जीवित थे। क्या आप मिस्टर पिल्लै को जानते हैं? वे मेरे साथ यरवदा जेल में थे...' उन्होंने अंग्रेज़ी में ही जवाब दिया।
हमारी कुछ और बात अंग्रेज़ी में हुई फिर मैने पूछा, "क्या आप हिंदी बोलते हैं?"
"हां हां क्यों नही! बी ए में वह मेरी दूसरी भाषा थी।" और वे हुलस कर धाराप्रवाह हिंदी बोलने लगे।
'आपको कितने साल जेल में रहना पड़ा...?' मैंने पूछा।
'उत्तर भारत की जेल में चार साल और पोर्ट ब्लेयर सेल्यूलर जेल में दो साल...।'
'सेल्यूलर जेल, क्या वह आजीवन कारावास था?'
'चार साल की कैद के बाद मुझे रिहा कर दिया गया था। फिर मैं सीधा पठानकोट चला गया। वहां मैं फिर से बागियों के साथ मिल गया और अमृतसर पठानकोट एक्सप्रेस को पटरी से उतारने के लिए फिश प्लेट हटाने के जुर्म में पकड़ा गया। इस समय मुझे सेल्यूलर जेल भेज दिया गया।
'आप पर आरोप क्या लगाया गया?'
'हम लोग पटियाला राजा की हिंदू प्रजा थे। मैं पटियाला के किंग महेंद्र कॉलेज में इंग्लिश लिटरेचर एम.ए. अंतिम वर्ष का छात्र था। अचानक राष्ट्रभाषा की चाह मुझे हुई। कोट, टाई, पैंटस, अंग्रेज़ी किताब सब कुछ कॉलेज के सामने जला डाला और राष्ट्रभाषा की क्लास में भर्ती हुआ। फिर 'भारत छोड़ो' आंदोलन में भाग लिया।'
बूढ़ी अभी तक चुप थी। उसे लगा कि वह हिंदी भाषी नहीं है। शायद कोई दूसरी भाषा बोलती होगी उसने सोचा। फिर भी बात करने के लिए उसने बूढ़ी से पूछा, 'क्या आप हिंदी बोलती हैं या अंग्रेज़ी?'
'दोनों ही..मैंने एम ए अंगरेज़ी साहित्य में किया था और फर्स्ट डिवीज़न में पास भी हुई पर स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के कारण अंग्रेज़ी सरकार ने मेरी डिग्री जब्त कर ली। मैं हिंदी में बात करना पसंद करती हूं। हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा है हमें हिंदी बोलनी चाहिए।' फिर बूढ़ी भी हिंदी में बात करने लगी।

उसने पूछा, 'मैडम।'
'मुझे मैडम मत कहो। मां या माताजी कहकर पुकारो।' बूढी ने आत्मीयता से उत्तर दिया।
'माताजी आप कितने साल जेल में थी? कौन-कौन से जेल में?'
'एक ही जेल में। अंदमान सेलूलर जेल...।'
'किस जुर्म में?'
'सर फर्गुसन म्यूरो मेट्रोपोलिटन कमिश्नर ऑफ पुलिस दिल्ली को गोली मारने के जुर्म में। सुबह से मैं उनका पीछा कर रही थी। उन दिनों कनाट प्लेस में स्पेन्सर्स इंडिया का एक रेस्टोरेंट था। मैंने कमिश्नर को वहां जाते देखा। उनके बाहर आने का इंतज़ार किया।'
'बूढ़ी मुश्किल से उठ खड़ी हुई। उनके हाथ ही नहीं शरीर भी कांप रहा था। बीच-बीच में उनका होंठ सिकुड़ जाता था। वह होंठ रगड़कर बात करने लगी। 'मैंने एक गोली चलाई।'
'सर फर्गुसन म्यूरो का घोड़ा बाहर खड़ा था। मैं उस पर चढ़कर निकल गई।'

'आप घुड़सवारी जानती थी?'
'हमारी आज़ाद सेना में सबसे पहले घुड़सवारी सिखाई जाती थी। उन दिनों ब्रिटिश केवलरी फोर्स लाठी चार्ज और बैनेट चार्ज आदि करते थे। इसलिए आज़ाद सेना में घुड़सवारी भी शामिल थी।'

बूढ़ी होंठ को दबाती रही और फिर लेट गई। उसकी हिचकियां सुनाई पड़ती थी। मुझे यह देखकर दुःख हुआ। गौतम बुद्ध मनुष्य के बुढ़ापे से चिंतित थे।

बूढ़ा बात करने लगा। माउंट बैटन मिशन का पहला हुकुम अंदमान के राजनैतिक बंदियों को रिहा करना था। हम दोनों ने जेल से छूटकर एक ही जहाज़ में यात्रा की।
'शायद आप दोनों वहीं मिले और प्यार हुआ।'
'श् श् श् चुप। उन दिनों हमको प्यार करने के लिए समय ही नहीं था। बूढ़े ने बूढ़ी से पूछा कि गांव जाकर क्या करने का इरादा है। उसने कहा, राजनीति में तो उतरना नहीं चाहती। बच्चों को पढ़ाना चाहती हूं। बूढ़े ने भी कहा कि राजनीति छोड़ने का इरादा है। उसकी भी इच्छा बच्चों को पढ़ाकर जीने की थी। इस प्रकार ट्यूशन क्लास शुरू कर दिए। उन दिनों दिल्ली में मेरा एक घर था। मैं और मेरा भाई दोनों इस घर के हकदार थे। भाई रंगून में बहुत बड़ा डॉक्टर था। वह कभी वापस नहीं आया। आज भी हम उसी घर में रहते हैं। अभी भी ट्यूशन क्लास चलाते हैं।'
'आप लोगों ने यह नहीं बताया कि आप कहां जा रहे हैं?'
'हम भोपाल जा रहे हैं। हमारा एकमात्र बेटा वहां रहता है। वहां पर एक कंप्यूटर इंस्टीट्यूट चलाता है।'

तभी वहां एक महिला बच्चे के साथ आई। वह कुछ अव्यवस्थित थी। शायद वे लोग ग़लत कोच में आ गए थे। औरत के बाल लड़कों की स्टाइल में तरतीब से छोटे काटे हुए थे। वह बनियान जैसे कपड़े से बना टी शर्ट और जीन्स पहने हुई थी। वह आधुनिक दिखाई देती थी। शायद वह कामकाजी महिला भी रही होगी। हो सकता है कि किसी ऊंचे पद पर काम करती हो, क्यों कि उसका चेहरा काफी रुवाबदार था और कानों में जगमगाते हुए हीरे थे।

बूढ़ी ने परिचय करवाया। 'यह मेरे बेटे की पत्नी और यह पोता है। वे अब तक बगल के डिब्बे में थे।' महिला ने होंठ में लाल रंग की लिपस्टिक लगाई थी। संकोच के बिना उसने पूछा, 'यू मस्ट बी फ्राम केरला।'
'हाउ डू यू नो?' मैने आश्चर्य चकित हो कर पूछा
'आय ॲम वर्किंग इन ए स्कॉटिश एडवरटाइज़िंग कंपनी, ऑफ कोर्स ए मल्टीनेशनल। वेर फ्राम असिस्टेंट मैनेजर टू चपरासी ऑल आर फ्राम केरला।' उसने होंठ से कुछ हरकत की। इस प्रकार उसने केरल के लोगों के प्रति अपने विचार स्पष्ट कर दिए।

बूढ़ी ने पोते को पास बुलाकर परिचय करवाया। 'यह है मेरा पोता संपूर्णानंद...'
मैने बच्चे से पूछा, 'बेटा, तुम कहां पढ़ते हो?'
'हिंदू वेदिक इंग्लिश मीडियम स्कूल...'
'किस क्लास में?'
'तीसरे क्लास...'
बूढ़ी की आधुनिक बहू ने हाथों से बच्चे का मुंह बंद किया।
'यू आर स्टडियिंग इन हिंदू वेदिक इंग्लिश मीडियम स्कूल अफिलिएटेड टू ऑक्सफोर्ड। टाल्क इन इंग्लिश मैड यू।'
महिला ने बच्चे के मुंह से हाथ हटाया।
बच्चे ने कहा, 'तीसरे क्लास में...'

औरत के हाथ कांप रहे थे। उसने बच्चे को मारा और धक्का भी दिया। बच्चे के होंठ और माथे से खून निकला और वह दौड़ा...तब भी वह चीख रही थी।
'यू इंडियन डेविल टाल्क इन इंग्लिश।'

सांझ के एकांत तट पर — तारा तोमस

पूर्वाषाढ़ नक्षत्र अभी उग आया है। देवकि अम्मा बेचैन हो रही थी। कल सुबह होने के पहले सैकड़ों काम ठीक करने हैं। कारिंदा रामन नायर और नौकरानी शारदा हैं तो सही हाथ बंटाने को, फिर भी हर ओर अपनी दृष्टि डालनी होगी। बेटों और उनके परिवारवालों को किसी बात में कोई कमी न रहे। अब तक तो कोई कमी मैंने आने नहीं दी है।

कल सुबह जब दुबई से उण्णि का फोन आया, तो निश्चित हो गया कि इस बार ओणम के समय सभी बेटे मेरे साथ घर पर होंगे। इस आशय का खत पहले ही आया था कि अप्पू, सरला और बच्चे एवं केशी, पद्मिनी और बच्चे आ रहे हैं। उण्णी की बात ही संदिग्ध थी। उसकी पत्नी का यह तीसरा महीना चल रहा है।

इस हालत में डॉक्टर ने उसे यात्रा करने से मना किया है। इसीलिए पहले से लिख नहीं पायी कि वे भी जरूर आयें। फिर भी, जब दूसरे दोनों बेटे आ रहे हैं, तब सिर्फ उण्णी का न आना.... । कल तक वह अपनी धोती का छोर पकड़ कर चलने वाला छोटू था। उसका बड़ा हो जाना, समुन्दर पार नौकरी के लिए जाना और शादी करना — सब मानो सपना ही था।

बड़े बेटों को हमेशा यह शिकायत थी कि अगर उण्णि पास न हो, तो अम्मा को ओणम और जन्म दिन कुछ भी सुहायेगा नहीं। खैर.....कमला का भाई एन•ओ•सी• लेकर नौकरी के लिए बाहर गया तो समस्या हल हो गयी। उण्णि आराम से अब घर आ सकता है। वैसे घर, गाँव वाले ओणम, विषु मन्दिर के त्योहार — ये सब उसे प्रिय रहे हैं, पहले और आज भी। (नहीं, प्रिय थे, शादी तक) साल में एक बार किसी अच्छी तिथि को वह घर आ जाता है। फिर दोस्तों के साथ हँसी-मजाक। सोया हुआ घर फिर जागता है।

अब सिर्फ तीन वर्षों से यह क्रम बदल गया है। जानती हूँ, इसमें शिकायत करने की अब गुंजाइश नहीं। बेटा शादी-शुदा हो गया है — यह तो भुलाना नहीं चाहिए। उसकी अपनी अलग उलझनें होंगी। बुढ़ापे में मुझे अकेली छोड़कर जाना नहीं चाहता था वह, इसीलिए उसी के आग्रह पर मैंने बहू चुन ली। धन-दौलत का ख्याल नहीं किया, लड़की मेरी सेवा-सुश्रूषा के लिए तैयार हो - यही उण्णि चाहता था। पर छुट्टी के बाद वह गया तो बहू का मुँह फूल गया। मैंने ही पैसा खर्च करके उसे पति के साथ भिजवाया कि मुझसे उसका दुख, उदासी और अनमनापन देखे नहीं गए। अब तो तीन वर्ष बीत गये। दोनों पहली बार घर आ रहे हैं।

अप्पू तो पाँच वर्षों में एक बार ही घर आता है। अमेरिका से आने-जाने में उसे और परिवार को भी भारी रकम खर्च करनी पड़ेगी। उसने ही छोटे भाइयों से कहा था, पाँच साल में एक बार सब ओणम के समय घर आयें, घर मिलें। केवल ओणम के कारण नहीं, श्रावण महीने में 'घनिष्ठा' मेरा जन्म दिन है। ठीक तीन दिन बाद मैं सत्तर वर्ष की हो जाऊँगी।

वह आँखें बन्द करके अपने में खो गयी। अब तो 'उन्ही' की शक्ल सामने आती है। घर के अहाते और बाग-बगीचे में व्यस्त रहने वाले अपने पति का। गठा हुआ सांवला बलिष्ठ शरीर। बीच-बीच में 'देवूठ देवू' पुकार कर मुझे हिदायत देते। तीन छोटे-छोटे बच्चे। फिर भी किसी बात में मैं पीछे नहीं रही। एक को बगल में संभाल और दूसरे का हाथ पकड़, मैंने उनकी सहायता की। जी-तोड़ मेहनत की। एक जमाना वह भी था।

कैसे, खून-पसीना, बहा कर यह सारी संपत्ति कमायी थी। टूटा-फूटा पुश्तैनी मकान तोड़-फोड़कर दुमंजिला बंगला बनवाया। नारियल-कुंज खरीदा। ब्राह्मण ज़मींदार से धान के खेत साझेदारी पर खेती के लिए लिये। उन्होंने एक घंटे

तक का विश्राम नहीं किया।

फिर? एक रोज़ काम करके लौटे तो वह केले के तने के समान दहलीज पर गिर पड़े। फिर भी मैं हताश नहीं हुई। उन्होंने जिन बेटों को मुझे सौंपा था, उनके वास्ते मेरे अलावा और कौन था? बेटों को पाल-पोसकर बड़ा किया। जीवन-भर चैन से रहने लायक संपत्ति उन्होंने बना ली थी। सिर्फ यही कमी थी कि वह साथ नहीं है। अब तक मैंने शान से घर-गृहस्थी का काम देखा। तब और अब भी दूसरों के सामने सर उठाकर ही चलती। 'बड़े घर की' देवकि अम्मा — इस नाम का महत्व और गरिमा आज भी ज्यों की त्यों है। दुमंजिला मकान, नारियल-कुंज और धान के खेतों की मालकिन। (यह दूसरी बात है कि मन यह मानने को तैयार नहीं कि आए दिन के ये सारे ताम-झाम मुसीबत हो गए हैं)

फ़िजूल खयालों में कितना समय गंवाया? "शारदा-ओ-शारदा" ! पुकारती हुई सीधी रसोई-घर की ओर बढ़ी। मेरे उसके पास जाकर सामने खड़े हो जाने पर वह
मुझे सुनती है! खैर... चूल्हा तो जलाया है। अब तक आँगन साफ कर बरामदा पोंछा जा सकता था। यह तो मेरी हिदायतें मानती नहीं। इसे सख्त चेतावनी देने
का समय आ गया है। बेटों को आने-जाने दें.... उसके बाद। नहीं तो उनके सामने यह चुड़ैल मुँह फुलाए खड़ी रहेगी। बेटों को बेचैन क्यों करूँ? हर बार की उनकी शिकायत है कि मैं नौकरों के प्रति सख्त हूँ।

अब बेटों के स्वागत की तैयारियों का ख्याल आया। अप्पू और सरला को ऊपर का कमरा ठीक रहेगा। उसे इधर वही एक कमरा भाता है। वहाँ कुछ प्राइवसी है। नीचे का हिस्सा सबके आने-जाने को सराय-सा है। रेखा और रश्मी दोनों बिटियों को अपने साथ रखूँगी। अपने कमरे की पुरानी गंध उन्हें फूटी आँख नहीं सुहाती। पिछली बार आयीं तो उन दोनों ने अपने बाबूजी से अंग्रेजी में इसका जिक्र किया था। पर माँ-बाप के साथ उन्हें ऊपर के कमरे में सुलाने लगी तो अप्पू ने मना किया। अमेरिका में बच्चों को माँ-बाप के साथ लिटाया नहीं जाता। फिर केशी का परिवार भी है। सोने की बात में उनका कोई विशेष आग्रह नहीं होता।

बम्बई के किसी व्यस्त मुहल्ले में किसी बड़े मकान की चौथी मंजिल के दो कमरों में वे रहते हैं। उनके लिए इधर नीचे का हॉल पर्याप्त है। भले ही केशी की पत्नी पदिमनी, अमेरिका से आयी अपनी बड़ी भाभी की तरह यहाँ की सुख सुविधाओं से सन्तुष्ट दिखाई नहीं देती। जब 'वह' जिन्दा थे, उसने सुझाया था, हमारे सोने का कमरा उनके लिए खोल दिया जाये। पर मैंने उसे अनसुना कर दिया। पता नहीं क्यों, उसी समय से वह कमरा साफ करके वहाँ बत्ती जलाकर वैसे ही सुरक्षित रखा गया है।

उण्णि के लिए बरामदे का सोफा ही काफी था। घर आया भी तो क्या, उसे घर पर रहने का समय कहाँ? पुराने दोस्तों को ढूँढ़ने में व्यस्त रहता। फिर मंदिर की चार- दिवारी, पनघट और चौक में उसका समय बीतता। चूँकि मैं उसके साथ खाने के इंतजार में रहती, इसलिए आधी रात तक वह घर आ जाता।

जब हरेक के सोने की व्यवस्था ठीक की, तो शारदा को हिदायतें दीं - कमरों में झाड़ू लगाकर साफ करना, गद्दे-बिस्तर धूप में सुखाकर खाटों पर लगाना आदि।

अब खाने की बात। बेटों की रूचि बदल गयी है। वैसे ही तीती, खट्टी और नमकीन चीजें किसी को पसन्द नहीं।

सादा साम्बर, कम खट्टा कालन कम नमकीन अचार — ऐसा कुछ बना लूँ तो भी वे पसन्द नहीं करेंगे। मछली और गोश्त के बिना वे एक बार भी खा नहीं पायेंगे।
पर ओणम के इस शुभ अवसर पर — हाँ, ओणम की चीजें ही बनाऊँगी। ओणम के दिन खीर आदि नहीं चाहिए! बच्चों को गुड़ का बना पायसम पसन्द है। पर
'उनके' समय का क्रम नहीं तोड़ूँगी। अपने ही खेत के चावल और नारियल के दूध को पड़ोसी अवराच्चत के शुद्ध गुड़ में

मिलाकर 'वह' विशिष्ट खीर बनाते थे। सभी उसे चाव से खाते थे। उस समय "उनके" मुख पर संतुष्टि का भाव खिल उठता। खैर.... पुरानी बातों को याद न करूँ, तो वही अच्छा होगा।

यद्यपि अप्पू आज दोपहर को प्लेन से आएगा, फिर भी रात को सरला के घर ही ठहरेगा। अमेरिका से आने वाली विशिष्ट चीजें वही बंटेंगी। उनकी पड़ोसिन
रेवती टीचर, जो हमारे यहाँ किराए पर रहती थी, उसी ने बताया था। मुझे ओणम के ' विशिष्ट वस्त्र' देने में अप्पू कभी भूल नहीं करता। फिर भी सरला अपने
घरवालों को जो अमूल्य उपहार देती है, उसकी सुनकर कभी-कभी सोचती - काश मेरे भी एक बेटी होती! मरते दम तक 'उन्हें' बेटी न होने का दुख सालता रहा।
तब अपने बेटों की शक्ति पर मैं गर्व करती थी। अब यह विचार क्यों आया? मन की चंचलता होगी।

बेटों के रहने-सोने का प्रबन्ध पूरा होते-होते शाम हो आयी थी। ऊपर के शयनागार में बड़ी-सी बाल्टी साफ करके उसमें पानी भर रखा था। अप्पू ने सवेरे नाश्ते के समय आने की बात लिखी थी। फिर भी उसे और सरला को नहाने-धोने में कोई कष्ट न हो।

सोने गयी तो देवकि अम्मा को उत्कण्ठा हुई कि कोई काम रह तो नहीं गया है।

पूरे पाँच वर्ष बाद तीनों बेटे एक साथ घर आ रहे हैं। मेरे होते उन्हें कोई कमी महसूस नहीं होगी। रेवती टीचर ने जैसे कहा था — "माँजी, आपकी बहुएँ
खुशनसीब हैं। ससुराल में उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं। यहाँ सब ठीक-ठाक है। उन्हें केवल सुस्ताना और आराम करना होगा। पर वे क्या इसका मूल्य समझती है? मेरी सास शनिवार को मेरी राह देखती रहती हैं। क्योंकि तभी यह अपनी बेटी के यहाँ जा सकती है। मेरे पति का आदेश है कि उन्हें दो दिन की छुट्टी दी जाये। नाम के लिए वह पाँच दिन की गृहस्थी चलाती है। पर सब भारी काम मेरे लिए पड़े रहते हें। वहाँ पहुँचने के बाद, फिर इधर लौट कर ही मैं साँस लेती हूँ।"

रेवती टीचर ठीक कहती है। अगर एक दिन मैं यहाँ न रहूँ, तो पता नहीं, मेरे ये बहू-बेटे क्या करेंगे।

इधर-उधर की बातें सोचकर लेटी थी। अतः बड़े सवेरे ही नींद आयी थी। सोते हुए एक अजीब सपना मैंने देखा।

अभी सुबह हो रही थी। आज रामन नायर पहले ही आया है। पीछे शारदा भी। बेटे आज आयेंगे, इसलिए पहले ही दोनों पहुँचे होंगे। अलावा इसके मैंने कल
कहा भी था कि सुबह पहले आ जाना।.... रोज की तरह बरामदे का द्वार खट- खटाने के बदले रामन नायर चाबी से दरवाजा खोलने की कोशिश करता है। क्या
वह होश में नहीं? या वह घमंड में है? नहीं, सिर्फ रामन नायर और शारदा ही नहीं, मैं भी बाहर हूँ। यह क्या मजाल है! मेरा घर पर नहीं रहना - पिछले पचास वर्षों में ऐसा कभी नहीं हुआ। उनके निधन के बाद भी मैंने यह नियम नहीं तोड़ा। तो अब यह कैसे हुआ? क्या किसी पूर्व-सुचना के बिना मुझे घर से निकाल दिया गया? हाय! मेरे सारे अंग शिथिल हो गए। मेरे विचार पहले जिज्ञासा में बदल गए और फिर चिन्ता में। रामन नायर के पीछे मैं घर के अन्दर गयी।

रामन नायर शारदा को हिदायतें दे रहा है। फौरन, मानो कुछ याद करके, उसने उत्तर की तरफ जाकर शारदा को समझाया — 'देख, पहले माँजी के चबूतरे को साफ करके वहाँ बत्ती जलाना। बाकी सारा काम बाद में।' क्या, माँजी का चबूतरा? तभी समझ में आया कि मैं मर गयी हूँ। भगवान! अब की बार बेटे घर आयें तो उनकी सुख-सुविधा का ख्याल कौन रखेगा? मृत्यु हो जाने से मेरी मजबूरी! उन्हें कैसे समझाऊँ? क्या शारदा पत्थर बनकर वहाँ खड़ी है? क्या रामन नायर की बातें उसने सुनी नहीं? 'क्यों री! इस प्रकार क्यों खड़ी हो तुम?' रामन नायर ने पूछा।

शारदा अपने ओठ सिकोड़ कर फुस-फुसायी — "हूँ, बत्ती जलाती हूँ। क्षणभर भी साँस लेने नहीं दी है बुढ़िया ने। पैसा बचा-बचा कर पिछली बार ओणम को पाजेब बनायी थी मैंने। पर एक दिन भी यहाँ पहनने नहीं दीं। कहती थीं, नौकरानी पाजेब पहनकर चल नहीं सकती।"

नौकरानी की यह कृतघ्नता। पाजेब बनाने को पैसा पूरा नहीं पड़ा, तो मैंने ही तीस रूपये उधार दिये थे। आज तक उसने वापस किये भी नहीं। फिर, घर पर पाजेब बजने नहीं दी, कारण? सुबह आनेवाले गाय-दोहक से लेकर शाम को ताड़ी (नारियल के पेड़ से) लेने वाले मजदूर तक से वह छेड़छाड़ करती है। तब, फिर उण्णि घर पर हो तो.... तिस पर भी उण्णि की लड़कियों के प्रति कमजोरी मुझसे छिपी नहीं है — तो उस पर नियंत्रण रखना होगा.... ओ, यह सब अपनी बातें हैं। खैर.... नौकरानियों से एहसान और प्यार की आशा करना, इस जमाने में व्यर्थ ही होगा.... अप्पू बराबर कहा करता था।

रामन नायर अपना कंधा झटका कर कहता है — "अरी बेवकूफ, वो सब पुरानी बाते हैं न! अब तो बुढ़िया के लड़कों को खुश करना है। वे सौ-पचास रूपये खुशी से देकर चलें। बूढ़ी होती तो मानती नहीं। अब तो वह बला टली।"

क्या! यह रामन नायर ही है, जो मेरे बारे में ऐसी नफरत-भरी और मुँहजोरी की बातें कर रहा है। मैंने उसे कभी एक वेतनभोगी कारिदा नहीं माना। यह भूल गया है कि उसकी तीनों बेटियों की शादी में और नया घर बनाते समय मैंने हाथ खोल कर पैसा दिया था।.... मन ग्लानि से भर गया। उसकी बातों में भी सच्चाई है। पर अपने बेटों की फिजूलखर्ची रोकना मेरा कर्तव्य नहीं था क्या? क्या यह सब समझने की बुद्धि रामन नायर को नहीं? नहीं, मानो अब मेरा न होना उसकी खुशकिस्मती है।

फाटक पर मोटर आकर रूकने की आवाज। मेरी समाधि (चबूतरा) साफ करके शारदा बाल्टी लिए कुएँ की ओर दौड़ी।

'ओ, बरामदे पर पानी नहीं रखा क्या? दूर से सफर करके आ रहे हैं। हाथ-मुँह धोकर ही अन्दर चढ़ेंगे।' तब उसे इतनी ही समझ है। मैं बरामदे पर सिर्फ देखती खड़ी रही।

अप्पू और परिवार नहीं, बल्कि केशी, पद्मिनी और बच्चे हैं। पीछे पेटियों-बिस्तरों को लिए रामन नायर। दो दिन के सफर से बच्चे धूल और गन्दगी से काले हो गए हैं।

घर के द्वार पर आकर बेटा क्षण-भर के लिए मौन खड़ा रहा। आँखों में विषाद की छाया? मेरी याद करके..... बिचारा केशी। मेरा अभाव उसे दुख देता होगा। अगले क्षण पद्मिनी की परिहास-भरी वाणी-पैरों पर पानी डालती शारदा को संबोधित करके - "तू जा। अब की बार चप्पल उतार कर कौन पैर धोएगा? किसे दिखाने? आगे से इस घर में अपनी सुविधा से रह सकती हूँ।"

बहू ऐसा जता रही है मानो उसे पूरा आराम मिल गया है। तो मेरा सानिध्य उसे बहुत खटकता था! क्या केशी बेटा इसके विरोध में कुछ बोलेगा नहीं! वह तो पत्नी के साथ हंस देता है। क्या उसे इतनी समझ नहीं कि बाहर की गन्दगी से सने चप्पल, साफ-सुथरे घर के अन्दर नहीं ले जाये जाते। अब तक इनकी सुख-सुविधा का खयाल था मन में। अब तो मन भारी हो गया है! उनके साथ घर के अन्दर पैर रखने को मन नहीं करता। सब वही हो, जो वे चाहते हों। मैं क्यों... मेरा बेटा अपनी बीवी से कुछ फुस-फुसाता है। मृत्यु के बाद की हालत से होगा, मुझे साफ सुनाई दिया। 'तू शारदा से कह, बाबूजी वाला कमरा खोलकर हमारे लिए ठीक करना। बम्बई में बच्चों के साथ रहने से क्या दाम्पत्य है? इधर भी वही। न, कम से कम इस बार प्राइवेसी का कुछ मज़ा लूटना चाहिए।'

क्या यह मेरा बेटा ही कह रहा है। इतना स्वार्थ उसके अन्दर छिपा था।..... वैसे एक दृष्टि से उसका कथन ठीक भी है। वर्षो बाद अब घर आता है, तो उसके लिए इतनी सुविधा का प्रबन्ध मैं कर सकती थी। फिर भी, मेरे न रहने से सख्त

दुखी होने के बदले बेटा.... । ज्यादा कुछ सुनना न पड़े। कान बन्द करके बरामदे की दीवार के सहारे बैठ गयी।

पता नहीं, कितनी देर तक यों बैठी रही। फाटक पर दूसरी मोटर.....अप्पू है। उसके साथ पैंट-शर्ट पहने तीन ओर लोग। तब सरला, इन्दु और बिन्दु नहीं आयीं। मेरे न रहने की असुविधा के कारण होगा। सोने के वक्त ही सब नीचे चले आते हैं, तब खाना खिलाने-परोसने को कोई न रहे तो.... "नहीं, लगता है कि अप्पू के साथ आये लोगों से रामन नायर परिचित है। आपस में कुशल पूछते और हँसते तो हैं। केशी और परिवार सीढ़ियाँ उतर कर जल्दी ही उन्हें लेने गया। अभी पता नहीं चला कि अप्पू के साथी कौन-कौन हैं। पदिमनी ज़ोर से हँसकर बोली — 'भाभी और बच्चियों का वेश लाजवाब है। अगर माँजी होती तो उन्हें पहचानने में कठिनाई होती कि इनमें भाभी कौन-सी है और बच्चियाँ कौन-कौन सी हैं।'

मैं यह क्या सुनती हूँ। अप्पू के साथ बाल कटे और पैंट पहन कर आये लोग सरला और उसकी बच्चियाँ हैं! मेरे पास से होकर जाती हुई सरला पदिमनी से गुप्त बात कर रही थी — "कैसा आरामदेह वेश है! वहाँ तो हम इसके आदी हो चुके हैं। अब तक, यहाँ आने के छह महीने पहले से बाल बढ़ाती थी। यहाँ भारतीय नारी बनकर न आये, तो माँजी की खरी-खोटी सुननी पड़ेगी। पिछली बार भी मेरे यहाँ नाइटी पहनने का कैसा विरोध किया था, माँ जी ने। कहती थीं कि केशी और उण्णि के सामने मैं बेशरम चलती थी। तभी मैंने अप्पू से कहा था कि आइन्दा अम्माजी की मृत्यु के बाद ही मैं इधर आऊँगी। वैसे भी माँ-बाप के पीछे पड़े रहने की आदत हमारे घर में नहीं। फिर अप्पू के पुराने आचार-विचार के कारण.. .. और इस बार आए हैं, हमारे बँटवारे के लिए... ।"

बाकी सुनने की ताकत मुझ में नहीं थी। दो बच्चियों की माँ होकर सरला कैसे यह कह पाती? कम-से-कम यह तो विचार करती कि कल उसकी भी यह हालत होती।

रात के कपड़े के नाम पर अन्दर के सब कपड़े दिखाई देने वाला आइना जैसा वेश पहनकर सवेरे कॉफी पीने आयी, तो मैंने उसका सचमुच विरोध किया था। तब उण्णि की शादी नहीं हुई थी। केशी अकेला आया था। ऐसा नहीं था, तो भी देवरों के लिए माँ-सरीखा व्यक्ति इस प्रकार बेशरम प्रत्यक्ष हो जाता तो.... उस दिन वह मुँह फुलाकर ऊपर चढ़ गयी तो मैंने कभी नहीं सोचा था कि वह ऐसा कठोर निर्णय लेगी कि मेरे होते इधर फिर नहीं आएगी। तब तो मेरा न रहना.... उसकी जीत है। इन ममताहीन बहुओं के बीच से जल्दी हट जाऊँगी।

अपने पोते-पोतियाँ अपने खून से पैदा हो गए हैं। उनके साथ अपने कमरे मे रहूँ।

रेखा और रश्मि पूरे उत्साह से कमरे की देख-देख कर रही थीं। दोनों को एक-जैसी खुशी। उनकी अंग्रेजी बोली और हँसी भले ही समझ में न आये, पर उन्हें देखते रहने में खुशी है। बड़ी चौदह बरस की हो गयी है। कोई उसे लड़की नहीं कहेगा। शक्ल-सूरत वैसी है। ध्यान से देखा जाये तो 'उन्हीं' पर गयी है। चौड़ा भाल, पैनी नाक, मोटे ओठ — सब वही है। वह जोर से हँसी तो बायीं तरफ का दाँत ऊपर उठ आया था, वह भी 'उन्हीं' की तरह। एक शीतल बौछार! उनको दूध देने शारदा आयी तो टूटी-फूटी मलयालम में जो बात उससे कही, वह सुनकर मैं चौंक गयी। सिर्फ उन दोनों के लिए वह कमरा मिला, यह अच्छा ही हुआ। मेरे तेल की बदबू, खर्राटा, खाँसी — ये सब उन्हें दुस्सह था। नहीं, अब मुझे यहाँ रहना नहीं है। पोते भी मेरे न रहने से खुश हैं। भारी मन से मैं बाहर आयी।

दालान में अप्पू और रामन नायर थे। रामन नायर द्वारा लायी गयी सोडे की बोतल अप्पू हाथ में लेता है। रामन नायर ने मुस्कुराकर कहा — 'अब तो यह जरूरी नहीं कि आप ऊपर जाकर ही पिया करें। यहाँ खाने के कमरे में पी सकते हैं। मैं अपने घर से मुर्गे का गोश्त पकाकर ले आया हूँ। अब तो माँजी के देख लेने की झँझट नहीं।' अप्पू भी हँसता हैं। 'रामन नायर, तुम्हारे कहने से ही वह बात याद आयी। खाना परोसने को कहो। मैं बोतल लेकर आऊँगा। यह तो अच्छा ही हुआ।'

वह ऊपर चढ़ गया तो उसकी ये बातें सुनकर मैं आश्चर्यचकित हो गयी। उसने किस बात को अच्छा कहा। दोपहर को खाने के पहले दालान में ही बैठ शराब पीने की बात। या मेरे न रहने की स्थिति।

ज्यादा सोचने की शक्ति नहीं थी। धीरे-से पैर रखकर बरामदे पर आयी। फिर दीवार के सहारे वहीं बैठी। अब उण्णि का आना शेष रह गया है। आज ही आ जाएगा। कल तो ओणम है। मैं न रहूँ, तो भी वह आएगा। उसे भी एक बार देखकर.... ।

पर उण्णि के बदले आया था डाकिया। रामन नायर जो खत लेकर अन्दर आया, उससे लगा कि वह उण्णि का ही है। पता लगाने की कुतुहलता बढ़ी। क्या? कमला को इस बार कोई बीमारी। उसे बच्चा पैदा होने की कितनी बड़ी इच्छा थी। कई मनोतियाँ मानी थीं।

ठहाका लगाकर हँसने की आवाज। हँसी-मज़ाक की क्या बात लिखी है उसने? जानने का उत्साह बढ़ा। दालान में बच्चों की बातें सुनाई दीं। कमला के तीन महीने का गर्भ होने की बात झूठी थी। घर आए तो, माँजी के साथ कुछ दिन रहने को कहेगी। इससे बचने को उण्णि ने लिखा.... इस बार घर आकर 'बोर' होने के बदले वे यूरोप जा रहे हैं, सैर के लिए। अम्मा को निराश किया — यह अपराध-बोध भी नहीं हुआ होगा।

मन में एक प्रकार का निर्वेद फैल रहा है। हाँ, अब मेरे कारण उण्णि को ही नहीं, बल्कि किसी को अपराध-बोध न हो। अब तो इस घर से, मेरे लिए बिलकुल पराये इस घर से, निर्विकार होकर चली जाऊँगी।

मैं कहाँ गयी थी... नहीं, बाकी कुछ याद नहीं। आँख खुली तो सुबह हो गयी थी। फिर भी पाँच वर्ष में एक बार मैं जिस दिन का इंतजार करती हूँ, उस दिन के महत्व या उस दिन किये जाने वाले सैंकड़ों कार्यों की याद करके बेचैन नहीं हुई। यह सोचते-सोचते थकी-हारी पड़ी रही कि मैं इस घर के लिए एकदम जरूरी व्यक्ति हूँ या कि कोई अनचाही वस्तु।

सांवली मालकिन ई हरिकुमार

हर रोज़ झोपड़ी के चबूतरे पर बैठी हुई सुलू पिता को पगडण्डी से ऊपर जाते हुए देखकर सोचती है — मेरी मां कब आएगी?

कल रात उसने सपने में मां को फिर देखा। मां ने पास आ कर सुलू को गले से लगाया। हर रोज़ वह यही सपना देखती है – मां आती है, उसे गले से लगाती है, गोद में बैठाती है, उसके बालों को सहलाती है। रोज़ सपने में मां को देखती तो है पर मां का चेहरा याद नहीं रहता। फिर भी मिलने का संतोष बना रहता है।

वह रोज़ सुबह पिता से कहती है अप्पा, मैने एक सपना देखा। उस समय तामि भी नहीं पूछता कि चार साल की सुलू ने सपने में क्या देखा। उसे मालूम है कि सुलू कौन सा सपना देखती है। वह रोज़ एक ही सपना तो देखती है और काम पर जाते समय याद दिला देती है कि वह मां को वापस लाने की याद रखे।

हर रोज ऐसे ही सुबह होती है। सुलू का सारा दिन झोपड़ी के बाहर इस चबूतरे पर बीतता है...मां का इंतज़ार करते.. .अकेले.. खेलते हुए ...भूखे पेट... कभी कभी कांजी पी कर...देर तक शाम ढले पिता के काम से वापस लौटने तक...

मालिक की हवेली के सामने कड़ी दोपहर में तपते हुए सूरज के नीचे तामि खड़ा है। दूर छायादार वृक्ष उसे हाथ हिला कर अपनी ओर बुलाते हैं लेकिन तामि को ज़मींदार का इंतज़ार है। वह बार बार खड़े हो कर ऊपर देखता है और बैठ जाता है। आधे घंटे के कठिन इंतज़ार के बाद ज़मींदार का नौकर संदेश देता है — "मालिक से आज मुलाकात नहीं होगी।"
तामि बिना मुलाकात किये कैसे चला जाए?

जब तामि की पत्नी ज़मींदार के घर आई थी तो यह तय हुआ था कि कर्ज के पैसे वापस करते ही वह पत्नी को घर वापस ले आएगा। लेकिन ऐसा हो ही नहीं पाया। आज भी तामि के हाथ ख़ाली हैं। दो हज़ार रूपये का कर्ज़ लिया था उसने। दो हज़ार रूपये वह कहां से लाए? और उसका ब्याज? वह तो उसे मालूम भी नहीं कि कितना हो गया होगा। फिर भी वह ज़मीदार से पूछना चाहता है कि क्या एक हफ्ते के लिये वह अपनी पत्नी को घर ले जा सकता है? वह इस तरह की ज़िन्दग़ी से तंग आ गया है।

बाहर खड़े हुए तामि अंदर देख सकता है। पूर्व के द्वार के भीतर अंधेरा है। अंधेरे के अंदर से मालकिन बाहर आई और तामि को खड़े देख कर पूछा,
"तामि, यहां कैसे खड़े हो?"
"ऐसे ही मालकिन।"
"तुम्हें गाभिन नंदिनी गाय दी थी। सुना है हफ्ते भर पहले ब्याई है।उसको वापस कब कर रहे हो?"
"दो दिन बाद वैद्य ने एक दवा देने को कहा है, उसके बाद नंदिनी को वापस कर दूंगा।" तामि ने जवाब दिया।
"उसे जल्दी वापस कर दो। हर किसी को दूध चाहिये।"
"ठीक है, मालकिन।"

इसके बाद भी तामि खड़ा ही रहा।
मालकिन ने पूछा, "अब क्या चाहिये?"
तामि कुछ नहीं बोला। मुंह झुका कर सिर खुजाने लगा।
मालकिन ने पूछा, "बोलो तामि क्या बात है?"
"हुजूर मैने लक्ष्मी के बारे में मालिक से कहा था....
यह सुनते ही मालकिन मुँह फुला कर बिना कुछ जवाब दिये अंदर चली गयी। तामि ने उसे घर के अंधेरे में गुम होते हुए देखा। हर रोज वह तामि और उसकी बेटी के लिये खाने का कुछ सामान देती है लेकिन आज उसने वह भी नहीं दिया।

अब तामि क्या करे? क्या वापस घर लौट जाए? सुलू मां के बारे में पूछेगी तो वह क्या जवाब देगा? फिर किसी और दिन का वायदा करना होगा... यह सोचते हुए तामि भारी कदमों से धीरे धीरे घर लौट पडा।

हवेली की दूसरी मंज़िल से दो आंखें घने पेड़ों के बीच से गुज़रते हुए तामि का पीछा करती हैं — जब तक वह आंखों से ओझल नहीं हो जाता। इसके बाद लक्ष्मी नीचे आकर दोपहर के भोजन के लिये ज़मींदार की प्रतीक्षा करती है। पान में लौंग, इलायची, कत्था, चूना सजा कर बीड़ा बनाती है। उसे करीने से पीतल की थाली में सजाती है। बिस्तर की चादर बदलती है। तकिये का खोल बदल कर उसे ठीक से लगाती है। कपड़े बदल कर सजती-संवरती है और गुलाबजल से सुवासित होकर ज़मींदार की प्रतीक्षा करती है।

कभी वह खिड़की पर खड़ी होती है कभी फर्श पर बैठती है कभी खेत की ओर पेड़ों को देखती है और कुछ विचार उसके मन को मथने लगते हैं — अभी तक उसका पति घर पहुंच गया होगा... सुलू ने अपनी मां के बारे में पूछा होगा... तामि ने फिर से अगली बार का वायदा किया होगा...फिर सुलू ने क्या जवाब दिया होगा?

खट...खट...खट...

लक्ष्मी खड़ी हो जाती है। पदचाप नज़दीक आती है। दरवाज़ा खुला है। ज़मींदार आता है और दरवाज़ा बंद कर के सिटकनी चढ़ा देता है। वेष्टि को उतार कर खूंटी पर टांग देता है और स्नान करने चला जाता है।

लक्ष्मी पलंग के पायताने बैठ कर पान बना रही है। ज़मीदार कहता है, "तामि आया था।" लक्ष्मी चुप रहती है।
"तुम्हें पता है वह किस लिये आया था?"
"हूँ।"
"तुम सोचती हो मैं तुम्हें भेज दूँगा?"
लक्ष्मी चुपचाप ज़मींदार के सीने पर हाथ फेरती है। उसकी श्यामल उंगलियां ज़मींदार के गोरे सीने पर बालों को सहलाती हैं। वह लक्ष्मी को आलिंगन में लेते हुए पास बैठने की जगह बनाता है। लक्ष्मी को पान की सुगंध पसंद है। पान के साथ मिली जुली ज़मींदार के शरीर की गंध लक्ष्मी को आकर्षित करती है। लक्ष्मी के कोमल शरीर का स्पर्श करते हुए वह पान का रस निगल कर कहता है — "तुम्हें मालूम है मैने तामि को 2000 रूपये दिये हैं।"
"हूँ" – लक्ष्मी सिर्फ इतना ही बोलती है।

ज़मींदार को यही पसंद है। ऐसा न करने पर वह नाराज़ हो सकते हैं। पर इस समय वह हुंकारी देना भूल गयी। इसके दिमाग में पुराना दृष्य घूमने लगा है। हवेली के बाहरी आंगन में वह तामि के पीछे डरती हुई खड़ी है। ज़मींदार दूसरी मंजिल के जंगले को छोड़ कर नीचे आता है और लक्ष्मी से पूछता है मेरी बात तुम्हें याद है। लक्ष्मी कहती है, "हूं।"

"जब तुम दो हज़ार रूपये ब्याज के साथ वापस करोगे उसे समय इसे वापस ले जाना।"
तामि ने अपने कंधे पर गमछे को ठीक करते हुए, धोती के छोर से मुंह को ढ़ंकते हुए सिर झुका कर कहा था, "जी हुजूर"
फिर उसने लक्ष्मी से पूछा था, "तुम्हारा नाम क्या है?"
"लक्ष्मी", उसने कहा था।
ठीक है, दक्षिण में रसोई के पास जाओ वहां मालकिन होगी।"

लक्ष्मी के लिये माहौल परिचित था। धान कूटना, उड़ाना, अनेक नौकर नौकरानियां इस काम में लगे हुए – लेकिन इस समय उसकी परिस्थिति अलग थी। वह मजदूरी करने नहीं आई थी बंधुआ थी। उसे उनकी हुंकारें उनके चेहरे और हाव भाव रूचिकर नहीं लगे। न ही उन लोगों को लक्ष्मी का इस प्रकार आना अच्छा लगा। दोपहर में वह अन्य महिलाओं के साथ भात और कांजी खाने बैठी। शाम के समय सभी कामगार औरते अपनी दिहाड़ी लेकर चली गयीं। लक्ष्मी अकेली रह गयी। उसे पति और बेटी की याद आने लगी। अंधेरा धीरे धीरे घना हो रहा था। उसका मन दुख से भर गया और वह रोने लगी।

उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि इस रात में वह क्या करे। मालकिन का व्यवहार कठोर था पशु के समान। लक्ष्मी ने सुना मालकिन के रसोईघर में नौकरानी से बात कर रही थी। लक्ष्मी को मालूम है – उस नौकरानी का नाम माधवी है। छोटी खिड़की के पीछे रात का भोजन तैयार करते और आते जाते वे लोग लैंप के प्रकाश में दिखाई पड़ रहे थे।

इसी समय एक लालटेन का प्रकाश उसके आया। अब लालटेन ऊंची उठ कर ठीक उसके चेहरे के सामने थी — और ज़मींदार के चेहरे पर अनेक प्रश्न चिह्न। वह बिना कुछ बोले धीरे धीर दूर चला गया। थोड़ी देर में माधवी और मालकिन उसके पास आये। नौकरानी के हाथ में एक कटोरी में तेल, सुवासित साबुन, धोबी के धुले और इस्त्री किये कपड़ों का एक जोड़ा था। लक्ष्मी नौकरानी के साथ तालाब पर चली गयी।

नहाने के बाद वह अच्छे कपड़े पहन कर घर लौटी थी। रसोईघर में उसे अच्छा खाना दिया गया था। उस समय नौकरानी का व्यवहार बेहतर था। उसे याद आया कि दोपहर में कांजी और चावल देते समय उसका व्यवहार कितना कठोर था। इस समय मालकिन का व्यवहार भी दयापूर्ण था।

आज इस समय वह ज़मीदार के कंधे पर लेटे लेटे सोंच रही है। किस तरह वह ओखलवाले कमरे से रसोईघर और रसोई घर से सीढ़ियां चढ़कर ऊपर ज़मीदार के शयनकक्ष तक पहुंच गयी है। दिन...महीने...साल...धीरे-धीरे बीतते गये हैं। वह धीरे-धीरे इस माहौल की अभ्यस्त हुई है। उसे यह भी नहीं याद कि वह कौन है। कभी कभी उसे अनुभव होता है — मेरा पति, मेरी बेटी, मेरा घर मेरा इंतज़ार कर रहे हैं । क्या उसके जीवन का कोई अर्थ है?
"हूँ ।" अचानक उस तंद्रा से आकर वह जवाब देती है, "मैं अपनी बेटी को देखना चाहती हूँ।"
"हूँ ", एक भारी आवाज़ के साथ ज़मींदार हामी भरता है।

अगली सुबह रसोईघर में लक्ष्मी ज़मीदार के लिये चाय बनाते समय मालकिन ने बताया, "आज तुम्हारी बेटी आएगी। "
"अच्छा", वह कहती है।
"ज़मींदार ने तुम्हें नहीं बताया?"
"नहीं मालकिन।"
"तामि को किसी से संदेश भेजा था।"

बेटी से मिले बिना बहुत समय बीत गये — दो साल या तीन साल। सालों का गणित भी वह भूल गयी है। मेरी बेटी बड़ी हो गयी होगी।

लक्ष्मी चाय लेकर ज़मींदार के कमरे में चली गयी। ज़मींदार उठ कर लक्ष्मी के इंतज़ार में बैठा था उसने सिरहाने तकिया लगा कर पीठ को पीछे टिका दिया। पैरों को सीधा किया और सामने फैला दिया। लक्ष्मी उसके पायताने बैठ गयी।
"मेरी बेटी को बुलाया है?" लक्ष्मी के प्रश्न में कृतज्ञता है।

"हूँ", भारी आवाज़ के साथ ज़मींदार ने काहा। वह सुबह आएगी और दोपहर बाद वापस चली जाएगी।"
"ठीक है।" लक्ष्मी ने जवाब दिया।
"तुम्हारी बेटी को देने के लिये मैने नौकर से दो फ्राक मंगवाए हैं।"
"अच्छा।" वह प्रसन्नता और संतोष से ज़मींदार को देखती है।
"तुम जानती हो यह सब काम मैं क्यों करता हूं ?"
"हूं "
"क्यों ?"
"
...
"मैं तुमसे प्रेम करता हूं । यह तुम समझती हो और हर रोज़ मेरा ख्याल रखती हो।"
"हूँ।"

लक्ष्मी बेचैनी से इधर उधर टहलती है। गलियारों से कमरों और रसोई से होते हुए उसकी आंखें सीधे द्वार पर आ जाती हैं। द्वार के बाद सूर्य के प्रकाश में खुले खेत हैं। वह मन की आंखों से देखती है — एक छोटी लड़की सड़क पर उसकी ओर चली आ रही है। उसका मन करता है वह सीढ़ियां उतर कर नीचे आ जाए और बाहर जाकर प्रतीक्षा करे। पर वह ऐसा नहीं कर सकती। ज़मींदार की आज्ञा है कि वह बाहर न जाए। वह चारदीवारी के भीतर बने तालाब तक जा सकती है पर उसके बाहर नहीं। बाहरी आंगन में भी जाना मना है। तामि घर में काम करने के लिये वहां आता-जाता है उस समय भी बाहर निकलना या उससे मिलना लक्ष्मी के लिये मना है।

जब तामि खेत में काम करता है तब वह भीतर से उसे देख सकती है पर तामि उसे नहीं देख सकता।

वह फावड़े से ज़मीन खोदता है। थक कर फावड़े को बगल में रख कर सुस्ताता हुए हवेली की ओर देखता है – शायद किसी खिड़की से लक्ष्मी दिख जाए। पर वह उस समय जल्दी से अंदर चली जाती है। वह ज़मींदार से डरती है। ज़मीदार की क्रूरता की कहानियाँ उसने अनेक लोगों से सुनी हैं पर लक्ष्मी के सामने ज़मींदार हमेशा ही सदय बना रहा है।

जब भी ज़मींदार पैसे लाता है वह अंदर ही अंदर डरती है – क्या उसे यह सब छोड़ कर जाना होगा? इस समय वह शर्त उसे याद आती है। शर्त का क्या परिणाम होगा, यह उसे ठीक से मालूम नहीं। क्या तामि ने पैसे वापस कर दिये तो उसे यह सब छोड़ कर जाना होगा? क्या तामि पैसे वापस कर देगा? क्या तामि के पास इतने पैसे होंगे? इस समृद्धि में रहते हुए जब भी बेटी का भोला चेहरा याद आता है उसे यह सब निरर्थक लगने लगता है।

नौकर ने रसोई के दरवाज़े से लक्ष्मी को पुकारा और एक पैकेट थमाया। लक्ष्मी ने पैकेट खोले — दो सुंदर फ्राकें। एक छोटे लाल फूलों वाली नीली फ्राक और दूसरी पीली हरी नाशपातियों वाली। साथ में दो चड्डियाँ। उसके ख्याल में आया इन्हें पहन कर सुलू कितनी सुंदर लगेगी। सुलू ने आजतक इतनी सुन्दर फ्राकें कभी नहीं पहनीं।

तामि सुलू को लेकर पूर्व के रसोईघर की ओर पहुँच गया। माधवी सुलू को लेकर अंदर आ रही है। लक्ष्मी उन्हें देखकर आंसू नहीं रोक पाती। कितना दुख है उसे – मैं अपनी बेटी का चेहरा तक भूल गयी।

सुलू आश्चर्य से अपरिचित लोगों को देखने लगी। यह उसकी मां नहीं हो सकती। उसकी नज़रें मां को इधर उधर ढूँढने लगीं। लक्ष्मी ने पुकारा, "बेटी, इधर आओ" और सुलू को अपनी गोद में बैठा लिया। सुलू आश्चर्य से लक्ष्मी को देखने लगी। सोचने लगी – यह अच्छे कपड़े पहनने वाली, तेल और साबुन से महकने वाली औरत कौन है? उसने ऐसी ठाठदार औरत पहले कभी नहीं देखी। उसी समय मालकिन ने अंदर से आकर लक्ष्मी से पूछा, "तुम्हारी बेटी आई?"

सुलू डर गयी। उसकी मां कहां है? उसे यह औरत नहीं चाहिये सिर्फ अपनी मां चाहिये। उसे वहां खाने की अच्छी अच्छी चीज़ें मिलीं पर खाते हुए भी वह यही सोचती रही – ये सब कौन हैं? मेरी मां कहां है? खाने के बाद लक्ष्मी ने सुलू को तेल लगा कर नहला दिया। और अच्छी फ्राक पहनाते हुए बोली, "देखो सुलू मां तुम्हारे लिये नयी फ्राक लायी है।"

सुलू यह सुन कर खुश हो गयी, पर उसकी मां है कहां? नयी फ्राक पहने हुए भी उसकी आंखें मां को ही खोजती रहीं। पूछते हुए उसे डर लगा। वह किससे पूछे कि मेरी मां कहां है?

शाम का सूरज ढलते ही मुण्डियान खेत के साये लंबे होने लगे। खेत के सामने कारकुन्न पहाड़ है। इस समय इसके पेड़ों पर चिड़ियाँ लौटने लगीं। धान कूटने वाली औरतें भी घर जाने लगीं। खेत के बीच बने झोपड़ों में रोशनी जल गयी है। मजदूरों ने सूखी पत्तियों को इकट्ठा कर के आग लगा दी है। अंधेरे में धुएं के इस ओर खड़ा तामि सुलू का इंतज़ार कर रहा है।

नौकर तामि से बातें करने लगता है।
"ज़मींदार ने सुलू के लिये दो फ्राक मंगवाए हैं। तुम्हारी पत्नी किस्मत वाली है। वह यहां आराम से है। उसे वापस मत बुलाओ। बाद में तुम्हारी बेटी भी यहीं आ जाएगी।"
तामि कोई जवाब नहीं देता। सिर्फ सोचता है – मैं क्या कहूँ। दो हज़ार रूपये और उसका ब्याज मैं कैसे चुकाऊंगा। न मैं कभी पैसे चुका पाऊँगा न कभी लक्ष्मी लौटेगी।

खेतों के बीच बनी मेड़ों पर से गुज़रते नौकर नौकरानियों के बीच उसे एक नौकरानी के साथ सुलू दिखाई दी। वह ज़ोर ज़ोर से बातें कर रही थी। दौड़ कर पास आई। तामि ने उसे गोद में उठा लिया। नौकरानी ने एक छोटी थैली में दो फ्राकें तामि को पकड़ा दीं, बोली, "तुम्हारी बेटी के लिये उपहार में दी हैं।"

तामि ने सुलू को चूमा और पूछा, "मां को देखा?"
"मां?" सुलू आश्चर्य से बोली। "मैने मां को नहीं देखा।"
"ज़मींदार के घर में कौन थीं?"
"वहां? एक गोरी मालकिन और एक सांवली मालकिन। फिर ज़रा सा रूक कर बोली, "वह सांवली मालकिन बहुत अच्छी है। उसने मुझे यह फ्राक दी।"
"वह तुम्हारी मां है।"
"नहीं, वह मेरी मां नहीं है। वह ज़मींदारिन है। सांवली मालकिन।" और सुलू चुप हो गयी। कुछ सोचने लगी।

तामि दिया जला रहा है।दीपक की रोशनी में सुलू का छोटा सा चेहरा चमक रहा है। इस समय भी सुलू कुछ सोच रही है। बहुत सी बातें सुलू के छोटे से दिल में बार बार आ रही हैं। वह सोच रही है कि यह सांवली मालकिन कौन है...वह मुझे प्यार क्यों करती है...वह मेरे लिये फ्राक क्यों खरीद कर लायी...इन सवालों के जवाब सुलू को नहीं मालूम। वह धीरे से पुकारती है, "अप्पा..."
"क्या है बेटी... ?"
"मेरी मां कब आएगी?"

शिशिर की शारिका — बी मुरली

पवित्रन ने सिर उठाकर देखा तो खिड़की की सलाख पर एक चिड़िया आ बैठी है। उसके पंख बहुरंगी हैं, पलकें भी! तालबद्ध गति से बहती हवा चिड़िया के डैनों को जिस वक्त खोलती व समेटती है उस वक्त खिड़की की सलाख पर एक नन्हा सा इंद्रधनुष खिलता है। हवा में सूखा विरह है। चिड़िया बीच-बीच में हवा के झोंके में उलटकर पवित्रन के बिस्तर पर गिरना चाहती है। एक खूबसूरत चिड़िया के लिये उड़ना मुश्किल होगा। नन्हें पर अपने सारी खूबसूरती लिये हुये कैसे उड़ सकेंगे? हाय! खिड़की का शीशा और एक बार हवा में झूमकर आवे और उसे उछाल दे तो? पवित्रन ने बिजली की तेज़ी से खिड़की का शीशा सिटकिनी लगाकर जड़ दिया। चादर हटाई तो पूरे बदन पर मानों एक ठंडा कंबल आ पड़ा। बाहर घनी धुंध! सफेद सठियाती चादर जो कल तक नहीं थी।

पवित्रन के किसी कार्यक्रम ने चिड़िया का कुछ नहीं बिगाड़ा। वह आंख मूंदे बैठी रही। कोहरे से घर के भीतर आये पवित्रन ने उससे मौन वाणी में कुशल-समाचार पूछा। चिड़िया तो आंखें बंद किये बैठी थी।

पवित्रन अब चौके में चाय तैयार कर रहा है। सर्दियों की प्रभातवेला में स्टोव की आवाज में भी कोमलता है। गाढ़ी नीली लौ भी ठंडी है। कल सुबह खिड़की के बाहर का सबेरा जर्द पीला था। वो, हवा की हलकी सी किरच खिड़की के पर्दे को हटाती हुई पवित्रन को चूमती है।

जब परदा हटा तब चौके की खिड़की की सलाख पर भी एक चिड़िया। उतनी ही खूबसूरत! वही निःसंग भाव। स्टोव की लौ जब तेज होती है तब चिड़िया आंख खोलती है। वह एकदम मस्त है।

पवित्रन ने बिस्तर के नजदीक की खिड़की की तरफ नज़र दौड़ाई। आंखें बंद किये बैठी कल्पना की घनी शारिका उधर नहीं। वह मेरे समीप आकर बैठी है। 'वही चिड़िया–कोहरे से आई मेहमान'– पवित्रन ने सोचा।

धीमी लौ की स्टोव पर चाय को छोड़कर पवित्रन दातून करने लगता है। पंछी ने सिर और कुछ भीतर घुसाकर ऐसी ध्वनि सुनाई जो आसमान से आती सी महसूस हुई। पवित्रन हंस पड़ा।
झाग–भरे मुंह से बोला – "तेरी मेज़बान यहां नहीं हैं। तू चाहे इस मुल्क की न हो, तो भी उसके लिये तू एक हीरोइन बनती।"

चिड़िया ने चूं तक नहीं किया। आगे पवित्रन ऑमलेट तैयार करने लगा तो चिड़िया बाहर उड़ गई। किस क्षण चिड़िया उड़ी? यह पवित्रन ने नहीं देखा। अंडा फोड़ने पर क्या चिड़िया ने अपना एतराज़ जाहिर किया? मगर पवित्रन को लगा कि वह चिड़िया दूसरे दिन सुबह भी आयेगी।

धत! ऑमलेट की तैयारी शुरू कर चुका पवित्रन ने सोचा। अब इसमें कोई मज़ा नहीं। अंडे का पीला हिस्सा दूसरी चीजों से मिलकर जमने लगा।

यह प्रविधि पक्षियों की अनुगामिनी मेरी शोध–कर्मी को सबसे घृणाजनक लगती थी। पवित्रन को याद आया। सुनंदा हल्ला मचाती। आलस छोड़ मिक्सी चलानी चाहिये। अच्छी कसरत भी हो जायेगी। चिड़िया का अंडा फोड़कर खाते भूख नहीं मिटाते – सुनंदा कहती।

"तुम्हें बिदा करने के बाद ही कुछ अंडे खरीदने का इन्तज़ाम करना है" – पवित्रन सुनंदा को चिढ़ाता।

गत सप्ताह सबेरे आठ बजे की धूप की तरफ देखते हुये सुनंदा बोली – "बताओ पवित्रन, अगले हफ्ते चलूं? थीसिस पूरा करना है। इस दिसम्बर में भी न दूं तो बाद में बड़ी देर हो जायेगी।" उसने बातें जारी रखीं – "बाज़ आई तुम्हारे शहर से। अपने हिल स्टेशन की गाड़ी पकडूंगी। एक काम करो। एक महीने के लिये फरार हो जाओ। वहां सरदियां शुरू हो रही हैं।"
पवित्रन ने कहा – "तुम अकेले जा सकती हो। एक काम करेंगे। आज जाकर टिकट का आरक्षण करें। नहीं तो तुम्हें सफर में तकलीफ होगी। तुम्हारे जाने के बाद मुझे कुछ प्रोजेक्ट पूरे करने हैं। तुम्हारे बंजर टीले पर मेरी योजनायें नहीं चलेंगी।"

रेलवे स्टेशन जाते समय बाइक के आगे म्युनिसिपल लारी सरक रही थी। किसी तरह उससे कतराकर आगे पहुंचा तो एक आटो रिक्शा रास्ता रोक रहा था। धूल, कोयले के टुकड़े और काले धुएं से भरा आसमान। आकाश पवित्रन के मस्तिष्क में पैठ गया। पवित्रन मुड़कर सुनंदा को देखने से डरता था। जब पसीने की बूंदें पलकों को भीगोने लगीं तब उसने आइसक्रीम दुकान के सामने बाइक रोकी। एक कौए को जूठन कुतरकर खाते देख सुनंदा रो पड़ी। कहीं चश्मा न रखने से तो ऐसा लगा तो नहीं? बाहर पान वाले से पवित्रन ने सिगरेट खरीदी। सुनंदा ने पूछा – "क्या कार्बन मोणोक्सैड से जी नहीं भरा?"

आइसक्रीम पार्लर में एक पिंजड़ा, तोता और अक्वेरियम। मगर पवित्रन को झटपट बाहर निकलना था। सुनंदा को एक तमिल फिल्म! फिर पूरी शाम आफिस का मामला! रात तक डिस्कशन चलेगा। एस्टाबलिसमेंट में कुछ घाघ हैं। उनका घमंड चूर करना होगा। उसके बाद पार्टी।

सुनंदा का रेलवे टिकट, तमिल फिल्म, चर्चा, बदला, पार्टी।

तब तक पवित्रन अनजाने ही ऑमलेट उदरसात कर चुका था। चाय हाथ में लेने लगा तो दीवार की घड़ी बजी। बड़े सवेरे से बजने का प्रोग्राम करके रखा था। वह छः दफे बजी। छः बजे।

पवित्रन दंग रह गया। बड़े सबेरे का मतलब उसके शब्दकोश में आठ बजे हैं। छः बजे का राज़ क्या है? एकाएक पवित्रन को याद आया। एक धूंधले सपने में एक ठंडी चादर आ पड़ी और सिहरन लाई। बाहर की तरफ देखा। देखा कि वहां कहीं इंद्रधनुष का टुकड़ा तो नहीं। फिर आराम कुर्सी पर पसर गया और सिगरेट का धुआं बाहर की तरफ उड़ाते हुये एक ठंडे हिल स्टेशन के बारे में सोचने लगा।

उस दिन आये सारे अखबारों को बाएं हाथ से एक तरफ हटाया। फिर एक स्पैरल पैड लेकर पहला पन्ना फाड़कर फेंक दिया। और एक अच्छा पन्ना निकाला। फिर अटैची से बेडयूल डायरी निकाली। काफी देर तक घटा जोड़ का हिसाब करने के बाद उसने अपने कार्यालय के योजना-संचालक को फोन पर बुलाया। ठीक एक महीने की छुट्टी का प्रबंध किया। सब कुछ ठीक आधे घंटे में खत्म।

फिर सिगरेट की खूंट ऐश-ट्रे में बुझाने के बाद पवित्रन ने धुंधले रंग के डोनाल्ड डक व डेयिसी के चित्र वाले पैड में एक नया शेड्यूल लिखना शुरू किया। हिल स्टेशन का टिकट आज ही खरीदना। सफर डेढ़ दिन का। वहां से सुनंदा के पक्षी-अनुसंधान शिविर को। इसी दिसम्बर में उसकी थीसिस पूरा करना कोई जरूरी बात नहीं है। दो तीन दिन उसकी चिड़ियों के साथ। उसके बाद उसके आगे सिर्फ बर्फ वाले उस स्वास्थ्य केन्द्र को। पूरा दिन हम बर्फ पर चलने का मज़ा लेंगे। कैंप फायर से दमकती रात! पहाड़ी पर चढ़ेंगे। एकोफेमिनिस्ट की (कृपया सुनंदा आपत्ति न करना तुम्हारी जैसी रमणी के लिये ये द्विनाम सुन्दर लगते हैं) चिड़ियों के साथ जितना समय चाहो, उड़ेंगे।

आधा घंटा और बीता। पवित्रन पत्रिकाएं पढ़ने लगा। प्रथम दोनों समाचार-पत्र सरसरी निगाह से देखे। मॉडलों पर एक ग्लॉसी पृष्ठ बाद में पढ़ने के लिये अलमारी के भीतर घुसेड़ दिया। कांग्रेस में समस्या बड़ी टेढ़ी है। इंग्लैंड के टूर से कांबले और। सबके नीचे आज की डाक है। पवित्रन को याद आया - आज डाक खोलने की फुरसत नहीं मिली थी। एल•आई •सी• पॉलिसी की रसीद, मद्रास के क्लाइंट की भद्दी एंब्लमवाली एक चिट्ठी, कोरियर से तीन खत, मोटे लिफाफे में, बिसनिस अडमिनिस्ट्रेशन की नई डींगे होंगी।

पवित्रन का ध्यान बरबस खींचते हुये बीच में सुनंदा गिरती है। हे भगवान! कल मैंने यह पत्र नहीं देखा। पवित्रन पढ़ता है - "आपके यहां बरफ गिरना शुरू नहीं हुआ होगा न? यहां बरफ खूब छाने लगा है। कल हवा के झोंके ने हमारी खिड़की का पर्दा फाड़ डाला। यहां दिसम्बर में हिमकण बरसते रहेंगे। सब पत्तों पर दोपहर तक सफेद झाग रहेगा। (सॉरी, यहां दोपहर ही नहीं होती) सवाल कुछ और है। मैं थीसिस बढ़ा रही हूं (पवित्रन - हम एक ही तरह सोचते हैं)। बात यह है कि यहां से करीब पचास किलोमीटर दूर हमारा अड्वेंचर स्पाट है। पचास प्रवासी पक्षी हमारी तलाश में वहां की सैंक्च्वरी में आये हैं। कई दुर्लभ पंछी और भी हैं। हमारे अपने सलीम अली बड़े ही उत्साहित हैं। मेरी थीसिस की रूपरेखा ही शायद बदल जाये। पवित्रन, आप जानते हो कि हमारे वज़देहात में फोन नहीं मिलेगा। लिखने पर भी संदेश मिलने में विलंब होगा। तो एक मास बाद इस पहाड़ी से उतरकर आऊंगी, तब मिलेंगे। प्रोजेक्ट का क्या हाल है? गुड लक।" पवित्रन हल्की सी मुस्कराहट के साथ चादर के भीतर घुस जाता है। बाहर आकाश में जमे हुये बर्फ के पिघलने में दोपहर तक समय है!

गाड़ी पर नाव गोविंद झा

कभी नाव पर गाड़ी कभी गाड़ी पर नाव । कहावत तो बहुत दिनों से सुनता था लेकिन दोनों मे से कोई भी देखा कभी नहीं । संयोगवश पहली बार देखा एक भारी भरकम नाव एक जर्जर बैलगाड़ी पर लदी हुई। ठीक वैसा ही एक जोड़ा बैल कच्ची सड़क पर जी जान लगाकर गाड़ी खीचता हुआ और वैसा ही बहलमान बैलों की मांसहीन पीठ पर सटासट छड़ी पटकता हुआ ।

बैलों की दशा पर मुझे दया आ गई । बहलमान से कहा, "अरे ओ, इस मूक जानवर को ऐसे क्यों मार रहे हो । सड़क के किनारे किनारे पानी जमा है । नाव को उसी में तैरा दो और रस्सी से खीचकर ले जाओ।"

"देखते नहीं नाव कैसा टूटा फूटा है । सरकारी रिलीफ का है । काम तो कुछ हुआ नहीं और बेकार में इधर से उधर पहुंचाते रहो।"

मैं भौंचक्का सा उसका उसका समर्थन करता हुआ बोला, "हाँ, वो तो ठीक है क्या होगा ऐसे नाव का । लेकिन इस बूढ़े बैल को ऐसे मत मारो । दया नहीं आती तुमको?"

"दया तो हमको भी वैसी ही आती है जैसे आपको लेकिन पेट को दया आये तब तो? सचमुच बहुत बूढ़े हो गये हैं दोनों। मन तो होता है 'रिटेर' कर दें दोनो को 'पिनसिल' दे दें और कहें मजे करो, उसने थोड़ा दम लिया और फिर से कहने लगा, "हम तो सचमुच इनको आज न कल 'पिनसिल' दे देंगे लेकिन हम भी तो बूढ़े हुए हमको कौन देगा पिनसिल? बेइमनमा बी डी ओ कहता है, तुमको नहीं मिलेगा पिनसिल तुमको बेटा है। बाह रे बेटा! जिसको खुद औरत का बदन झांपने के लिए एक बित्ता कपड़ा नहीं जुड़ाता है वो कैसे उठायेगा हमारे पेट का बोझ । आप ही बताइये।"

बेटे के लिये उसका यह उपहास मुझे अच्छा नहीं लगा । मैने समझाया बेटे के लिये ऐसे मत कहो कुछ मुसीबत आने पर बेटा ही तो काम आयेगा ।

मेरा यह उपदेश शायद उसको अच्छा लगा । इतने से ही मुझे लगा कि आदमी समझदार है । वह जैसी रोचक और तर्क पूर्ण बातें कर रहा था वैसा पढ़े लिखे लोग भी कम ही करते हैं । काफी रास्ता मैने उसकी ऐसी ही बातों में तय कर लिया ।

अरे रे! ये मैं कैसी बातों में फंस गया। सुनाना था कुछ और सुनाने लगा कुछ। जो न करें गिरिधर काका, जहां कुछ याद करने लगूं कि वही टपक पड़ते हैं । खैर तो लीजिये सुनिये उनकी ही कहानी ।

मध्यमा में पढ़ता था । एक दिन गुरूजी के सामने गिरिधर काका की चर्चा चली । गुरूजी ने कहा, "वो तो बिना पढ़े ही महापंडित हैं।"

"बिना पढ़े ही ? "

"हाँ बिना पढ़े ही। उन्होंने पाणिनीय व्याकरण के कोने–कोने से विकट शंकाओं को जमा कर रखा है और उसी से न जाने कैसे कैसे महापंडितों को पछाड़ देते हैं । विद्यार्थी तो उनको देखते ही कन्नी काट जाते हैं।"

सुनते ही मै सर खुजाने लगा । अभिमान जाग उठा । निश्चय किया कि इस पंडित पछाड़ पंडित की थाह लेनी चाहिये । चट से उपस्थित हुआ काका के समक्ष । क्षण भर औपचारिकता का निर्वाह कर उन्होनें चढ़ा दिया मुझे अपने सवालों की सूली पर । उनके विकट शंका का समाधान तो मैं नही कर सका परंतु जितना ही कहा उतने से ही वे हमारे प्रति स्नेहाद्र हो गये । मुझे भी उनका सान्निध्य अच्छा लगने लगा । थे तो वे मुझसे दस बारह साल बड़े लेकिन उनमें एक अदभुत

कौशल था कि वे किसी से भी गप करते हुए अपनी उम्र भूलकर उसी की उम्र के हो जाते। इसी से मेरा जो मन होता बेधड़क उनसे पूछ डालता। एक दिन ऐसे ही पूछ बैठा, "काका आपने इतना ज्ञान अर्जित कर रखा है कि आप तो आसानी से आचार्य पास कर कहीं अच्छी नौकरी कर सकते हैं।"

उन्होंने थोड़े उत्तेजित स्वर में उत्तर दिया "अरे मेरे क्या पेट में आग लगी है जो मैं घर द्वार सर समाज छोड़ कर नौकरी के लिये भीख माँगता फिरूं ?"

मैं कुछ नहीं कह सका अर्थात कुछ कहना नहीं चाहता था । मेरी नज़र एक बार फिर से उनके कंधे पर रखे फटे हुए गमछे, कमर से घुटने तक शरीर को ढकने में असमर्थ पुरानी धोती, पारदर्शी छत वाले टाट के घर और जीर्ण दरवाज़े पर पड़ी। क्या काका इसी घर द्वार की रक्षा के लिये तब तक डटे रहेंगे जब तक उनका पेट न जलने लगे?

उनके इस जीवन दर्शन और जीवन शैली के महान प्रशंसक और घोर निंदक दोनो मौजूद थे । किसी के मुँह से सुना कि ऐसा विद्वान और ऐसा अभागा आदमी गिरिधर बाबू को छोड़कर दुनिया में कौन होगा। देखिये न कैसे विलक्षण और संस्कारी बेटे हैं दोनों लुकड़ी की रोशनी में पसीने से तर बतर पढ़ने में मगन हैं । बाहर पढेंगे कैसे लुकड़ी जो बुझ जायेगी । कौन इस अभागे से पूछेगा कि एक लालटेन क्यों नहीं ले देते !

इसके ठीक विपरीत काका ने कहा था देखो इसे कहते हैं विद्यार्थी । देह से टप–टप पसीना चू रहा है और सरस्वती को अर्घ्य चढ़ता जा रहा है । देख लेना लुकड़ी की रोशनी में पढ़ने वाले आगे बढते हैं या बिजली के पंखे के नीचे पढ़ने वाले। अरे पता है तुमको हमारे पितामह तो पतला जला जला कर भी पढ़े हैं और पितामही तो पतला जला कर ही सांझ देती थीं ।

मुझे यह समझ नहीं आया कि काका इस भीषण दरिद्रता का वर्णन किस प्रयोजन से कर रहे हैं। क्या दरिद्रता ही उनका आदर्श था और उसी से वे अपने को गौरवशाली समझते थे। इस प्रश्न का उत्तर काका को छोड़कर और कौन दे सकता है। मन तो हुआ कि पूछ लूँ दोनो सुपुत्रों से ही कि जैसे आपके पिता आपको देखकर गौरवान्वित हो रहे हैं वैसे तुम भी पिता की संयमशीलता पर गौरवान्वित हो कि नहीं। लेकिन अफ़सोस! कि इस सवाल का उत्तर देने की परिपक्वता तब तक इन दोनों बिचारों में नहीं थी। इसलिये हमारा यह प्रश्न भी अनत्तरित रह गया ।

काका का न पेट जला न उन्होंने गाँव छोड़ा। कदाचित उनका पेट लोहे का था इसलिये नहीं जला। लेकिन मेरा पेट तो निश्चय ही लोहे का नहीं था इसलिये जलने लगा और मुझे गाँव छोड़ना पड़ा। जब तक गाँव में था थोड़ी देर ही सही उनके पास अवश्य बैठता । उनके पास जा बैठता तो लगता जैसे किसी दूसरे लोक या दूसरे युग में पहुँच गया हूँ। मुझे यह युग यात्रा बड़ी अच्छी लगती थी। जग उठती थी वैसी ही संवेदनायें और स्फुरण जैसा शायद किसी पुरातत्वविद को पहली बार हड़प्पा के खंडहरों को देखने पर हुआ होगा । नौकरीवाला होने पर भी कभी–कभी गाँव आता था तो काका के खंडहर में एक बार अवश्य घूम आता था ।

एक बार गाँव आया तो एक युवक ने पैर छूकर प्रणाम किये और आगे आकर खड़ा हो गया । आँखें उठाकर देखा तो देखता हूँ कि छोटे परदे पर दिखााये जाने वाले विमल सूटिंग का मुस्कुराता हुआ मॉडल यहाँ कहाँ?

मॉडल खुद बोल उठा, "मुझे नहीं पहचाना होगा आपने. आपको याद होगा छः सात साल पहले मुझे लुकड़ी जलाकर पढ़ते देखा होगा । बाबूजी आपकी बहुत प्रशंसा करते रहते हैं । उन्होंने कहा है कि..."

"समझ गया, भेंट करने के लिये कहा है यही न?" मॉडल को विदा कर पीठ पर ही पहुँचा काका के घर। स्वागत में पिता पुत्र दोनो एक साथ खड़े थे। वाह क्या अदभुत कन्ट्रॉस्ट था! एक सूखी लकड़ी और दूसरा उसी लकड़ी की अनुपम मूर्ति ।

लड़का गया लड़कों की बैठक में, मैं बैठा काका के पास। बड़ी देर तक बातें हुई। सब सुनी सुनाई बातें, गाये हुए गीत । नयी थी तो सिर्फ एक छोटी सी घटना और मेरी भावुकता । बीच में काका ने कहा, "तुम त सहर में रहता है चाह त अवस्स्स पीता होगा । मँगा देते हैं एक कप।"

"कहाँ से मँगाइयेगा।"

"काहे ? अपने अँगना से । विलच्छन चाह बनाती है । जे पीता है ओही परसंसा करता है।"

"आप तो चाय नहीं पीते हैं ? तब किसके लिये बनता है ? "

"दूनू बेटा के लिये और उसके संगी के लिये । इ कएसे हो सकता है कि हम नहीं पियेंगें त हमारा बेटा सब भी नहीं पियेगा? अगर हमारा बेटा सब भी हमारे तरह हो जाएगा त अभी के टैम में काम कैसे चलेगा। जब हम चाह नहीं पीते थे त लोक कहता था कि किरपन है। अब देखिये कएसे बहता है चाह का धार । अरे महादेव को आक धतूरा चढ़ता है त कारतिक गनपति को भी ओही चढ़ेगा? किसको नहीं मालूम है कि गनेस को लडडू चाहबे करिये।"

काका ने जितना कहा उससे अधिक कह रहा था उनके कांधे पर का गमछा और बेटे का सूट । याद आ गई एक लकड़ी के मूर्ति बनाने वाले की । उससे पूछा था मैनें कैसे बनाते हो इतनी सुंदर मूति? उसने कहा था ः मूर्ति तो लकड़ी में छुपी होती है साहब बस उसका ध्यान करते हुए हम तो उसका फालतू हिस्सा हटा देते हैं बन जाती है मूर्ति खुद ब खुद । वैसी ही लकड़ी हैं हमारे काका जिनके अंतःकरण या अवचेतन में विमल सूटिंग का वो मॉडल समाहित था ।

काफी देर के बाद काकी ने दरवाज़ा खटखटा दिया। काका ने कहा "चाह इहाँ नही आता है। अँदर जाकर चाह पी लो। चाह में जूठ सूठ हो जाता है। छौंड़ा सब जे करे हम कएसे छोड़े अपना अचार-बिचार। आज कल कुछ कहने का जमाना नहीं है। अपने बचल रहें ओही बहुत है आ कि नहीं ? "

काका के आज्ञानुसार लड़कों की बैठक से चाय पीकर आ रहा था। पर रास्ते भर सोचता आया। काका की ये उदारता सहज है या विवशतामूलक? ठीक-ठीक उत्तर तो कोई मनोवैज्ञानिक ही दे सकता था। लेकिन फिर भी मैनें यही निष्कर्ष निकाला कि काका कोई काम विवशता में नहीं करते। प्रमाण है उनके कंधे पर का फटा हुआ गमछा। काका की धोती की खूँट में कम से कम एक सौ गमछा खरीदने के पैसे तो हमेशा रहते ही हैं।

तब कैसे कहा जा सकता है कि फटा हुआ गमछा इनकी विवशता का प्रमाण है।

गाँव में अजीब अजीब लोग मिल जायेंगे। एक महानुभाव कह रहे थे, "इ कंजूस पंडितजी बेटे पर आखिर इतना खर्च करते क्यों हैं ? एक लगाओ दुगना पाओ। इससे बढ़िया इनभेस्टमेन्ट क्या हो सकता है?"

मैने सुन लिया और हूँ कह दिया। लेकिन मन ही मन कहा गणेश का चूहा भले हाथी हो जाए या कार्तिक का मयूर हवाई जहाज़ हो जाए उससे हमारे भोला दानी को क्या? वे तो मन ही मन प्रसन्न ही होंगे बस इतना ही न।

साल पर साल बीतता गया और गाँव से मेरा संपर्क टूटता गया। लेकिन इस काल प्रवाह में ना तो मेरी काका के प्रति श्रद्धा में कमी आई और ना ही उनका स्नेह मुझसे कभी कम हुआ। उनसे अन्तिम मुलाकात यही कोई सात महीने पहले हुई थी। किसी खास काम से गाँव आना पड़ा था। काका को गाँव वाले कॉर्डलेस से मेरे आने की सूचना मिल चुकी थी। संदेशा पर संदेशा आने लगा— काका ने बुलाया है। मैं विदा ही हुआ था कि रास्ते में ही मेरे दो दोस्त मिल गये। एक मित्र ने पूछा, "कहाँ चले? दूसरे मित्र ने मेरा बिना इंतज़ार किये उसका उत्तार भी दे डाला, "और कहाँ बेटे वाले का दर्शन करने"।

शायद इसी की प्रतिक्रिया में मेरे कदम फिर काका के घर की ओर मुड़ चले और कदमों की चाल तेज़ हो गई । भर रास्ते सोचता रहा कैसे जाहिल हैं इस गाँव के लोग । एक बेटा डॉक्टर है दूसरा प्रोफेसर अगर फिर काका अपने बेटों की बड़ाई करते हैं तो उचित ही करते हैं । गाँव के लोगों की छाती क्यों जलती है ।

काका के यहाँ पहुँचा तो उनका घर आँगन देखकर लोगों की छाती जलना कुछ स्वाभाविक लगा। आधुनिक ढंग के बिस्कुटी रंग का भव्य मकान और उसके आगे सुंदर हरा भरा बागीचा देखकर याद आ गया एक गीत जो मेरी माँ गाया करती थी "अही ठाम रहे मोरी टुटली मड़ैया हे रामा" अर्थात हे भगवान यहीं तो थी मेरी टूटी सी झोपड़ी आज ये क्या हो गया है?

फाटक पर पहुँचा तो एक नेपाली छोकरे ने आकर मुझे सीधे काका के पास हाज़िर किया। काका दूर से ही मुझे देखकर आओ आओ करते हुए एक हाथ ज़मीन पर रोप कर उठने का प्रयास करने लगे, "अब त बिना सहारा के उठियो नहीं होता है।" यह कह कर मेरा हाथ पकड़ कर पास में बिठा लिया और अति संक्षिप्त औपचारिकता के बाद बिना किसी भूमिका के पूछ बैठे, "तुम हमारा एक ठो काज कर देगा।"

मैनें पूछा, "कोन काम?"

"सो हम वएसे नहीं कहेंग । पहिले सत्त करो तखन कहेंगे।"

उनके "सत्त करो" शब्द पर मुझे हँसी आ गई और याद आ गयी माँ के मुँह से सुनी हुई कई कहानियाँ। उस कथन के वागभंगी में मैनें सत्त किया, "एक सत्त दू सत्त तीन सत्त जो आपका कहा न करें तो अस्सी कोसी नरक में जाऊँ। अब तो कहेंगे।"

"कितने मास से इस कोठली में रहि रहि कर मोन उचटि गया है। तेरा काज इतना ही है जे बाँहि पकड़ के हमको ठरा कर दो अओर थोड़की दूर घुमा लाओ।" यह कहते हुए काका ने अपनी बाहें वैसे ही उठा लीं जैसे माँ की गोद में चढ़ने के लिये कोई एक साल का बच्चा करता हो। जब तक मैं कुछ और सोचूँ तब तक काका फिर बोले, "बस तुम खाली हमको डेंग धर के ठरा कर दो उसके बाद त हम अपने डेग बढ़ाते चलेंगे।"

फिर भी मैने सीढ़ियों से उतरने तक उनकी बाहें जकड़ी रखी । उसके बाद तो वे खुद ही कदम दर कदम चलने लगे ।

जब मैं उँची जगह उनकी बाहें पकड़ता तो कहते, "छोड़ो पकड़ने का जरूरत नहीं है । तुम खाली अपना कन्हा पर हाथ रखने दो । एक तरफ लाठी दोसर तरफ तेरा देह समझो कि हम गाड़िये पर हैं।"

सुनते ही सहसा मुझे याद हो आया गाड़ी पर नाव वाला वो समाँ । वास्तव में काका वे नाव हैं जिस पर चढ़-चढ़ कर दोनों बेटों ने दरिद्रता की नदी पार की थी और आज वह नाव जर्जर होकर किसी माँगी हुई गाड़ी पर लदी हुई है ।

"बूझा कि नहीं आज से तुम हमारा तेसर बेटा हो गया।" मन होता है अपना एक तेहाई राज तुमको दे दें। सब अपना अरजा हुआ है। जिसको चाहें दे सकते हैं।" यह कहकर काका खिलखिला कर हँसते हुए अपनी ही बात को उड़ा गए। फिर कहा, " इसलिये अब हमको रोज घुमाया करो।" फिर से एक छोटी खिलखिलाहट ।

मै अवाक हुआ क्षण भर इस अनुसंधान में लगा रहा कि इस खिलखिलाहट के पीछे किसी दुखती रग की वेदना है कि नहीं। कोई अता पता न चला। जब तक घूमते रहे काका कुछ न कुछ बोलते रहे। बहुत सी बातें की। अपनी तपस्या की बातें, अपने सुख सुविधा की बातें, बेटे की बातें, सारी प्रशंसा — गौरव और उल्लास से भरी हुई। कहीं कोई अभाव अभियोग नहीं अनुताप आक्रोश नहीं। सारी बातें सुनी सुनाइ ।

इसी तरह काका को घुमाने ले जाना और उनकी बातें सुनना मेरी दिनचर्या बन गई। कभी कभी किसी चौराहे या किसी के दलान इसी प्रकार बूढ़े लोगों का मजमा लग जाता और और बह्म–सूत्र से लेकर काम–सूत्र तक खुल्लम खुल्ला गप छिड़ जाती। ऐसी कहानियाँ तो यहाँ अप्रासंगिक होंगी लेकिन फिर भी ऐसे एक मजमे में सुनी हुई एक घटना सुनाता हूँ ।

सत्यनारायण की पूजा में किसी के घर गाँव भर के लोग जुटे हुये थे । गप के सिलसिले में किसी बूढ़े ने अपने बेटे के प्रति आक्रोश व्यक्त किया, हमको तो लगता है बेटा बेकार में जनमाया। बउआ कुछ कमाकर देगा सौख लगा रह गिया।" संयोगवश उनका कमाउ बेटा निमंत्रण पूरा करने के लिये उसी समय वहाँ आ पहुँचा । यह बात सुनकर चट से पूछ बैठा, "कहिये तऽ सच सच इ जो नया धोती पहने हुए हैं सो कोन दिया है। पिता ने थर थर काँपते हुये उसी समय धोती खोलकर बेटे के माथे पर पटक दिया और वहाँ से नंगे ही विदा हो गये।

काका यह घटना सुनकर हँसने के बजाए थोड़ा गंभीर होकर बोले, "वएसे हमारा बेटा सब तो अएसा नहीं है मुदा हम तो एही कहेंग कि बेटा को आम का गाछ नहीं समझकर उसको फूल का गाछ समझना चाहिये। "

छुट्टी समाप्त हो चली थी। लगातार नौ दिन काका को घुमाने ले जाता रहा और उनका प्रवचन सुनता रहा। लेकिन एक शंका मन में रह ही गई। इस तरह धन जन परिपूर्ण काका का ऐसा कोई नहीं है जो उन्हें थोड़ी देर भी घुमा फिरा सके। यह शंका संकोचवश नौ दिनों तक दबाकर रखी थी मैंने। अन्त में साहस कर आज पूछ ही बैठा । काका खिलखिला उठे हाथ पकड़ कर बोले, "तुम खुद नहीं समझता है। डॉक्टर साहब को पेसेंट घेरे रहता है परफेसर साहब के चेला–चटिया से छुटटी नहीं मिलता है आ धिया पुता को किरकेट और टयूटर से फुरसत नहीं होता है । तब तुमही बताओ..."

इतने से भी समाधान नहीं हुआ। मैने फिर से पूछा, "एक बहादुर भी तो है । उसको क्यों नहीं संग ले लेते?"

काका का उत्तर था, "ओ तो उस समय डाक्टर साहेब के कुकुर को टहलाता है । बड़ी सुंदर कुकुर है। डाक्टर साहेब को तो बेटा से बढ़ि कर है।"

मैने मन ही मन कहा, "हूंह, बाप से भी ज्यादा!"

दसवें दिन उनकी गाड़ी गाँव से विदा हो गई और वह जर्जर नाव वहीं अचल पडी रही । क्या पता कोई दूसरी गाड़ी मिलेगी भी कि नहीं ।

विक्रमोर्वशी कालिदास

एक बार देवलोक की परम सुंदरी अप्सरा उर्वशी अपनी सखियों के साथ कुबेर के भवन से लौट रही थी। मार्ग में केशी दैत्य ने उन्हें देख लिया और तब उसे उसकी सखी चित्रलेखा सहित वह बीच रास्ते से ही पकड़ कर ले गया। यह देखकर दूसरी अप्सराएं सहायता के लिए पुकारने लगीं, "आर्यो! जो कोई भी देवताओं का मित्र हो और आकाश में आ–जा सके, वह आकर हमारी रक्षा करें।" उसी समय प्रतिष्ठान देश के राजा पुरूरवा भगवान् सूर्य की उपासना करके उधर से लौट रहे थे। उन्होंने यह करूण पुकार सुनी तो तुरंत अप्सराओं के पास जा पहुंचे। उन्हें ढाढ़स बंधाया और जिस ओर वह दुष्ट दैत्य उर्वशी को ले गया था, उसी ओर अपना रथ हांकने की आज्ञा दी। अप्सराएं जानती थीं कि पुरूरवा चंद्रवंश के प्रतापी राजा है और जब–जब देवताओं की विजय के लिए युद्ध करना होता है तब–तब इंद्र इन्हींको, बड़े आदर के साथ बुलाकर अपना सेनापति बनाते हैं।

इस बात से उन्हें बड़ा संतोष हुआ और वे उत्सुकता से उनके लौटने की राह देखने लगी। उधर राजा पुरूरवा ने बहुत शीघ्र

ही राक्षसों को मार भगाया और उर्वशी को लेकर वह अप्सराओं की ओर लौट चले। रास्ते में जब उर्वशी को होश आया और उसे पता लगा कि वह राक्षसों की कैद से छूट गई है, तो वह समझी कि यह काम इंद्र का है। परंतु चित्रलेखा ने उसे बताया कि वह राजा पुरूरवा की कृपा से मुक्त हुई है। यह सुनकर उर्वशी ने सहसा राजा की ओर देखा, उसक मन पुलक उठा। राजा भी इस अनोखे रूप को देखकर मन-ही-मन उसे सराहने लगे

अप्सराएं उर्वशी को फिर से अपने बीच में पाकर बड़ी प्रसन्न हुई और गदगद होकर राजा के लिए मंगल कामना करने लगीं, "महाराज सैंकड़ों कल्पों तक पृथ्वी का पालन करते रहें।" इसी समय गंधर्वराज चित्ररथ वहां आ पहुंचे। उन्होंने बताया कि जब इंद्र को नारद से इस दुर्घटना का पता लगा, तो उन्होंने गंधर्वों की सेना को आज्ञा दी, "तुरंत जाकर उर्वशी को छुड़ा लाओ।" वे चले लेकिन मार्ग में ही चारण मिल गये, जो राजा पुरूरवा की विजय के गीत गा रहे थे। इसलिए वह भी उधर चले आये। पुरूरवा और चित्ररथ पुराने मित्र थे। बड़े प्रेम से मिले। चित्ररथ ने उनसे कहा, "अब आप उर्वशी को लेकर हमारे साथ देवराज इंद्र के पास चलिए। सचमुच आपने उनका बड़ा भरी उपकार किया है।" लेकिन विजयी राजा ने इस बात को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने इसे इंद्र की कृपा ही माना। बोले, "मित्र! इस समय तो मैं देवराज इंद्र के दर्शन नहीं कर सकूंगा। इसलिए आप ही इन्हें स्वामी के पास पहुंचा आइए।"

चलते समय लाज के कारण उर्वशी राजा से विदा नहीं मांग सकी। उसकी आज्ञा से चित्रलेखा को ही यह काम करना पड़ा, "महाराज! उर्वशी कहती है कि महाराज की आज्ञा से मैं उनकी कीर्ति को अपनी सखी बनाकर इंद्रलोक ले जाना चाहती हूं।" राजा ने उत्तर दिया, "जाइए, परंतु फिर दर्शन अवश्य दीजिए।"

उर्वशी जा रही थी, पर उसका मन उसे पीछे खींच रहा था। मानो उसकी सहायता करने के लिए ही उसकी वैजयंती की माला लता में उलझ गई। उसने चित्रलेखा से सहायता की प्रार्थना की और अपने आप पीछे मुड़कर राजा की ओर देखने लगी।

चित्रलेखा सब कुछ समझती थी। बोली, "यह तो छूटती नहीं दिखाई देती , फिर भी कोशिश कर देखती हूं।" उर्वशी ने हंसते हुए कहा, "प्यारी सखी। अपने ये शब्द याद रखना। भूलना मत।"

राजा का मन भी उधर ही लगा हुआ था। जब-तक वे सब उड़ न गई; तब तक वह उधर ही देखते रहे। उसके बाद बरबस रथ पर चढ़कर वह भी अपनी राजधानी की ओर लौट गए।

महाराज राजधानी लौट तो आये; पर मन उसका किसी काम में नहीं लगता था। वह अनमने-से रहते थे। उनकी रानी ने भी, जो काशीनरेश की कन्या थी, इस उदासी को देखा और अपनी दासी को आज्ञा दी कि वह राजा के मित्र विदूषक माणवक से इस उदासी का कारण पूछकर आये। दासी का नाम निपुणिका था। वह अपने काम में भी निपुण थी। उसने बहुत शीघ्र इस बात का पता लगा लिया कि महाराज की इस उदासी का कारण उर्वशी है। विदूषक के पेट में राजा के गुप्त प्रेम की बातें भला कैसे पच सकती थीं। यहीं नहीं, रानी का भला बनने के लिए उसने यह भी कहा कि वह राजा को इस मृगतृष्णा से बचाने के लिए कोशिश करते-करते थक गया है। यह समाचार देने के लिए निपुणिका तुरंत महारानी के पास चली गई और विदूषक डरता-डरता महाराज के पास पहुंचा।

तीसरे प्रहर का समय था। राजकाज से छुट्टी पाकर महाराज विश्राम के लिए जा रहे थे। मन उनका उदास था ही। विदूषक परिहासादि से अनेक प्रकार उनका मन बहलाने की कोशिश करने लगा, पर सब व्यर्थ हुआ। प्रमद वन में भी उनका मन नहीं लगा। जी उलटा भारी हो आया। उस समय वसंत ऋतु थी। आम के पेड़ों में कोंपलें फूट आई थीं। कुरबक और अशोक के फूल खिल रहे थे। भौंरों के उड़ने से जगह-जगह फूल बिखरे पड़े थे; लेकिन उर्वशी की सुंदरता ने उनपर कुछ ऐसा जादू कर दिया था कि उनकी आंखों को फूलों के भार से झुकी हुई लताएं और कोमल पौधे भी अच्छे नहीं लगते थे। इसलिए उन्होंने विदूषक से कहा, "कोई ऐसा उपाय सोचो कि मेरे मन की साध पूरी हो सके।"

विदूषक ऐसा उपाय सोचने का नाटक कर ही रहा था कि अच्छे शकुन होने लगे और चित्रलेखा के साथ उर्वशी ने वहां प्रवेश किया।

उन्होंने माया के वस्त्र ओढ़ रखे थे, इसलिए उन्हें कोई देख नहीं सकता था, वे सबको देख सकती थीं। जब प्रमद वन में उतर कर उन्होंने राजा को बैठे देखा तो चित्रलेखा बोली, "सखी ! जैसे नया चांद चांदनी की राह देखता है वैसे ही ये भी तेरे आने की बाट जोह रहे हैं।" उर्वशी को उस दिन राजा पहले से भी सुंदर लगे।

लेकिन उन्होंने अपने-आपको प्रगट नहीं किया। महाराज के पास खड़े होकर उनकी बातें सुनने लगीं। विदूषक तब उन्हें अपने सोचे हुए उपाय के बारे में बता रहा था। बोला, "या तो आप सो जाइए, जिससे सपने में उर्वशी से भेंट हो सके। या फिर चित्र-फलक पर उसका चित्र बनाइए और उसे एकटक देखते रहिए।" राजा ने उत्तर दिया कि ये दोनों ही बातें नहीं हो सकती। मन इतना दुखी है कि नींद आ ही नहीं सकती। आंखों में बार-बार आंसू आ जाने के कारण चित्र का पूरा होना भी संभव नहीं है।

इसी तरह की बातें सुनकर उर्वशी को विश्वास हो गया कि महाराज उसीके प्रेम के कारण इतने दुखी हैं; पर वह अभी प्रगट नहीं होना चाहती थी। इसलिए उसने भोजपत्र पर महाराज की शंकाओं के उत्तर में एक प्रेमपत्र लिखा और उनके सामने फेंक दिया। महाराज ने उस पत्र को पढ़ा तो पुलक उठे। उन्हें लगा जैसे वे दोनों आमने-सामने खड़े होकर बातें कर रहे हैं। कहीं वह पत्र उनकी उंगलियों के पसीने से पुछ न जाय, इस डर से उसे उन्होंने विदूषक को सौंप दिया। उर्व शी को यह सब देख-सुनकर बड़ा संतोष हुआ; पर वह अब भी सामने आने में झिझक रही थी। इसलिए पहले उसने चित्रलेखा को भेजा। पर जब महाराज के मुंह से उसने सुना कि दोनों ओर प्रेम एक जैसा ही बढ़ा हुआ है तो वह भी प्रगट हो गई। आगे बढ़ कर उसने महाराज का जय-जयकार किया। महाराज उर्वशी को देखकर बड़े प्रसन्न हुए; लेकिन अभी वे दो बातें भी नहीं कर पाये थे कि उन्होंने एक देवदूत का स्वर सुना। वह कह रहा था, "चित्रलेखा! उर्व शी को शीघ्र ले आओ। भरत मुनि ने तुम लोगों को आठों रसों से पूर्ण जिस नाटक की शिक्षा दे रखी है, उसीका सुंदर अभिनय देवराज इंद्र और लोक-पाल देखना चाहते हैं।"

यह सुनकर चित्रलेखा ने उर्वशी से कहा, "तुमने देवदूत के वचन सुने। अब महाराज से विदा लो।"

लेकिन उर्वशी इतनी दुखी हो रही थी कि बोल न सकी। चित्रलेखा ने उसकी ओर से निवेदन किया, "महाराज, उर्वशी प्रार्थना करती है कि मैं पराधीन हूं। जाने के लिए महाराज की आज्ञा चाहती हूं, जिससे देवताओं का अपराध करने से बच सकूं।"

महाराज भी दुखी हो रहे थे। बड़ी कठिनता से बोल सके, "भला मैं आपके स्वामी की आज्ञा का कैसे विरोध कर सकता हूं, लेकिन मुझे भूलिएगा नहीं।"

महाराज की ओर बार-बार देखती हुई उर्वशी अपनी सखी के साथ वहां से चली गई। उसके जाने के बाद विदूषक को पता लगा कि महाराज ने उसे उर्वशी का जो पत्र रखने को दिया था वह कहीं उड़ गया है। वह डरने लगा कि कहीं महाराज उसे मांग न बैठें। यही हुआ भी। पत्र न पाकर महाराज बड़े क्रुद्ध हुए और तुरंत उसे ढूंढ़ने की आज्ञा दी। यही नहीं वह स्वयं भी उसे ढूंढ़ने लगे।

इसी समय महारानी अपनी दासियों के साथ उधर ही आ रही थी। उन्हें उर्वशी के प्रेम का पता लग गया था। वह अपने कानों से महाराज की बातें सुनकर इस बात की सच्चाई को परखना चाहती थीं। मार्ग में आते समय उन्हें उर्वशी का वही पत्र उड़ता हुआ मिल गया। उसे पढ़ने पर सब बातें उनकी समझ में आ गई। उस पत्र को लेकर जब वह महाराज के पास पहुंची तो वे दोनों बड़ी व्यग्रता से उसे खोज रहे थे। महाराज कह रहे थे कि मैं तो सब प्रकार से लुट गया। यह

सुनकर महारानी एकाएक आगे बढ़ीं और बोलीं, "आर्यपुत्र ! घबराइए नहीं। वह भोजपत्र यह रहा !"

महारानी को और उन्हींके हाथ में उस पत्र को देखकर महाराज और भी घबरा उठे; लेकिन किसी तरह अपनेको संभलकर उन्होंने महारानी का स्वागत किया और कहा, "मैं इसे नहीं खोज रहा था, देवी। मुझे तो किसी और ही वस्तु की तलाश थी।" विदूषक ने भी अपने विनोद से उन्हें प्रसन्न करने का प्रयल किया, लेकिन वह क्यों माननेवाली थीं। बोली, "मैं ऐसे समय में आपके काम में बाधा डालने आगई। मैंने अपराध किया। लीजिए मैं चली जाती हूं।" और वह गुस्से में भरकर लौट चलीं। महाराज पीछे-पीछे मनाने के लिए दौड़े। पैर तक पकड़े, पर महारानी इतनी भोली नहीं थीं कि महाराज की इन चिकनी- चुपड़ी बातों में आ जाती।

लेकिन पतिव्रता होने के कारण उन्होंने कोई कड़ा बर्ताव भी नहीं किया। ऐसा करती तो पछताना पड़ता। बस वह चली गई। महाराज भी अधीर होकर स्नान-भोजन के लिए चले गये। वह महारानी को अब भी पहले के समान ही प्यार करते; लेकिन जब वह हाथ-पैर जोड़ने पर भी नहीं मानीं तो वह भी क्रुद्ध हो उठे।

•

देवसभा में भरत मुनि ने लक्ष्मी-स्वयंवर नाम का जो नाटक खेला था, उसके गीत स्वयं सरस्वती देवी ने बनाये थे। उसमें रसों का परिपाक इतना सुंदर हुआ था कि देखते समय पूरी-की-पूरी सभा मगन हो उठती थी। लेकिन उस नाटक में उर्वशी ने बोलने में एक बड़ी भूल कर दी। जिस समय वारूणी बनी हुई मेनका ने, लक्ष्मी बनी हुई उर्वशी से पूछा, " सखी ! यहां पर तीनों लोक के एक से एक सुन्दर पुरूष, लोकपाल और स्वयं विष्णु भगवान आये हुए हैं, इनमें तुम्हें कौन सबसे अधिक अच्छा लगता है?" उस समय उसे कहना चाहिए था 'पुरूषोत्तम' ; पर उसके मुंह से निकल गया 'पुरूख'। इसपर भरत मुनि ने उसे शाप दिया, "तूने मेरे सिखाए पाठ के अनुसार काम नहीं किया है, इसलिए तुझे यह दंड दिया जाता है कि तू स्वर्ग में नहीं रहने पायेगी।"

लेकिन नाटक के समाप्त हो जाने पर जब उर्वशी लज्जा से सिर नीचा किये खड़ी थी, तो सबके मन की बात जाननेवाले इंद्र उसके पास गये और बोलो, " जिसे तुम प्रेम करती हो, वह राजर्षि रणक्षेत्र में सदा मेरी सहायता करनेवाला है। कुछ उसका प्रिय भी करना ही चाहिए। इसलिए जब तक वह तुम्हारी संतान का मुंह न देखे, तबतक तुम उसके साथ रह सकती हो।"

इधर काशीराज की कन्या महारानी ने मान छोड़कर एक व्रत करना शुरू किया और उसे सफल करने के लिए महाराज को बुला भेजा। कंचुकी यह संदेश लेकर जब महाराज के पास पहुंचा तो संध्या हो चली थी। राजद्वार बड़ा सुहावना लग रहा था। नींद में अलसाये हुए मोर ऐसे लगते थे जैसे किसी कुशल मूर्तिकार ने उन्हें पत्थर में अंकित कर दिया हो। जगह जगह संध्या के पूजन की तैयारी हो रही थी। दीप सजाये जा रहे थे।

अनेक दासियां दीपक लिये महाराज के चारों ओर चली आ रही थीं। इसी समय कंचुकी ने आगे बढ़कर महाराज की जय-जयकार की और कहा, " देव, देवी निवेदन करती हैं कि चंद्रमा मणिहर्म्य-भवन से अच्छी तरह दिखाई देगा। इसलिए मेरी इच्छा है कि महाराज के साथ मैं वही से चंद्रमा और रोहिणी का मिलन देखूं।" महाराज न उत्तर दिया, "देवी से कहना कि जो वह कहेंगी वह मैं करूंगा।"

यह कहकर वह विदूषक के साथ मणिहर्म्य-भवन की ओर चल पड़े। चंद्रमा उदय हो रहा था। उसे प्रणाम करके वे वहीं बैठ गये और उर्वशी के बारे में बातें करने लगे। उसी समय माया के वस्त्र ओढ़े उर्वशी भी चित्रलेखा के साथ उसी भवन की छत पर उतरी और उनकी बातें सुनने लगी; लेकिन जब वह प्रगट होने का विचार कर रही थी, तभी महारानी के आने की सूचना मिली। वह पूजा की सामग्री लिये और व्रत को वेशभूषा में अति सुंदर लग रही थीं। महाराज ने सोचा कि उस

दिन मेरे मनाने पर भी जो रूठकर चली गई थी, उसीका पछतावा महारानी को ही रहा है। व्रत के बहाने यह मान छोड़कर मुझपर प्रसन्न हो गई है।

महारानी ने आगे बढ़कर महाराज की जय-जयकार की और कहा, "मैं आर्यपुत्र को साथ लेकर एक विशेष व्रत करना चाहती हूं, इसलिए प्रार्थना है कि आप मेरे लिए कुछ देर कष्ट सहने की कृपा करें।" महाराज ने उत्तर में ऐसे प्रिय वचन कहे कि जिन्हें सुनकर महारानी मुस्कुरा उठीं। उन्होंने सबसे पहले गंध-फलादि से चंद्रमा की किरणों की पूजा की, फिर पूजा के लड्डू विदूषक को देकर महाराज की पूजा की। उसके बाद बालीं, "आज मैं रोहिणी और चंद्रमा को साक्षी करके आर्यपुत्र को प्रसन्न कर रहीं हूं। आज से आर्यपुत्र जिस किसी स्त्री की इच्छा करेंगे और जो भी स्त्री आर्यपुत्र की पत्नी बनना चाहेगी, उसके साथ मैं सदा प्रेम करूंगी।"

यह सुनकर उर्वशी को बड़ा संतोष हुआ। महाराज बोले, "देवी ! मुझे किसी दूसरे को दे दो या अपना दास बनाकर रखो; पर तुम मुझे जो दूर समझ बैठी हो वह ठीक नहीं है।" महारानी ने उत्तर दिया, "दूर हो या न हो, पर मैंने व्रत करने का निश्चय किया था वह पूरा हो चुका है।"

यह कहकर वह दास-दासियों के साथ वहां से चली गई। महाराज ने रोकना चाहा; पर व्रत के कारण वह रूकी नहीं। उनके जाने के बाद महाराज फिर उर्वशी की याद करने लगे। उदार-हृदय पतिव्रता महारानी की कृपा से अब उनके मिलने में जो रूकावट थी वह भी दूर हो चुकी थी। उर्वशी ने, जो अबतक सबकुछ देख-सुन रही थी, इस सुंदर अवसर से लाभ उठाया और वह प्रकट हो गई। उसने चुपचाप पीछे से आकर महाराज की आंखें मींच लीं। महाराज ने उसको तुरंत पहचान लिया और अपने ही आसन पर बैठा लिया। तब उर्वशी ने अपनी सखी से कहा, "सखी ! देवी ने महाराज को मुझे दे दिया है, इसलिए मैं इनकी विवाहिता स्त्री के समान ही इनके पास बैठी हूं। तुम मुझे दुराचारिणी मत समझ बैठना।"

चित्रलेखा ने भी महाराज से अपनी सखी की भली प्रकार देखभाल करने की प्रार्थना की, जिससे वह स्वर्ग जाने के लिए घबरा न उठे। फिर सबसे मिल-भेंटकर वह स्वर्ग लौट गई।

इस प्रकार महाराज का मनोरथ पूरा हुआ। खुशी-खुशी वह भी विदूषक और उर्वशी के साथ वहां से अपने महल क ओर चले गये।

•

उर्वशी के आने के बाद महाराज पुरूरवा ने राजकाज मंत्रियों को सौंप दिया और स्वयं गंधमादन पर्वत पर चले गये। उर्वशी साथ ही थी। वहां वे बहुत दिन तक आनंद मनाते रहे। एक दिन उर्वशी मंदाकिनी के तट पर बालू के पहाड़ बना-बनाकर खेल रही थी कि अचानक उसने देखा- महाराज एक विद्याधर की परम सुंदर बेटी की ओर एकटक देख रहे हैं। बस वह इसी बात पर रूठ गई और रूठी भी ऐसी कि महाराज के बार-बार मनाने पर भी नहीं मानी। उन्हें छोड़ कर चली गई। वहां से चलकर वह कुमार वन में आई। इस वन में स्त्रियों को आने की आज्ञा नहीं थी। ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर भगवान कार्तिकेय यहां रहते थे। उन्होंने यह नियम बना दिया था कि जो भी स्त्री यहां आयेगी वह लता बन जायेगी। इसलिए जैसे ही उर्वशी ने उस वन में प्रवेश किया, वह लता बन गई।

इधर महाराज उसके वियोग में पागल ही हो गये और अपने मन की व्यथा प्रकट करते हुए इधर-उधर घूमने लगे। कभी वह समझते कि कोई राक्षस उर्वशी को उठाये लिये जा रहा है।

बस वह उसे ललकारते; लेकिन तभी उन्हें पता लगता कि जिसे वह राक्षस समझ बैठे थे कि वह तो पानी से भरा हुआ बादल है। उन्होंने इंद्रधनुष को गलती से राक्षस का धनुष समझ लिया है। ये बाण नहीं बरस रहे हैं, ये बूंदें टपक रही हैं और वह जो कसौटी पर सोने की रेखा के समान चमक रही है, वह भी उर्वशी नहीं है, बिजली है।

कभी सोचते, कहीं क्रोध में आकर वह अपने दैवी प्रभाव से छिप तो नहीं गई। कभी हरी घास पर पड़ी हुई बीरबहूटियों को देखकर यह समझते कि ये उसके ओठों के रंग से लाल हुए आंसुओं की बूंदें हैं। अवश्य वह इधर से ही गई हैं। कभी वह मोर को देखकर उससे उर्वशी का पता पूछते, "अरे मोर ! मैं तुमसे प्रार्थना करता हूं कि अगर घूमते-फिरते तुमने मेरी पत्नी को देखा हो तो मुझे बता दो।"

लेकिन मोर उत्तर न देकर नाचने लगता। महाराज उसके पास से हटकर कोयल के पास जाते। पक्षियों में कोयल सबसे चतुर समझी जाती है। उसके आगे घुटने टेककर वह कहते, "हे मीठा बोलने वाली सुंदर कोयल! यदि तुमने इधर-उधर घूमती हुई उर्वशी को देखा हो तो बता दो। तुम तो रूठी हुई स्त्रियों का मान दूर करनेवाली हो। तुम या तो उसे मेरे पास ले आओ या झटपट मुझे ही उसके पास पहुंचा दो। क्या कहा तुमने? वह मुझसे क्यों रूठ गई है। मुझे तो एक भी बात ऐसी याद नहीं आती कि जिस पर वह रूठी हो। अरे, स्त्रियां तो वैसे ही अपने पतियों पर शासन जमाया करती है। यह जरूरी नहीं कि पति कोई अपराध ही करे तभी वे क्रोध करेंगी।"

लेकिन कोयल भी इन बातों का क्या जवाब देती! वह अपने काम में लगी रहती। दूसरे का दुख लोग कम समझते हैं। राजा कहते , "अच्छा बैठी रहो सुख से! हम ही यहां से चले जाते हैं।"

फिर सहसा उन्हें दक्खिन की ओर बिछुओं की सी झनझन सुनाई देती। लेकिन पता लगता वह तो राजहंसों की कूक है जो बादलों की अंधियारी देखकर मानससरोवर जाने को उतावले हो रहे हैं। वह उनके पास जाकर कहते, "तुम मानससरोवर बाद में जाना। ये जो तुमने कमलनाल संभाली है, इन्हें भी अभी छोड़ दो। पहले तुम मुझे उर्वशी का समाचार बताओ।

सज्जन लोग अपने मित्रों की सहायता करना अपने स्वार्थ से बढ़कर अच्छा समझते हैं। हे हंस ! तुम तो ऐसे ही चलते हो, जैसे उर्वशी चलती है। तुमने उसकी चाल कहां से चुराई। अरे, तुम तो उड़ गये। (हँसकर) तुम समझ गये कि मैं चोरों को दंड देनेवाला राजा हूं। अच्छा चलूं , कहीं और खोजू .... ।"

फिर वह चकवे के पास जा पहुंचते। उससे वही प्रश्न करते, लेकिन उन्हें लगता जैसे चकवा उनसे पूछ रहा है — "तुम कौन हो?" वह कहते, "अरे, तुम मुझे नहीं जानते? सूर्य मेरे नाना और चंद्रमा मेरे दादा हैं। उर्वशी और धरती ने अपने-आप मुझे अपना स्वामी बनाया है। में वहीं पुरूरवा हूं।" लेकिन चकवा भी चुप रहता। महाराज वहां से हटकर कमल पर मंडराते हुए भौरों से पूछने लगते। पर वे भी क्या जवाब देते ! फिर उन्हें हाथी दिखाई दे जाता। उसके पास जाकर वह पूछते, " हे मतवाले हाथी ! तुम दूर तक देख सकते हो। क्या तुमने सदा जवान रहनेवाली उर्वशी को देखा है। तुम मेरे समान बलवान हो। मैं राजाओं का स्वामी हूं। तुम गजों के स्वामी हो। तुम दिन-रात अपना दान यानी मद बहाया करते हो, मेरे यहां भी दिन-रात दान दिया जाता है। तुमसे मुझे बड़ा स्नेह हो गया है। अच्छा, सुखी रहो। हम तो जा रहे हैं।"

और फिर उनको दिखाई दे जाता एक सुहावना पर्वत। उसीसे पूछने लगते, "हे पर्वतों के स्वामी ! क्या तुमने मुझसे बिछुड़ी हुई सुंदरी उर्वशी को कहीं इस वन में देखा है। उन्हें ऐसा लगता जैसे पर्वतराज ने कुछ उत्तर दिया है। उन्हें खुशी होती; पर तभी मालूम होता कि वह पर्वतराज का उत्तर नहीं था, बल्कि पहाड़ की गुफा से टकराकर निकलनेवाली उन्हींके शब्दों की गूंज थी।

यहां से हटे तो नदी दिखाई दे गई। उसीसे उर्वशी की तुलना करने लगे। लेकिन जब वह भी कुछ नहीं बोली तो हिरन

के पास जा पहुंचे। उसने भी उनकी बातें अनसुनी करके दूसरी ओर मुंह फेर लिया। ठीक ही है, जब खोटे दिन आते हैं तो सभी दुरदुराने लगते हैं। लेकिन तभी उन्होंने लाल अशोक के पेड़ को देखा। उससे भी वही प्रश्न किया और जब वह हवा से हिलने लगा तो समझे कि वह मना कर रहा है – उसने उर्वशी को नहीं देखा।

इसी प्रकार पागलों की तरह प्रलाप करते हुए जब वह यहां से मुड़े तो उन्हें एक पत्थर की दरार में लाल मणि–सा कुछ दिखाई दिया।

सोचने लगे कि न तो यह शेर से मारे हुए हाथी का मांस हो सकता है और न आग की चिनगारी। मांस इतना नहीं चमकता और चूं कि अभी भारी वर्षा होकर चुकी है, इसलिए आग के रहने का कोई सवाल ही नहीं उठता। यह तो अवश्य लाल अशोक के समान लाल मणि है। इसे देखकर मेरा मन ललचा रहा है।

यह सोचकर वह आगे बढ़े और मणि को निकाल लिया। लेकिन फिर ध्यान आया कि जब उर्वशी ही नहीं है तो मणि का क्या होगा! इसलिए उसे गिरा दिया। उसी समय नेपथ्य में से किसीकी वाणी सुनाई दी, "वत्स ! इसे ले लो, ले लो, यह प्रियजनों को मिलानेवाली है और पार्वती के चरणों की लाली से बनी है। जो इसे अपने पास रखता है उसे वह शीघ्र ही प्रिय से मिलवा देती है।"

यह वाणी सुनकर महाराज चकित रह गये। उन्हें जान पड़ा कि मानो किसी मुनि ने यह कृपा की है। उन्होंने उस अज्ञात मुनि को धन्यवाद दिया और मणि को उठा लिया। इसी समय उनकी दृष्टि बिना फूलवाली एक लता पर पड़ी। न जाने क्यों उनका मन उछल पड़ा। उन्हें सुख मिला। वह उन्हें उर्वशी के समान दिखाई पड़ी और जैसे ही उन्होंने उसे छुआ, उर्वशी सचमुच वहां आ गई; पर उनकी आंखें बंद थीं। उसी तरह कुछ देर बोलते रहे। जब आंखें खोली और उर्वशी को देखा तो वह मूर्च्छित होकर गिर पड़े। उर्वशी भी रोने लगी और उन्हें धीरज बंधाने लगी। कुछ देर बाद महाराज की मूर्च्छा दूर हुई तो उन्हें कार्तिकेय के श्राप के कारण उर्वशी के लता बन जाने के रहस्य का पता लगा। यह भी पता लगा कि पार्वती के चरणों की लाली से पैदा होनेवाली मणि से ही इसे शाप से मुक्ति मिली है।

उर्वशी उनसे बार–बार क्षमा मांगने लगी, "मुझे क्षमा कर दीजिए, क्योंकि मैंने ही क्रोध करके आपको इतना कष्ट पहुंचाया।" महाराज बोले, " कल्याणी ! तुम क्षमा क्यों मांगती हो ! तुम्हें देखते ही मेरी आत्मा तक प्रसन्न हो गई है।" और फिर उन्होंने उसे वह मणि दिखाई, जिसके कारण उसका श्राप दूर हो गया था। उर्वशी ने उस मणि को सिर पर धारण किया तो उसके प्रकाश में उसका मुख अरूण–किरणों से चमकते हुए कमल के समान सुहावना लगने लगा।

इसी समय उर्वशी ने याद दिलाया, " हे प्रिय बोलनेवाले ! आप बहुत दिनों से प्रतिष्ठान पुरी से बाहर हैं। आपकी प्रजा इसके लिए मुझे कोस रही होगी। इसलिए आइए अब लौट चलें।

महाराज ने उत्तर दिया, " जैसा तुम चाहो।" और लौट पड़े।

नंदन वन आदि देवताओं के बनों में घूमकर महाराज पुरूरवा फिर अपने नगर में लौट आये। नागरिकों ने उनका खूब स्वागत–सत्कार किया और वह प्रसन्न होकर राज करने लगे। संतान को छोड़ कर उन्हें अब और किसी बात की कमी नहीं थीं। उन्हीं दिनों एक दिन एक सेवक महारानी के माथे की मणि ताड़ की पिटारी में रखे ला रहा था कि इतने में एक गिद्ध झपटा और उसे मांस का टुकड़ा समझकर उठाकर उड़ गया। यह समाचार पाकर महाराज आसन छोड़कर दौड़ पड़े। पक्षी अभी दिखाई दे रहा था। उन्होंने अपना धनुषबाण लाने की आज्ञा दी।

लेकिन जबतक धनुष आया तबतक वह पक्षी बाण की पहुंच से बाहर निकल चुका था और ऐसा लगने लगा था मानो रात के समय घने बादलों के दल के साथ मंगल तारा चमक रहा हो। यह देखकर महाराज ने नगर में यह घोषणा करवाने की

आज्ञा दी कि जब यह चोर पक्षी संध्या को अपने घोंसले में पहुंचे तो इसकी खोज की जाय।

यह वही मणि थी, जिसके कारण उर्वशी और महाराज का मिलन हुआ था। इसलिए महाराज उसका विशेष आदर करते थे। वह यह बात विदूषक को बता ही रहे थे कि कंचुकी ने आकर महाराज की जय–जयकार की। उसने कहा, " आपके क्रोध ने बाण बनकर इस पक्षी को मार डाला और इस मणि के साथ यह धरती पर गिर पड़ा।"

महाराज ने उस मणि को आग में शुद्ध करके पेटी में रखने की आज्ञा दी और यह जानने के लिए कि बाण किसका है उसपर अंकित नाम पढ़ने लगे। पढ़कर वह सोच में पड़ गये। उसपर लिखा हुआ था – यह बाण पुरूरवा और उर्वशी के धनुर्धारी पुत्र का है। उसका नाम आयु है और वह शत्रुओं के प्राण खींचनेवाला है।

विदूषक यह सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने महाराज को बधाई दी; पर वह तो कुछ समझ ही नहीं पा रहे थे।

यह पुत्र कैसे पैदा हुआ। वह तो कुछ जानते ही नहीं। शायद उर्वशी ने दैवी–शक्ति से इस बात को छिपा रखा हो। पर उसने पुत्र को क्यों छिपा रखा?

वह इसी उधेड़बुन में थे कि च्यवन ऋषि के आश्रम से एक कुमार को लिये किसी तपस्विनी के आने का समाचार मिला। महाराज ने उन्हें वहीं बुला भेजा और कुमार को देखते ही उनकी आंखें भर आईं। हृदय में प्रेम उमड़ पड़ा और उनका मन करने लगा कि उसे कसकर छाती से लगा ले। पर ऊपर से वह शांत ही बने रहे। उन्होंने तापसी को प्रणाम किया आशिर्वाद देकर तापसी ने कुमार से कहा, "बेटा, अपने पिताजी को प्रणाम करो।"

कुमार ने ऐसा ही किया। महाराज ने उसे गदगद होकर आशीर्वाद दिया और तब तापसी बोली, "महाराज ! जब यह पुत्र पैदा हुआ तभी कुछ सोचकर उर्वशी इसे मेरे पास छोड़ आईथी। क्षत्रिय–कुमार के जितने संस्कार होते है वे सब भगवान च्यवन ने करा दिये हैं। विद्याधन के बाद धनुष चलाना भी सिखा दिया गया है; लेकिन आज जब यह फूल और समिधादि लाने के लिए ऋषिकुमारों के साथ जा रहा था तो इसने आश्रम के नियमों के विरूद्ध काम कर डाला।"

विदूषक ने घबराकर पूछा, "क्या कर डाला?"

तापसी बोली, " एक गिद्ध मांस का टुकड़ा लिये हुए पेड़ पर बैठा था।उसपर लक्ष्य बांधकर इसने बाण चला दिया।जब भगवान च्यवन ने यह सुना तो उन्होंने उर्वशी की यह धरोहर उसे सौंप आने की आज्ञा दी।इसलिए मैं उर्वशी से मिलने आई हूं।"

महाराज ने तुरंत उर्वशी को बुला भेजा और पुत्र को गले से लगाकर प्यार करने लगे। उर्वशी ने आते ही दूर से उसे देखा तो यह सोच में पड़ गई ; पर तापसी को उसने पहचान लिया।अब तो वह सबकुछ समझ गई।पिता के कहने पर जब पुत्र ने माता को प्रणाम किया तो उसने पुत्र को छाती से चिपका लिया।तापसी ने उसके स्वामी के सामने उसका पुत्र उसे सौंपते हुए कहा, " ठीक से पढ़–लिखकर अब यह कुमार कवच धारण करने योग्य हो गया है, इसलिए तुम्हारे स्वामी के सामने ही तुम्हारी धरोहर तुम्हें सौंप रही हूं और अब जाना भी चाहती हूं।आश्रम का बहुत–सा काम रूका पड़ा है।"

जाते समय कुमार भी साथ जाने के लिए मचल उठा; पर जब सबने समझाया तो वह आश्रम–जैसी सरलता से तापसी से बोला, " तो आप बड़े–बड़े पंखों वाले मेरे उस मणिकंठक नाम के मोर को भेज देना।वह मेरी गोद में सोकर मेरे हाथों से अपना सिर खुजलाये जाने का आनंद लिया करता था।"

तापसी हंस पड़ी और ऐसा ही करने का वचन देकर चली गई।महाराज पुत्र पाकर बड़े प्रसन्न हुए परंतु उर्वशी रोने लगी। यह देखकर महाराज घबरा उठे और इस विषाद का कारण पूछने लगे। उर्वशी बोली, "बहुत दिन हुए, आपसे प्रेम करने

पर भरत मुनि ने मुझे शाप दिया था। उस शाप से मैं बहुत घबरा गई थी तब देवराज इंद्र ने मुझे आज्ञा दी थी कि जब हमारे प्यारे मित्र राजर्षि तुमसे उत्पन्न हुए पुत्र का मुंह देख लें तब तुम फिर मेरे पास लौट आना। आपसे बिछोह होने के डर से ही मैं इस कुमार को पैदा होते ही च्यवन ऋषि के आश्रम में पढ़ने-लिखाने के बहाने छोड़ आई थी। आज उन्होंने इसे पिता की सेवा करने के योग्य समझकर लौटा दिया है। बस आज तक ही मैं महाराज के साथ रह सकती थी।"

यह कथा सुनकर सबको बड़ा दुःख हुआ।महाराज तो मूर्च्छित हो गये।जब जागे तो उन्होंने तुरंत ही पुत्र को राज्य सौंपकर तपोवन में जाकर रहने की इच्छा प्रगट की। लेकिन इसी समय नारद मुनि ने वहां प्रवेश किया। आकाश से उतरते हुए पीली जटावाले, कंधे पर चंद्रमा की कला के समान उजला जनेऊ और गले में मोतियों की माला पहने, वह ऐसे लगते थे जैसे सुनहरी शाखावाला कोई चलता-फिरता कल्पवृक्ष चला आ रहा हो। पूजा-अभिवादन के बाद उन्होंने कहा कि मैं देवराज इंद्र का संदेशा लेकर आया हूं।वह अपनी दैवी शक्ति से सबके मन की बातें जाननेवाले हैं।उन्होंने जब देखा कि आप वन जाने की तैयारी कर रहे हैं तो उन्होंने कहलाया है — "तीनों कालों को जाननेवाले मुनियों ने भविष्यवाणी की है कि देवताओं और दानवों में भयंकर युद्ध होनेवाला है। युद्ध-विद्या में कुशल आप हम लोगों की सदा सहायता करते ही रहें इसलिए आप शस्त्र न छोड़े। उर्वशी जीवनभर आपके साथ रहेगी।"

देवराज इंद्र का यह संदेश सुनकर उर्वशी और पुरूरवा दोनों बहुत प्रसन्न हुए। इंद्र ने कुमार आयु के युवराज बनने के उत्सव के लिए भी सामग्री भेजी थी। उसीसे रंभा ने आयु का अभिषेक किया।

अभिषेक के बाद कुमार ने सबको प्रणाम किया और उनका आशीर्वाद पाया। लेकिन बड़ी महारानी वहां नहीं थीं। इसलिए उर्वशी ने आयु से कहा "चलो बेटा! बड़ी मां को प्रणाम कर आओ।" और वह उसे लेकर बड़ी महारानी के पास चली। महाराज बोले, "ठहरो, हम सब लोग साथ ही देवी के पास चलते हैं।" लेकिन चलने से पहले नारद मुनि ने उनसे पूछा, "हे राजन्। इंद्र आपकी और कौनसी इच्छा पूरी करें।"

राजा बोले, "इंद्र की प्रसन्नता से बढ़कर और मुझे क्या चाहिए। फिर भी मैं चाहता हूं कि जो लक्ष्मी और सरस्वती

सदा एक–दूसरे से रूठी रहती हैं, सज्जनों के कल्याण के लिए सदा एकसाथ रहने लगें। सब आपत्तियां दूर हो जाय, सब फलें–फूलें, सबके मनोरथ पूरे हों और सब कहीं सुख–ही–सुख फैल जाय।

प्रतिफल बंसी खूबचंदानी

"नर्स अभी और कितनी गोली खिलाओगी? मैं तो तंग आ गया हूं गोली खाते खाते।" "अंकल, गोली डाक्टर ने दी है, जल्दी अच्छा होने के लिये। गोली बराबर लोगे, तो जल्द ठीक हो जाओगे।" "अब मुंह खोलो।"

केरल की नर्स ने अपने सांवले चेहरे पर दूध जैसे चमकते दांतों के साथ किशनलाल को मीठी डांट लगायी और पूरी सात गोलियां एक के बाद एक लेने पर विवश कर दिया। किशनलाल मजबूर था। वो सामने वाले पलंग पर बैठी अपनी पत्नी – सुंदरी को निहारने लगा – मानो वो मदद के लिए पुकार रहा हो। सुंदरी चुपचाप देखती रही। वो कर भी क्या सकती थी।

मुम्बई के बांद्रा उपनगर में लीलावती अस्पताल में दाखिल हुए किशनलाल को आज पूरे नौ दिन हो गये हैं। बाई पास सर्जरी कराये, उसे एक सप्ताह बीत चुका है। तीन दिन तो आपरेशन के पश्चात इन्टेन्सिव केयर यूनिट में था। कल से अस्पताल की सातवीं मंजिल पर एक कोने वाले कमरे में हैं। अस्पताल के इस कमरे से बांद्रा क्षेत्र में फैले समंदर को साफ–साफ देखा जा सकता था।

किशनलाल को जल्दी थकावट होने, पसीना आने और छाती में दर्द की शिकायतें तो चार–पांच साल से हो रही थीं।

जब तकलीफ बढ़ी, तो अपने फैमिली डाक्टर के कहने पर इस अस्पताल में उसने एन्जियोग्राफी करायी थी। इसकी फिल्म देखकर डाक्टर ने उसे शीघ्र बाईपास सर्जरी की सलाह दी थी, क्योंकि किशनलाल के हृदय की रक्त वाहनियां सही कार्य नहीं कर रही थीं।

किशनलाल की सर्जरी कराने की कतई इच्छा न थी। न जाने क्यों उसे लगता था कि इस आपरेशन के बाद वह बच नहीं सकेगा। पत्नी सुन्दरी ने उसे समझाया था – "ईश्वर पर भरोसा रखें, सब ठीक हो जायेगा। आजकल हृदयरोगों का इलाज आम हो गया है। हमारी मुम्बई में तो वैसे भी दक्ष चिकित्सा विशेषज्ञ हैं। आप हिम्मत रखे और सर्जरी के लिये मना न करें, सब ठीक से हो जायेगा।" किशनलाल के अभिन्न मित्र जयराम ने भी हिम्मत दिलायी और वह आपरेशन के लिये सहमत हो गया था। आपरेशन सफल रहा है और डाक्टर के मुताबिक वह दो–तीन दिन में अंधेरी स्थित अपने घर जा सकेगा। हां, वह दो महीने अपने दफ्तर नहीं जा सकेगा और कम–से–कम छह महीने काफी ध्यान से परहेज करते रहना होगा।

नर्स तो गोलियां देकर चली गयी थी। सुंदरी ने भी दूसरे पलंगा पर लेटकर आंखें बंद कर ली थी। दूसरा कोई चारा न देखकर किशनलाल भी आँखें मूंदकर सोने का प्रयास करने लगा।

लगभग एक घंटे बाद वह चौंककर उठा और अपनी पत्नी को बुलाने लगा। सुंदरी गहरी नींद से जागकर उठी और पति के पलंग के सिरहाने आकर कहने लगी,
"क्यों क्या बात है? डाक्टर को बुलाऊं?"

"नहीं प्रिया, डाक्टर की जरूरत नहीं, मैंने अभी एक सपना देखा है कि मनोज अमेरिका से हवाई जहाज में रवाना हुआ है और कल मुम्बई पहुंच जायेगा। कल शाम को वह मुझे देखने जरूर आयेगा। सच बताओ, सुंदरी क्या तुम्हें अपने बेटे की याद नहीं आती, मैं तो उसका चेहरा देखने को तरस रहा हूं।"

"देखिये, आप बार–बार वही बात कर रहे हैं। यह सपना आप तीन दिन से निरंतर देख रहे हैं। आप जानते ही हैं कि मनोज ने टेलीफोन पर कहा है कि वह इस वक्त मुम्बई नहीं आ सकेगा, क्योंकि इस वक्त अमेरिका छोड़ने पर उसे ग्रीन कार्ड मिलने में कठिनाई आ जायेगी। उसने पांच हजार डालर भी भेजे हैं, ताकि आपके उपचार में कोई कमी न रहे। बच्चों की खुशी में ही खुश रहो। मनोज के अमेरिका जाने पर खुशी से सबसे अधिक आप ही तो उछले थे। क्या आपको नारियल पानी दूं?"

किशनलाल कुछ क्षण चुप रहा और छत की ओर एकटक निहारने लगा। सुंदरी जब बाथरूम से बाहर आयी, तो पति की आंखों से आंसू बहते देख वह खुद भी दुखी हो गयी। उसने देखा कि पति के आंसूओं से अस्पताल के बिस्तर का तकिया भी गीला हो गया है।

सुंदरी की आंखों में भी आंसू तैर आये थे, वह मुंह फेरकर खिड़की से बाहर समंदर की लहरों को देखने लगी। उसे लगा, मानो यह समंदर सुंदरी और किशनलाल जैसे लोगों के आसुंओं से भरा है। तभी तो खारा है।

अपने आपको समझाते हुए, दुपट्टे के कोने से अपने आंसू पोंछकर और नारियल का पानी प्लास्टिक की थैली से निकालकर, गिलास में भरकर, पति के पास वाली मेज पर रख दिया।

किशनलाल पलंग पर तकिये को अपनी सुविधा से टिकाकर लेट गया। उसकी आंखें अभी भी बेटे की याद में नम थीं। सुंदरी ने स्नेहपूर्वक रूमाल से पति के आंसुओं को पोछा और उसे नारियल का पानी पिलाने लगी।

किशनलाल फिर बतियाने लगे – "सुंदरी ये तो बताओ क्या ग्रीन कार्ड पिता से बड़ी वस्तु है? यदि मैं मर जाऊं, तो शायद मेरा बेटा मुझे कंधा देने भी नहीं आयेगा। ऐसा कहकर कि ग्रीनकार्ड मिलने में दिक्कत होगी। क्या यही है हमारे प्यार और परवरिश का प्रतिफल?"

सुंदरी ने पति को कोई जवाब नहीं दिया। फिर वह स्टूल को पलंग के पास सरकाकर बैठ गयी और पैरों को हिलाने लगी। उसे याद आया मनोज जब छोटा था – तो वह उसे कैसे सी.... कराती थीं। अपने पैरों का झूला बनाकर जब मनोज को झुलाती, तो वह खिलखिलाकर अपनी छोटी–छोटी बाहें मां के गले में डालकर चिपक जाता। और अब वह मां–बाप से हजारों मील दूर अमेरिका में ग्रीनकार्ड मिलने का इंतजार कर रहा है। जिससे हमेशा–हमेशा के लिये मां–बाप से दूर रह सके। सुंदरी के चेहरे पर थोड़ी देर के लिये आयी मुस्कान अब गायब हो चुकी थी। उसने पैरों का झूला झुलाना बंद कर दिया। वह पति की ओर देखने लगी, जो छत से आंखें गडाये जाने क्या सोच रहे थे?

"सुंदरी सुनो तो" किशनलाल ने सुंदरी की ओर मुखातिब होकर कहा – "तुम्हें याद है, जब मनोज दस साल का था और उसे पीलिया हो गया था, तब मैंने पूरे दो महीने छुट्टी ली थी। ऑफिस से बर्खास्तगी की चेतावनी का नोटिस तक आ गया था। लेकिन मैंने नौकरी की कोई परवाह नहीं की थी और जब तक मनोज ठीक होकर स्कूल नहीं जाने लगा था, तब तक ऑफिस नहीं गया था। फिर दो महीने बाद हम वैष्णों देवी गये थे, तब भी ऑफिस में झगड़ा करके उसने छुट्टी दी थी। क्या मनोज वह सब भी भूल गया है?"

"अब छोड़ो, पुरानी बातों को, क्यों मन को दुखी करते हो?" सुंदरी ने पति को तो पुरानी बातें याद न करने को कहा, लेकिन खुद भूतकाल के भंवर में अभी भी फंसी हुई थी। उसे याद आया कि जब मनोज पांच साल का था, उसे तेज बुखार हो गया था, उस समय किशनलाल भी ऑफिस के कार्य से बाहर गये हुए थे। मनोज को रात में ही कंबल ओढकर वह डॉक्टर के पास ले गयी थी।

उस वक्त उसके पास पर्याप्त पैसे तक नहीं थे, किसी तरह जोड़–तोड़कर उसने मनोज की एक हफ्ते तक दवा करायी थी। मनोज के ठीक होने के बाद स्वयं उसे मलेरिया हो गया था। किशनलाल ने टूर से लौटकर सब कुछ संभाल लिया था। परन्तु उस बीमारी के दौरान मनोज जिस तरह उसकी छाती से चिपका रहता था, वह दुख और हां, वह सुख, अभी भी दिल के किसी कोने में छिपा बैठा है।

"कैसे हो किशन सेठ, क्या हालचाल हैं? क्यों, अभी तक अस्पताल से चिपके बैठे हो। क्या यहीं घर बसाने की इच्छा है?" जयराम की कडकदार आवाज उस छोटे कमरे में गूंज उठी। "आओ दोस्त, आओ। तुम्हारे आने से शायद मन कुछ अच्छा हो जायेगा।"

किशनलाल ने आंसू पोंछते हुए मित्र का स्वागत किया। जयराम उसका बचपन का दोस्त है। स्कूल, कालेज साथ जाने के अलावा उनकी नौकरी भी एक ही विभाग में लगी थी, लेकिन कुछ ही वक्त में जयराम का मन नौकरी से भर गया था। उसने अपने मामा के साथ रेडीमेड वस्त्रों का व्यवसाय शुरू कर दिया और अब वह एक बड़ा सेठ बन गया है, लेकिन किशनलाल उसे हमेशा जयराम कहकर ही संबोधित करता है और जयराम उसे सेठ किशनलाल कहकर पुकारता है।

सुंदरी ने दुपट्टे से अपने आधे सूखे आंसुओं को ठीक से पोंछा और जयराम को स्टूल पर बैठने को कहकर, स्वयं सामने वाले पलंग पर बैठ गयी। जयराम ने अपने मित्र को आंसू पोछते और सुंदरी के चेहरे के उदासी भरे हाव–भाव देखकर अनुमान लगाया कि वातावरण कुछ बोझिल रहा है। वह दोस्त के निकट बैठ गया और उसका हाथ अपने हाथों में लेकर कहने लगा– "किशन सेठ, क्या बात है। क्या फिर भाभी से किसी बात पर झगड़ा हो गया है?"

कुछ क्षण खामोश रहने के बाद, किशनलाल बोले – "नहीं यार, झगड़ा करने के दिन गये। अब तो एक दूसरे को दिलासे

देकर ही दिन काटने हैं।"

दोनों दोस्तों की बातों में हिस्सा लेते हुए सुंदरी ने कहा – "मनोज अमेरिका से नहीं आ पा रहा है, क्योंकि इस समय अमेरिका छोड़ने पर उसे ग्रीनकार्ड मिलने में दिक्कत हो सकती है। अब आप ही बताइये, क्या यही है हमारे प्यार का प्रतिफल।" किशन ने बात को आगे बढ़ाते हुए कहा – "आपको याद है जब मनोज को इंजीनियरिंग कालेज में प्रवेश दिलाया था। मैं किस तरह तीन हफ्ते तक उसे लेकर या अकेले इधर–उधार भटकता रहा था। कालेज के प्रवेश के लिये मेरे पास पैसे ही नहीं थे और तुम्हारे पास मैं राशि लेने आया था। तुमने तो मदद की थी, लेकिन वह मैं जानता हूं कि तुमसे पैसे मांगने में मुझे कितनी वेदना हुई थी। उस वक्त मनोज के लिये मैं कुछ भी करने को तैयार था।" यह कहते हुए किशनलाल अपनी आंखों से बह निकली अश्रुधारा को पोंछने लगे।

जयराम यह सुनकर कुछ क्षण चुप रहे, फिर अपने मित्र के हाथों को सहलाते हुए अपनी स्वाभाविक कड़कदार आवाज को सप्रयास नरम करते हुए बोले – "हां मुझे अच्छी तरह याद है। मुझे यह भी याद है कि इतनी भागदौड़ के बाद जब गवर्न मेंट कालेज में प्रवेश मिला, तो तुम कितने खुश हुए थे। मिठाई का डिब्बा लेकर मेरे घर दौड़ आये थे। उस समय तुम्हारे चेहरे पर प्रसन्नता के जो अद्वितीय भाव थे, उन्हें देखकर ऐसा लगता था मानो तुम्हें अपनी परेशानियों का मुआवजा मिल गया हो। क्या तुम्हें वह खुशी याद नहीं है? कमरे में कुछ देर तक खामोशी छायी रही। नर्स ने एक बार झांककर कमरे में देखा, शायद वह कमरे में छायी खामोशी के खौफ से अंदर नहीं आयी थी।

जयराम ने फिर पीछे बैठी सुंदरी को देखा और कहने लगा – "भाभी मैंने आपको और किशन सेठ को सबसे ज्यादा खुश तब देखा है, जब मनोज छोटा था। तब आपके पास पैसे तो नहीं थे, लेकिन खुशियों का भंडार था। शायद पैसों और खुशियों का तालमेल प्रायः नहीं हो पाता है। वह खुशी आपके पास कहां से आती थी? मनोज के पास से ही ना?"

किशनलाल ने करवट बदली और मित्र की ओर चेहरा कर पलंग पर लेटा रहा। जयराम स्टूल दूर कर इस तरह बैठ गया, जिससे किशन और सुंदरी दोनों से मुखातिब हो सके। फिर ठुड्डी पर हाथ रखकर, पांव आगे रखकर कहने लगा – "यार एक बात बताओ, क्या हमारे बच्चों ने हमसे आकर कहा था कि आप हमें जन्म दों?

हमने उन्हें अपनी खुशियों के लिये ही जन्म दिया था। बच्चे तो अपने साथ खुशियों का खजाना लेकर आते हैं मां–बाप को देने के लिये। मनोज के जन्म पर आप कितने खुश थे। हमारी मीनू जब पैदा हुई तब हम भी बहुत उत्साहित थे। नन्हीं मीनू की ख्वाहिशें पूरी करने में मुझे अपार प्रसन्नता मिलती थी।" जयराम की बात सुनकर किशनलाल गहरे सोच में डूब गये। उन्हें याद आ रहा था, जाने–माने चित्रकार विन्सेन्ट वेनगी की जीवनी 'लस्ट फार लाइफ' में एक जगह कहा गया है –
"प्यार का आनंद प्यार करने में हैं, प्यार पाने में नहीं। हम जब अपने बच्चों को प्यार देते हैं, उनकी तकलीफों को दूर कर उन्हें खुश देखते हैं, तो अपनी जिंदगी की अनमोल खुशियां हासिल करते हैं। हमारे बच्चों ने हमारे घर जन्म लेकर, हमें प्यार करने का सुख देकर, हमें काफी कुछ दे दिया है। उससे अधिक कीमती प्रतिफल हमें क्या मिल सकता है मेरे दोस्त?" ऐसे कहते हुए जयराम अपने दोनों हाथों से दोस्त के हाथ अपने हाथों में लेकर थपकियां देने लगा।

जयराम के चेहरे पर मुस्कान थी। उसके चेहरे पर आ रहे आंसू रूक गये थे। कहा नहीं जा सकता, रूके हुए आंसू दुख के थे या खुशी के, या फिर अपनी बेटी मीनू की याद के, जो विवाह के पश्चात किसी और नगर में बस गयी थी।

जैसे ही मनोहर 'उडेरोलाल कृपा' कोठी के लोहे के बाहरी फाटक पर पहुंचा, वैसे ही उसने देखा, गोपाल की कार उस फाटक तक पहुंच गई थी और वह उसके अंदर दाखिल हो रही थी।

ड्राइवर ने कार की हैडलाइट की रोशनी में देखा, उस फाटक तक आया हुआ वह व्यक्ति उसके मालिक का पुराना दोस्त और रिश्तेदार, प्रोफ़ेसर मनोहर लाल था। उसने उन दोनों के आपसी संबंध को ध्यान में रखकर कार को वहीं रोक दिया, ताकि उसके मालिक गोपाल प्रोफ़ेसर मनोहर लाल को अंदर पोर्टिको तक कार में बैठाकर ले जाएं।

कार की एक क्षण के लिए गति कम होने पर गोपाल ने भी मनोहर को देखा और अपने ड्राइवर के मन की बात को भांपकर उससे कहा, "नहीं, गाड़ी तुम अंदर ले चलो... मनोहर अपने आप ही बाकी थोड़ा फ़ासला चलकर कोठी में आ मिलेगा।"

उस फाटक के दोनों तरफ़ लगे हुए बिजली के फानूसों की रोशनी में मनोहर से भी कार में बैठे ड्राइवर और उसका मालिक गोपाल छिपे न रह सके। एक ही क्षण में तीन जने एक-दूसरे के लिए अनजाने या अनपहचाने नहीं रहे। मनोहर ने सोचा, 'कार ड्राइवर जानता था कि गोपाल से उसका क्या रिश्ता है परंतु गोपाल उससे ऐसी जान-पहचान को धीरे-धीरे खोता जा रहा है। शायद उसके लिए वह स्वयं उत्तरदायी नहीं है, उसकी परिस्थितियां ही कुछ ऐसी हैं।'

फाटक से पोर्टिको तक जाते-जाते मनोहर के मन के आइने में कुछ यादें प्रतिबिंबित हो उठीं। उन बिंबों में लालटेन, ट्यूबलाइट और शेंडेलियर के तीन बिंब आपस में टकराकर एक अदभुत माहौल पैदा कर रहे थे।...

सन 1953 में दिल्ली के पुराने किले के शरणार्थी कैंप में रहते हुए दो दोस्त – गोपाल और मनोहर लोधी रोड के सिंधी स्कूल में साथ पढ़ते थे। रात को एक ही बैरक में लालटेन की रोशनी में वे दोनों मास्टर साहबों द्वारा दिया गया 'होमवर्क' करते थे। दोनों दोस्तों के पिता लोग भी पीछे सिंध के एक ही गांव में साथ-साथ बिताई ज़िंदगी के दिनों से आपस में दोस्त थे, और उनके बूढ़े चेहरों पर लालटेन की मंद-मंद रोशनी फैली थी।...

1961 में मनोहर ने दिल्ली विश्वविद्यालय से अंग्रेज़ी में एम.ए. किया और आगे चलकर वह एक कालेज में सिंधी का प्रवक्ता नियुक्त हुआ। गोपाल अपने मामाजी के साथ धंधा करने लगा, जिस धंधे में उसने खूब दौलत कमाई।

थोड़े दिनों बाद मनोहर के घरवाले शरणार्थी कैंप छोड़कर दिल्ली के किसी उपनगर में जाकर बस गए। उन्होंने वहां एक सौ गज का मकान ख़रीद था। लेकिन गोपाल के घरवाले बड़े-बड़े साहूकारों की बस्ती में किस्तों पर एक प्लाट ख़रीदकर उसमें दो-तीन कमरे बनवाकर रहने लगे थे।

चूंकि अभी तक दोनों घरों में मध्यम वित्त वर्ग का माहौल था, गोपाल का और उसका अपना विवाह थोड़ी कम पढ़ी-लिखी, लेकिन खाने-पकाने और सीने-पिरोने में निपुण शालीन लड़कियों के साथ हुआ। वे दोनों लड़कियां आपस में मौसेरी बहनें थीं और उन दोनों के घरों की तरह उनके चेहरों पर भी ट्यूबलाइट की नरम-नरम रोशनी फैली थी।

1973 में मनोहर अपने कालेज में सिंधी के सीनियर रीडर के पद पर था और गोपाल की गिनती शहर के बड़े बिल्डरों में होने लगी। पिछले कुछ सालों के दौरान मनोहर ने शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में बहुत नाम कमाया था और गोपाल करोड़पति से अरबपति हो गया था। पर चूंकि दोनों जनों की उनके बचपन से ही एक ही पृष्ठभूमि रही थी और उनकी पत्नियां विवाह से पूर्व साधारण परिवारों से संबद्ध आपस में मौसारी बहनें थीं, मनोहर ने सोचा, उसके अपने घर की ट्यूबलाइट की रोशनी में और गोपाल की कोठी के शेंडेलियर की रोशनी में बहुत ज़्यादा फ़र्क नहीं था। फिर इतने में उसने सोचा, क्या वह बात ऐसी ही थी?

पोर्टिको तक आते-आते मनोहर ने देखा, कार गैराज में जा चुकी थी और गोपाल पोर्टिको के अंदरूनी मुख्य दरवाज़े की देहलीज़ पर खड़ा इंतज़ार कर रहा था। वह मनोहर को देखकर अपने चेहरे पर उसकी आवभगत में मुस्कराहट ले आया और बोला, "आओ, मनोहर आओ। मैं तुम्हारे ही इंतज़ार में यहां खड़ा हूं।"
मनोहर ने उत्तर दिया, "और क्या समाचार है, गोपाल! सब ठीक तो है! दुबई हवाई अड्डे से तुमने फ़ोन किया कि मैं तुमसे तुम्हारी कोठी पर शाम को सात बजे आकर मिलूं, तब तक तुम भी यहां पहुंच जाओगे..."

गोपाल ने कहा, "उडेरोलाल की कृपा से सब कुछ ठीक है। आज सुबह मनीषा ने फ़ोन पर बताया कि कल विश्वविद्यालय वालों ने उसे एम. ए. के बाद कोई दूसरी उपाधि दी है। यह उपाधि क्या है?"
मनोहर ने उसे बताया, "एम. फिल. की उपाधि। अब वह किसी कालेज में लेक्चरर लग सकेगी।"
गोपाल ने प्रसन्न होकर कहा, "भाई, यह सब उसके साथ की गई तुम्हारी मेहनत का नतीजा है। मैंने सोचा, आज शाम को दिल्ली पहुंचकर तुम्हें और मनीषा को एक ही समय मिलकर बधाइयां दूं।...हां, क्या तुम यहां गोपी और बच्चों समेत नहीं आए हो? मैं फ़ोन पर ऐसा करने के लिए न कह सका। उनका अपना ही घर है। तुम उन्हें क्यों नहीं ले आए?"

मनोहर उत्तर में कुछ कहता, उससे पहले ही गोपाल ने घर के अंदर आवाज़ दी। वे दोनों बातचीत करते-करते ड्राइंग-डाइनिंग हाल के बीच तक पहुंच चुके थे।

गोपाल की आवाज़ सुनते ही घर के नौकर आकर उपस्थित हुए और उस हॉल के बीच में से ऊपर जाने वाले जीने पर बालकनी में मनीषा और उसकी मां भी आकर प्रकट हुई।

गोपाल ने मनोहर से कहा, "अच्छा, तुम यों करो, तुम यहां इस हाल में बैठो, या ऊपर जाकर अपनी साली साहिबा से और अपनी विद्यार्थिन मनीषा से मिलो। जल्द ही, मैं टायलेट से फ्रेश होकर आता हूं।"

वह ऊपर जाने वाला ज़ीना चढ़कर बालकनी के पीछे अपने कमरे की ओर चला गया। हॉल में बड़े-बड़े सोफ़े बिछे थे, उन सोफ़ों के सामने शीशे की मेज़ें लगी थीं और ऊपर छत में बड़े-बड़े शेंडेलियर जगमगा रहे थे। चूंकि मनोहर यह सब बेशकीमती सामान बहुत समय से देखता रहा था, उसे उसमें कोई ज़्यादा दिलचस्पी न थीं। वह वहां एक सोफ़े पर ही बैठ गया और सामने वाली मेज़ से एक पत्रिका लेकर उसने पन्ने पलटता रहा।

इतने में एक नौकर उसके लिए शीशे के गिलास में शर्बत लेकर आया। जब मनोहर ने उसके हाथों से वह गिलास नहीं लिया, तो वह बड़ी शालीनता से वह गिलास उसके सामने मेज़ पर रखकर एक ओर चला गया।

मनोहर के मन में गोपाल और उसकी गृहस्थी की बातों को लेकर एक काला जंगल फैल गया था, जिसमें फिर गोपाल द्वारा निर्मित बड़ी-बड़ी इमारतों की खिड़कियों में से आने वाली रोशनी के टुकड़े यहां-वहां टकरा रहे थे।

सामने रखे हुए गिलास में से थोड़ा शरबत पीते हुए उसने सोचा, गोपाल ने सीमेंट और लोहे के कितने ही भवनों का निर्माण कार्य किया है और इसीलिए वह खुद सीमेंट और लोहे जैसा संवेदनहीन हो गया है। वह जितना अधिक धनी हुआ है, उतना अधिक अपने घर के प्रति, घर के सदस्यों के प्रति लापरवाह होता चला गया है।

गोपाल की पत्नी यशोधरा उसकी पत्नी गोपी से लगभग छह महीने छोटी होगी। वह अपनी दीदी गोपी से आमने-सामने या टेलीफ़ोन पर अपने समाचार देती रहती है। उसे बताती रहती है कि वह कैसे अपने वैवाहिक जीवन के प्रारंभिक दिनों को याद करती रहती है। अब तो उसे अकेले दिन और अकेली रातें गुज़ारनी पड़ती हैं। महेश और मनीषा दो संतानें हैं। उसका बेटा महेश अपने बाप के साथ बिजनेस में है और वह रात को अपने बाप से अलग रहकर, सीमेंट और लोहे से बनी इमारतों की रोशनी में टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। रात को बहुत देर तक किसी कैबरे डांस-फ्लोर पर या किसी बार में समय काटकर वह 'उडेरोलाल-कृपा' कोठी के अपने कमरे में आकर बिस्तर पर धड़ाम से गिरता है।

इतने में मनोहर के मन में फैले काले जंगल में बिजली की चमकार हुई और वह कांप उठा कि महेश की छोटी बहन मनीषा भी इस तरह गुमराह हो जाती, अगर... उसने सोचा अगर वह अपनी छोटी साली यशोधरा और उसकी बेटी मनीषा की अकेली-अकेली ज़िंदगी पर तरस न खाता और मनीषा को समाज के ग़लत प्रभावों से बचाने के लिए उसे विश्वविद्यालय में अधिक से अधिक पढ़ाई करने के लिए उत्साहित न करता।

अभी उसकी सोच के दायरे में मां-बेटी ही थीं कि इतने में वे खुद उसके पास आकर खड़ी हुई।
यशोधरा ने उसके पास बैठकर आत्मीयता से पूछा, "क्यों जीजाजी, आप अकेले आए हैं? दीदी और किशोर को क्यों नहीं ले आए? महीनों हो जाते हैं, हम आपस में नहीं मिल पाते हैं। इसमें आपका या आपके परिवार का कोई दोष नहीं है। हमारे हालात ही कुछ ऐसे हैं।

मनीषा ने अपने मौसा को, मौसा से कहीं अधिक अपने प्रोफ़ेसर को प्रणाम किया और कहा, "किशोर को देखे तो बहुत सारे दिन हो गए हैं! क्या वह अपने काम में इतना 'बिजी' रहता है?"

मनोहर ने दोनों को ही एक साथ उत्तर दिया, "हम दोनों ही- गोपाल अपने काम में और मैं अपने काम में व्यस्त रहते हैं। वह लक्ष्मी पूजा में और मैं सरस्वती वंदना में- दोनों ही अपने-अपने काम में संलग्न रहते हैं। मैं कालेज से सीधा किसी बैठक में शरीक होने के लिए चला गया और वहां से सीधा यहां आया हूं। मनीषा, किशोर वाकई बहुत 'बिजी' रहता है। उसकी कंपनी वाले उसे अगले महीने यू.एस.ए. भेज रहे हैं।

मनीषा ने ताली बजाकर इस बात का स्वागत किया और कहा, "वाह! यह तो बहुत खुशी का बात है!"
यशोधरा ने भी अपनी प्रसन्नता को अभिव्यक्त करते हुए कहा, "कल सुबह ही दीदी से टेलीफ़ोन पर बात करने का मौका मिला, तो उसने तो ऐसा शुभ समाचार नहीं दिया।"

इस बीच में नौकर घर की दोनों मालकिनों- यशोधरा और मनीषा के लिए भी शरबत के दो गिलास लेकर मेज़ पर रख गया था। मनोहर ने उन गिलासों को देखकर सोचा, मां-बेटी शरबत नहीं पीएंगी, दस्तूर निभाने के लिए शरबत के वे गिलास यों ही मेज़ पर पड़े रहेंगे और उसने यशोधरा को उत्तर दिया, "कल सुबह गोपी को, या और किसी को, ऐसा शुभ समाचार नहीं मिला था। यह तो कल दोपहर को मनीषा के एम.फिल के नतीजे का और किशोर के यू.एस.ए. जाने का पता लगा।"

इतने में गोपाल भी हॉल कमरे के बीच वाला जीना उतरकर नीचे उनके साथ सोफे पर आ बैठा और बोला, "भई, कौन यू.एस.ए. जा रहा है? कुछ हमें भी तो बताओ।"
यह पूछते-पूछते उसने एक ही नज़र में अपनी पत्नी और बेटी को देखा। उनकी आंखों में सदा की तरह शिकायत का भाव देखकर उसने अपने सवाल के जवाब का इंतज़ार न करते हुए कहा, "क्या करूं? बिज़नेस के लिए मुझे इधर-उधर भागना पड़ता है।"
मनोहर ने सोचा, 'गोपाल अपने तक ही सीमित हो गया है। वह किसी के यू.एस.ए. जाने की बात पूछना भी भूल गया है।
वह अभी कुछ कहता कि उससे पहले यशोधरा ने अपने पति से कहा, "किशोर यू.एस.ए. जा रहा है।... किशोर और मनीषा ये दोनों भाई-बहन जीजाजी के कारण होशियार हुए हैं।"
फिर कोई बात याद करते हुए अपने पति से पूछा, "क्यों आपके साथ महेश नहीं लौटा है क्या? वह अभी तक दुबई में क्या कर रहा है?"
गोपाल ने उत्तर दिया, "नहीं, वह भी मेरे साथ एक ही फ्लाइट में आया है। उसे किसी फार्म हाऊस की डिनर पार्टी में जाना था, सो उसने एयरपोर्ट पर ही अपनी अलग कार मंगवा ली थी।"
जल्द ही, उसने बधाइयों की बात याद करते हुए कहा, "किशोर और मनीषा को बधाइयां, किशोर को यू.एस.ए. जाने की तैयारी करने पर और मनीषा को एम.फिल. करने पर।"

फिर मनोहर को संबोधित करके कहा, "भाई, यह लड़की तो तुम्हारी बड़ी ही 'फैन' है। मुझे इसके साथ बैठने का समय उतना नहीं मिलता है, जितना तुम्हें मिलता है। जब भी मैं उसके साथ बैठता हूं, वह मुझे तुम्हारी ही बातें बताती रहती है। तुम्हें मौसा के रूप में नहीं, प्रोफ़ेसर के रूप में याद करती है। आज प्रोफ़ेसर का टी. वी. पर इंटरव्यू है। आज यूनीवर्सिटी के टैगोर हॉल में प्रोफ़ेसर का फलां विषय पर स्पेशल लेक्चर है, वगैरा... वगैरा... ।"

भला इन सब बातों का मनोहर उसे क्या जवाब देता। यह तो अच्छा हुआ कि जवाब देने के समय पर एक नौकर दो प्लेटों में से एक में काजू-नमकीन और दूसरी में सलाद ले आया; दूसरा नौकर एक हाथ में किसी महंगी व्हिस्की की बोतल और दूसरे हाथ में दो ख़ाली गिलास लाया और तीसरे नौकर ने एक हाथ से मिनरल वाटर की एक बड़ी बोतल और दूसरे हाथ से 'सोडा वाटर' की दो बोतलें मेज़ पर रखीं।

गोपाल को इन सब चीज़ों का बेचैनी से इंतज़ार था। उसने व्हिस्की की बोतल की सील तोड़कर उसमें से दोनों गिलासों में व्हिस्की उंडेली। वह ज़्यादा देर तक रुक नहीं सका, और अपनी ओर के गिलास में पानी मिलाए बिना उसमें से 'नीट' व्हिस्की एक ही घूंट में पी गया। फिर उसने अपने गिलास में व्हिस्की की बोतल से दूसरा पेग और फिर मिनरल वाटर की बोतल से पानी डाला। मनोहर के गिलास में व्हिस्की का पहला पेग था, उसने उसमें अब सोडा डाला।
व्हिस्की 'नीट' पीने से गोपाल को हल्का-सा ख़ुमार चढ़ गया। उस ख़ुमार में उसने मनोहर को अपना गिलास लेने के लिए कहा, "चीयर्स!"

जब तक वह अपना गिलास लेकर 'चीयर्स' कहता, उससे पहले ही गोपाल ने उसे कहा, "मनोहर, मनीषा तो मनीषा, तुम्हारी छोटी साली यशोधरा भी तुम्हारी दीवानी हो गई है। जब देखो, तब इस घर में प्रोफ़ेसर-प्रोफ़ेसर या जीजाजी-जीजाजी की रट लगाए रहती है।"
यह बात सुनते ही तीन दिलों में बड़ा धमाका हुआ। शायद धरती फटी थी। उसकी दरारें मनीषा और यशोधरा के चेहरों पर ज़ाहिर हो उठीं। मां-बेटी को बड़ा दुख हुआ। लेकिन मनोहर को गोपाल पर बड़ा ही तरस आया। उसने एक पल के लिए भी वहां रुकना न चाहा और वह उठ खड़ा हुआ। जाते-जाते उसने कहा, "गोपाल, मैं चलता हूं।"

कुछ समय से उसके मन में किसी बात को लेकर संघर्ष चल रहा था। अब उस बात की पृष्ठभूमि में उसमें एक किस्म की तस्कीन पैदा हुई। उसे गोपाल की ज़िंदगी से अपनी ज़िंदगी कहीं अधिक अच्छी लगी।